

षोडशक ग्रंथ-विवरणं

[पूर्वार्ध]

— मूलकर्ता —

आचार्यवर्य हरिभद्रस्वरि.



— विवरणकार —

अनुयोगाचार्य आणदविजयजी गाण'



— प्रकाशक —

प० केशवलाल जैन

हाल मुनि.

संवत् १९९१] वीर संवत् २४६१ [सन् १९३४

२-०-०

सुदृक —

शेठ देवचंद दामजी

आनंद प्री-प्रींग प्रेम

भावनगर

निवेदन.

आ ग्रथनो अभ्यास कर्या पडी वर्तमानमा लोकोपयोगी अने उपकारक आना जेरो अन्य ग्रथ क्वचित ज हरो एवी खास मारी मान्यता थर्द आ मान्यताने में अमुक विद्वान् ममथ रजु करी एटले तेओए अने अन्य बीजाओए मनवृत्त प्रेरणा करी के आ ग्रथनु जो तमो निवेचन करशो तो वधु उपयोगी अस्य थरो मने पण आ गत रुची अने साथे साथे आ ग्रथनु निवेचन करवाने मन ललचायु परिणामे मारी अल्पमतिथी तेनु विचन कर्युं ग्रथ एटलो गहन छे के तेमा मारा जेवानी बुद्धिनो प्रवेश थरो पण अशक्य हता, छठा साधनोनी अनुकूलताए में यथासाध्य प्रयत्न कर्या छे आ ग्रथनी प्रस्तावना, उपो-द्घात विगेरे अमो ग्रथना बीजा भागमा आपना धारेल छे, कारण के ग्रथना मुद्रण आदिमा मदद आपनार महाशयोने ग्रथ प्रगट थद प्राप्त करवानी लागेली तालावेलीने लीधे आ ग्रथने तुरतमा ज प्रथम भाग रूपे प्रकाशित करवानी प्रकाशकने आर-

શ્યક્તા ઉમી થદ તમ ન પ્રથનું પ્રમાણ અમારા ધાત્વા
 કરતા લગભગ દોઢુ થડ ગણું આથી પણ વે માગમાં
 પ્રથને વહવી નામનો વધુ ઠચિત જણાણુ અતણ આ
 પ્રથ પરત્વે હમાર જે કાઢ નિવડન કત્વાનુ છે તે અમ
 પીના માગમા જાહર ફરીશુ પ્રાત આ પ્રથમા સલાહ-
 રૂપે અને મુદ્રિત કરવામા અમન જેઓળ કીમતી મદદ
 કરી છે તજાનો હુ ગામ શ્રણી શુ આગા છે કે-
 પાઠકો આ પ્રથન અમાગી મ્યલના મુધારી વાચવા
 ધ્યાન રાખ્યો મજ્જનો હમાગા ગુણગ્રાહી જ હોવ છે
 અલ અધિકન

પ્રાર્થી-લેખક

૩૧ ૫ ૧૧ ૫૧



૫

૨૦૦૫

૩ ૫ ૩ ૫૧/૧૧ ૧

૬ ૩ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

૫ ૫ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

૫ ૫ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

૫ ૫ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

૫ ૫ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

૫ ૫ ૨૦૦૫ ૫૧/૧૧

॥ नम श्रीमहर्षिपूज्यगर्भारविजयेभ्यो ॥

षोडशकग्रंथ-विवरणं ।



अमृतमिवामृतमनघ,

जगाद् जगते हिताय यो वीरः ।

तस्मै मोहमहाविष-

विधातिने स्तान्नम. सततं ॥ १ ॥

यस्या सस्मृतिमात्राद्

भवन्ति मतय सुदृष्टपरमार्था ।

वाचश्च बोधविमला. सा

जयतु सरस्वती देवी ॥ २ ॥

मंगल

जेम अमृत आत्माने अजरअमर उनावे छे, तेम जे प्रभुए आ अमृत तुल्य एवु द्वादशांगीरूप वचनामृत जगतना कल्याण माटे प्रकाश्यु, तथा मोहरूप मदाकालकूट क्षेत्रनो जेश्रोए आमूलतः नाश कर्यो छे, एवा वीरप्रभुन नित्य नमस्कार हो ।

जेना स्मरणमात्रथी ज परमार्थभूत पदार्थोने जणावनार बुद्धि उत्पन्न थाय अने ज्ञाननिर्मल-अर्थात् सुबुद्ध एवी वाचा प्राप्त थाय छे, ते सरस्वती नामनी देवी विजयवती हो ।

टीकाकार भगवान आ रीते शिष्टाचारनु पालन करवा, निर्विद्वे टीका समाप्त करवा स्पेष्टदेवने नमस्कार करी प्रकृत ग्रन्थनी टीकानी प्रस्तावना आ प्रमाणो कहे छे—

प्रस्तावना

एक सामान्य वस्तुनी परीक्षा कर्या पछी तेने स्वीकारवा-धी माहफने असतोष के खेद थतो नथी. निदान के—कोइ पण चीज परीक्षा कर्या पछी ज स्वीकारवी ए न्याय गणाय, तो पछी ससारमा डुबता अने पोताना उद्धारनी अपेक्षा राख-नारे, तेमज पोतानु हित साधवाया निपुणो, दरेक कार्योमा दोष तथा गुण सबरी गुरु-लाघवतानो विचार करनारे, परमार्थ क लाभान्नाभनो खयाल करनारे एव प्रश्नोत्तरो सबधी परमार्थे विचारनार विद्वाने तो अवश्यतया उत्तम धर्मनी परीक्षा करवी जोइए. धर्मनी परीक्षा तो परीक्षक बिना न ज

थाय कारण के (परीक्षा परीक्षक विना रही शकती नहीं। न्यायनी भाषामा परीक्षा अने परीक्षकनो परस्पर व्याप्ति सम्यक् कथो छे, माटे ज उत्तम धर्मनी परीक्षा कोण करी शके विगेरे भावोने समजाववा चौदसो चुपालीश ग्रय-कर्ता आचार्य हरिभद्रसूरिजी आ पौडशकनामा प्रकरणांनु कथन करे छे आ प्रकरणांमा आर्या छदवडे निरद्व सोल अधिकारो छे मत्येक अधिकारने सोल-सोल श्लोक्यो प्रतिपादन कर्या छे, माटे ज आ प्रस्तुत प्रकरणानु सान्वय एव पौडशक नाम ग्रयकर्ताए राज्य छे ।

आ तो उपर जणाव्या प्रमाणे प्रस्तुत ग्रयकर्ताए प्रस्तुत ग्रयनो सम्यक् दर्शाववा एक सामान्य प्रस्तावना कही। ह्ये प्रस्तुत ग्रयने शरु कना ग्रयनी आदिभां मंगल, अभियेय, सबध अने प्रयोजनने दर्शावनार आदिनो आर्या श्लोक हरिभद्र-सूरिजी कथन करे छे—

“ प्रणिपत्य जिन वीर,

सद्धर्मपरीक्षकादिभावानाम् ।

लिंगादिभेदत. खलु

वक्ष्ये किञ्चित्समासेन ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—राग-द्वेषादि शत्रुवर्गने जीतनार एवा वीर पर-
मात्माने नमीने उत्तम धर्मनी परीक्षा करनार वर्गो-लोको विगेरे पदार्थोनु स्वरूप, तेना चिन्हो तथा भेदो प्रकाशवावडे करीने काइरु सत्तेपयो हु (हरिभद्रसूरि) कथन करीश

स्पष्टीकरण—“ शिष्टाः शिष्टत्वमायान्ति शिष्टमार्गानुवर्तनात् ” शिष्टो उत्तमपुरुषोना पयनु अनुकरण करवायी उत्तमजनो उत्तमताने मेलवे छे ” आ एक सर्व साधारण नियम छे. आचार्य हरिभद्रसूरिजी पण एक उत्तम शिष्ट कोटिना अग्रगण्य शिष्टपुरुष छे. शिष्टोनो एवो आचार छे के—

“ शिष्ट-आचार ”

ग्रथना आरम्भमा मगल, अभिवेय, प्रयोजन अने सवध चार पदार्थों कहा पछी ज अवशेष वक्तव्यनु कथन करे छे अतएव ग्रथकर्ता पण आ चारे पदार्थनु स्वरूप अने ग्रथनो उद्देश एक ज आर्याद्वाराए देखाडे छे शास्त्रनी आदिमा स्वेष्ट देवन नमस्काररूप मगल करवु आवश्यक गणाय, तेथी अने शास्त्रनी निर्विघ्ने समाप्ति थाय, श्रोता तथा पठन करनार सुखे शास्त्राभ्यास करी शके एव आ ग्रथ मगलशून्य छे आ प्रकारनी शिष्योनो बुद्धिनो परिहार करवा माटे आचार्य— ‘ प्रणिपत्य जिन वीर ’ ए पद्यों मगलनु प्रतिपादन कर छे, तथा अन्याय पदोवडे अभिवेयादिन्नु पण स्वरूप कह छे

“ मगलादि-कथन ”

राग-द्वेषादि अनादिकालीन शत्रुवर्गनो विजय करवायी जेओ जिनभगवत बन्या छे, एव प्रखर तपस्पायी जेओए निबिडतम कर्मोनो नाश करवा अद्भुत वीरपणु दाखव्यु हतु एग्ले—“ विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते ।

तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्भिर इति स्मृतः ” १ जेओ
 कर्मोने विदारे छे अने महान् तपस्याथी शोभे छे, अत एव
 तप अने वीर्यवडे युक्त होवाथी धीर ए नामथी जेमनु स्मरण
 कराय छे, एवा अने अखड वार्षिक दानद्वारा जगतना दारि-
 द्र्यनो जेओए नाश कर्यो छे, सगम जेवा पिशाचाधम देवे
 छ मास पर्यंत भयकर प्राणहर उपसर्गो करवा छता जेओए
 अतुल क्षमा धारण करी हती, अने द्वादश वर्ष पर्यंत घोर
 तपस्या जेओए करी हती एवा दानवीर, शूरवीर अने तपवीर
 वीर भगवानने त्रिकोणयोगनी शुद्धिपूर्वक नमस्कार हो पर-
 मार्थ ए के उपरोक्त गुणोथी रजित थड इद्रादि देवोए जेओनु
 महावीर ए सगुण नाम स्थापन कर्यु छे तेमने नमीने, आ रीते
 अयकर्ता श्लोकरुना प्रथम चरणवडे स्पष्टदेवने नमनरूप मंगलनो
 बोध करी, बीजा चरणथी उत्तम घर्मनी परीक्षा करनारा
 विगेरे पदार्थोनु स्वरूप कथन करवानु जणाने छे निदान के-
 प्रस्तुत प्रथमा धर्मना परीक्षको बाल, म यम, बुध पैकी ए त्रण
 वर्ग छे तेनु स्वरूप एव धर्मनु स्वरूप, तेना लक्षणो, धर्मोनु स्व-
 रूप अने तेना लक्षणो विगेरे अनेक पदार्थनो परिस्फोट प्रथ-
 फार करशे ते पण विविध चिन्होवडे तेमज अनेक भेदोवडे
 सक्षेपथी ज किन्तु विस्तारथी नहीं, कारण के-अध्येतृ वर्ग
 अथवा श्रोतावर्गने अधिक क्लेश न थाय माटे, आ रीते प्रथकारे
 प्रस्तुत प्रथरचनानु प्रयोजन जणाव्यु अन्यान्य प्रथोमा पूर्व
 महर्षिओए जो के बाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षकोनु स्वरूप

दर्शाव्यु छे, तथापि प्राचीन ग्रयोक्त ते स्वरूप दुर्गमा अने अने सामान्य होवाची प्राकृतलोकोने उपभारक न थाय तेम घारी प्रस्तुत ग्रयकर्ता धर्मपरीक्षकोना भेदो, तेभोना चिहो आदि अत्र विस्तृतपणे दर्शावशे, जेथी विशेषतया सर्वने उप कारी आ ग्रय थाय ए ज आ ग्रयाचनानु प्रयोजन छे उपरोक्त प्रयोजन सिद्धि प्रकरण के ग्रयस्थ वास्योना बोधद्वाराए ज थाय, अथवा न ज थाय ए स्वाभाविक छे अत्र एत्र अत्र बाल, मायम आदि धर्मपरीक्षक वर्गनु ज्ञान प्राप्त यतु ते उपेय साध्य छे, अने तेनु आ ग्रय उपाय-साधन होवाची अर्ही उपायोपेयसाध्यसाधनरूप सवध जाणवो अर्ही आठलु विशेष जाणवु के जगतमा ज्ञानना अर्ही लोको वे प्रकारना छे-एक तो शास्त्रकथित पदार्थोने युक्ति अने प्रमाणद्वाराए सिद्ध कर्या पछा जेभो श्रद्धा करे-अंगीकार कर ते, अने बीजा लोको शास्त्रोक्त पदार्थो सत्य ज छे, तेमा शक्य करवी निरर्थक मानी श्रद्धा करवावाला होय छे. एतले पहिला वर्गना लोको माटे अर्ही उपायोपेयसाध्यसाधनरूप सवध जाणवो अने बीजावर्ग माटे गुरुपूर्वक्रम नामनो सवध जाणवा

“ शका समाधान ”

यद्यपि ग्रयकर्ताए प्रथम आर्यामा जेम मंगल अने प्रयो-जन ए पत्नार्थनो स्पष्ट निर्देश कर्या तेम सवधने दर्शावा माटे स्पष्ट बडेल कर्या नयी, तो पछी अर्ही आठलु यतु नकामु पेपण करवानु शु प्रयोजन छे ? ए शकानु समाधान अर्ही आ प्रकार जाणवु—

“ शास्त्र प्रयोजनं चेति,
संबंधस्याश्रयावुभौ ।

तदुक्त्यांतर्गतस्तस्माद्,
भित्तो नोक्त. प्रयोजनात् ” ॥ १ ॥

“शास्त्र अने प्रयोजन ए उन्ने सवधना आश्रयी होवायी ज्या शास्त्र तथा प्रयोजननु कवन थयु त्या सवधनु पण कवन थइ गयु जाणवु. एटले सवध जणाववा माटे अलग निर्देश करवानी जरें नथी ” ए रीते मगल, प्रयोजन अने सवध दर्शाव्या हवे रहु केवल अभिप्रेय. यत्रपि ग्रंथरचनानुं प्रयोजन दर्शाव्यु एटले अभिधेयनु कवन आर्वा गयु ठे, तो पण आ ग्रथमा धर्मना परीक्षक एवा गाल, मयम आदि वर्गनु चित्तो तथा मेदादिवडे विस्तारयी स्वरूप आचार्यश्री दर्शावणे, एटले ए ज अर्ही स्पष्ट अभिप्रेय जाणवु

आ रीते ए चारे पदार्थनो दुकमा ग्रथनी आदिमा कर्ताए विचार कयों यदि ए चार पदार्थनो विचार न जणाव्यो होय तो, प्रस्तुत ग्रथनो अभ्यास अने श्रवण करवानो कोइ मनोरथ न करे, कारण—विद्वानो तेवा ग्रथनो अनादर कर ठे, अत एव अन्यत्र कहु छे—

“ प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं
फलादित्रितयं स्फुटं ।

मगल चैत्र शास्त्रादौ

वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ” ॥ १ ॥

“ पढितोनी मठचि माटे शास्त्रांनी आदिमा ज प्रयोजन, सवध अने अभिप्रेषणु कयन करवु तथा इष्टार्थना सिद्धि माटे शास्त्रांनी आदिमा मगल पण जणाववु” आ हेतुपी प्रपनी आदिमा चार पदार्थानो सयुक्तिक विचार विज्ञानो माटे जणाव्यो, ए ह्ये फरीने जणाववानी आवश्यकता नथी.

कचाए प्रथम जणाव्यु हतु क-“मत्य धर्मना परीचक एवा माल, मध्यम आदि वर्गानु स्वरूप कह्निशु ” ए कयनानुमारे तेनु स्वरूप प्रथकर्चा अर्ही धीजी आयापी शक करे छे-

“ प्रकरणारभ ”

“ बाल. पश्यति लिंग

मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।

आगमतत्त्व तु ध्रुवः

परीक्षते सर्वयत्नेन ” ॥ २ ॥

मूलार्थ-“ बालजनो-मदबुद्धिवानो मात्र याज्ञपेश देखीने, मध्यमबुद्धिक केवल आचार-वर्तन देखीने, अने तत्त्वज्ञ-जनो सर्वथा प्रकार आगमतत्त्वनी ज परीक्षा कर छे ”

“ जनतानी प्रकृति ”

स्वष्टीकरण-बहोडा जनसमूहमा अमुक ज लोको धर्मप्रति रचिवाला अनुभववामा आने छे, कारण के जनतानो श्छोटो भाग तो केवल एशआराम अने पुद्गलसुखविज्ञासी ज देखाय छे, हवे जे लोको धर्मानुरागी जगाय छे तेमा पण केटलोके भाग तो बशपरपरागत कौटुबिक प्रेरणाथी अथवा तो व्यवहार-मां पोतानी निदा न याय पट्ला माटे अगर बहुमानार्थे ज धर्म उपासना करे छे जे लोको धर्म उपासक छे ते सर्वे काइ सत्य धर्मनी परीक्षा कर्या पछी ज धर्म सेवे छे एवु काइ छे नही कारण-परपरागत अथवा व्यवहार रचणार्थे के बहुमानार्थे कराता धर्ममा सत्यपणानी परीक्षा वयार्थी सभने? न ज समवे. निदान के-बाह्य परीक्षा कर्या पछी पण सत्य धर्मनी सेवा कर-नार वर्गना त्रण विभाग पाडी सकाय, जेओ केवल अशुद्ध होय अर्थात् उपरनो बाह्य आडवर देखी असन्न थाय ते १, जेओ मात्र क्रिया-आचार विगेरे जाणी सुशी थाय ते २, अने जेओ शास्त्र-आगम अनुसारे वर्नन चेष्टा जावया पछी, तपास्या पछी प्रसन्न थाय ते ३, पटले जेओ सत्य धर्मनी परीक्षा करनार होय ते सर्वनो आ त्रण विभागमा ज समावेश थइ जाय छे. आथी अतिरिक्त कोइ पण लोको नथी.

“ धालवर्ग ”

परमार्थ ए के-जेओ अशुद्ध होय छे, विशिष्ट प्रकारनी सारासार समजवानी अने वस्तुतत्त्व समजवानी जेओमा बुद्धिनी स्वामी होय छे, ते लोको केवल बाह्य वेश अथवा

पेशनो आदर देखीने रुसी याप छे ने तेमा न आ लोको धर्म माने छे. पटले ज्या साधुपणानो धारा आदर देखवामा आव्यो, अगर ज्या धर्मादरनी धारा रचना नबरे पढी के ते लोको गाढापेला यइ जाय छे, नाचना-चूल्हा माटे छे, अहोभाग्य मानी लारा लावा नमस्कारो करवा दोटी जाय छे आयी आ लोकोने विद्वानो बालक कह छे, कागल के-आ सर्व चेष्टा बालयोग्य-बालक जेरी देखाय छे जेम कोइ छोकराने तेना माराप कसु के-द्वपूजानो वेग, सामायन-प्रति क्रमणनो पेश जेखा पहरो होय, एवं रजोहरण, मुहपचि, पीला कपडा जेणे पहरो होय ते धर्मा कहवाय, त साधु कहवाय बस आदली शिखामणना अते ज्या उपरोक्त स्थिति शान्कना देखवामा आनी के मारापनी शिक्षा याद करी ते मराये मानवा दोही जाय छे आ ज स्थिति उपरोक्त वर्गना लोकोमा तन-कारपये देखाय छे, माटे ज मयकर्ता एक न पदर्या जयाये छे—“ बाल पश्यति लिंग ”

“ मध्यम वर्ग ”

धीजो वर्ग मध्यमबुद्धिनो जणान्यो छे. आ लोको मयम वर्गनी अपेक्षाए अधिक चडता छे पटले बुद्धिमा आगल बधना होवायी काइक विचारशील होय छे पटले तेओ उपरनी खास टापटीप, बाबु पेश क आदर देखी मुग्ध नयी बनता, किन्तु विचार कर छे के-केवल पेश तो दाधिको पण पेठ मरवा स्वीकारे छे, माटे पेश साथे आचार, नियम अने क्रिया पण

होय तो ज ते वदनीय-नमस्करणीय कहवाय निदान के-वेश साथे आगल जणावाशे तेवा आचारो देखी-तपासी पछी ज आ लोको तेमा धर्म माने छे, माटे आ लोकोने गालरुवर्गधी भिन्न मध्यम वर्ग नामे बीजी पक्तिमा विद्वानो गणाने छे. आ वर्ग पैकीना लोकोमा एटली अवश्य विशिष्टता होय छे के-तेओ मुनिपे के श्रावकनो धर्मीपे देखा पछी जो के नम्र, फोमलपरिणामी बने छे खरा तो पण साथे साथे पोतानी बुद्धिधी एटलु तो जरर विचारे छे के-अही आचार-नियम विगेरे केना छे ? ते जो होय तो नमस्कारादि करे अने न होय तो लोकरजननो आदर छे एम माने छे अत एवग्रयकारे कगु के- ' मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ' मध्यमबुद्धिजनो आचारनो विचार करे छे

“ बुधवर्ग ”

उयारे तत्त्वज्ञानो उपरोक्त वक्षे वर्गधी भिन्न होय छे एटले आ लोको वेशपात्रधी राजी यता नधी तेमज उपरना आचारादि मात्र देखवाधी खुशी यता नधी, अर्थात् जेओमा विशिष्ट तत्त्वज्ञान होय, परमार्थ जेओ अच्छी रीते देखी शके छे, कार्यना परिणामदर्शी जेओ होय छे, जेओने आगमोक्त तत्त्वनो सुदर बोध होय तेनु नाम अही बुधवर्ग छे एटले आ लोको पोतानी बुद्धि अनुसार जेमा वेश तेमज आगमानुसारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्री वर्तन, नियम, आचारादि होय तेमा ज धर्म माने छे, अने तेनो ज आदर करे छे सिवाय खाली

वेश के द्वारा आचारादिमा धर्म मानता नहीं, कारण के प्रवचनाज्ञा प्रधान जे वर्तन अने तेवा वर्तनधी अलकृत मुनिवेश आदि मार्ग ज आत्मकल्याण साधी श्रेष्ठे छे. जेम प्रवचन-आज्ञानो लोप यतो होय, प्रवचनने वाथा उपजती होय तेवु एकान्त सुदर पण चारित्र गर्हणीय कथु छे. निदानके-प्रवचन आज्ञानु ररावर पालन यवु जोइय-“ धर्माधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामक । तदुक्तासेवनाद्धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ” ॥ १ ॥ “ धर्म, अधर्मनी व्यवस्था करवामा शास्त्र पोते ज नियामक छे, माटे शास्त्राज्ञाना पालनमा धर्म अने तेधी विपरित चालवाधी अधर्म छे ” निष्कर्ष ए के- बुधजनो तत्त्वदर्शी होवाधी आगमाज्ञानुसारी वर्तन देखे छे अने आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे, वेश आदिनी परीक्षा करता नहीं, एज बात ग्रथकर्ता जणावे छ- “ आगमतत्त्व तु बुधः परीक्षते ” मूलमा “ सर्वयत्नेन ” ए पद ग्रथकर्ताए एटला माटे आप्यु छे के-बालजीवो अने मध्यमजनो धर्मनी परीक्षा केवल सामान्यपणो ज कर छे परतु खास दृष्टायी करता नहीं, ज्यार बुधजनो सर्व प्रकारे पोतानी बनती कोशीशे अने कसोटीपूर्वक आगमतत्त्वनी परीक्षा करे छे

अथवा जेम बालजीवो केवल वेशमा अने मध्यमजनो केवल आचारमा धर्म माने छे तेम बुधजनो मानता नहीं, किन्तु वेश अने आचार जणावनार शास्त्रमा तत्त्व परमार्थ शु

छे ? तेमा अविस्वादिपणु केवु छे ? सर्वज्ञकयित छे के नहीं ? विगेरे तपासे छे अने त्यारपछी तयाप्रकारना वेश के आचारादिने धर्मतया—सत्यतया स्वीकारे छे बस आ रीते भिन्न भिन्न बुद्धिना कारणथी उपरोक्त त्रण भेदो धर्मपरीक्षकोना अर्ही ग्रथकर्त्ताए जखाव्या.

आटलु सामान्य कयन कया पछी हवे बाल, मध्यम आदिनी विशिष्ट ओठखाण कराववी आवश्यक गणाय माटे आचार्यथी ते प्रत्येकना लक्षणो प्रथमथी दर्शावे छे—

बालो ह्यसदारभो

मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः ।

ज्ञेय इह तत्त्वमार्गे,

बुधस्तु मार्गानुसारी यः ॥ ३ ॥

मूलार्थः—असद् आरभमा प्रवृत्ति करे ते बाल, मध्यम आचार सेवे ते मध्यम अने तत्त्वमार्ग—परमार्थनी प्रवृत्ति करनार मार्गानुसारी जे होय ते बुधपुरुष जाणवो.

“ बाल-लक्षण ”

स्पष्टीकरण—अर्ही ग्रथकर्त्ता बाल, मध्यम अने बुधना लक्षणो दर्शावे छे प्रत्येक पदार्थनु ज्ञान तेना लक्षणनु भान यवाधी ज थाय छे पहला श्लोकमा धर्मपरीक्षक र्गना त्रण भेदो दर्शाव्या एटले तेओनु विशिष्टज्ञान करवा लक्षणो दर्शाववा ज जोइये अतएव “ बालो ह्यसदारभो ” असद्—

छोटा-दुष्ट एवा आरभो-पापो जे करे-सेवे ते घाल जाणवो. एदले जे पापोनो शास्त्रमा अनेकधा निषेध क्यो होय, जे पापो सेवमाथी वभय लोकनु अरुल्याण थाय, जे कार्योमा शास्त्रे उहु पाप मान्यु होय, लोकोमा बारबार निंदा थाय, जेवा के-चोरी, महाजूठ, व्यभिचार आदि, धर्मी अने महापुरुषोनी निंदा, ज्ञानी तथा धर्माचार्यनी गद्दा विगेरे विगेरे अनेक पापोय कार्योमा जेओनु चित्त रम्या करे, नित्यश तेवा कार्यो करता जेओ पोतानी स्थिति मर्यादा, लोकनिंदा, दुर्गतिनो डर अने प्रभु आज्ञानो भय गणो नहीं ते सर्व अही बालवर्गमा जाणवा प्रथम कदा प्रमाणे आ वर्गमा विशेष बुद्धि न होवाथी ते लोको आगल-पाछल काइ पण विचारता नथी, तेथी न आ लोकोनी आवी कदगी स्थिति होय छे.

“ मध्यम-लक्षण ”

“ मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः ” मध्यम प्रकारना जे आचारो सेवे ते मध्यमबुद्धि आ वर्गमा पहेला वर्गनी अपेक्षाए विशिष्ट मति होवाथी ते लोको विशेष विचार करे छे, जनापवाद अने आत्मनिदानो भय राखे छे. एव विशेष पापने सपनता होवाथी अधिक पापमय कार्यो करता डरे छे जे कार्योमा शास्त्रे विशेष पाप दर्शाव्यु होय अने जनतानो उहोओ भाग विशेष पाप मानतो होय तेरा पाशाचारो जे न सेवे, जेवा के पूर्व जे बालाजीवो पापो करे छे ते सर्व पापो आ लोको सेवता नथी, तो पण शास्त्रनो बोध न होवाथी

जेमा विशेष 'आत्मकल्याण' याय तेवा कार्यों करवा चित्त करता नथी; माटे ज अत्रे म'यम आचार सेवे तेने म'यमबुद्धि जन देखाड्यो, निष्कर्ष ए ज के-त्रीजी कोटीमा जणावेल सर्व लक्षणो मध्यमबुद्धिना जाणवा

“ बुद्ध-लक्षण ”

त्रीजो वर्ग ' बुधजन ” नो जणाव्यो छे आ वर्ग वने वर्गीया सर्वथा भिन्न छे आ वर्गना समूहमा एवी तो बुधप्र बुद्धि होय छे के जेथी आ लोको परापूर्वनो विचार कर्या पछी ज प्रत्येक कार्यों हाय घरे छे अर्थात्-जेमा उभय-लोरुनु कल्याण समायेलु होय, बुद्धिमान् जनता विशेष प्रशसा करे अने महात्माओ पण जेनापर पक्षपात घरावे, एवा जनप्रशसनीय अने उभयलोकहितकारी आचारो जेओ सेवे. परमार्थ के-जे लोको उपरनी टापटीप अथवा बाह्यक्रियाना खोखोयी प्रसन्न यता नथी, किन्तु शास्त्रानुसारी तत्त्वमाग अर्ही केटलो छे अने ते सप्रमाण सयुक्तिक बराबर सत्य छे के नहीं, आटलु तपास्या पछी ज दरक कार्यों करे. एव जे कार्योंथी शासनशोभा वचे, धर्मबुद्धि याय अने अन्य आत्मा-ओ पण धर्मी बने तेवा ज कार्यों जेओ कर. निष्कर्ष एज के-चीतरागदर्शित मार्गनु ज जे लोको बराबर आराधन कर, ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी रत्नत्रयीनी सेवना करे, माटे ज अर्ही अथकर्त्ताए “ बुधस्तु मार्गानुसारीय ” बुध तेज जाणवो के जेनी मार्गानुसारी प्रवृत्ति होय.

उपर आपणो तपासी गया के—“ वाळवर्ग ते ज जाणवो के जेशो वाळवेश मात्र देखी खुशी पाय, नमस्कार करे अने तेमां धर्म माने ” आधी ज वाळवर्ग खरो धर्म पापी शकतो नथी, कारण के वाळवेश धर्मप्रति काइ प्रधान कारण नथी, किंतु अग्रधान कारण मान्यो छे आधी शु वाळवेश ए त्याग नथी जेधी नेमा धर्मनो निषेध कर्यो ? आ शका उपजे खरी अतः आ शकाना उद्धार अर्थे अन्याकार हवे समाधान उतावे छे

वाङ्म लिंगमसार

तत्प्रतिबद्धा न धर्मनिष्पत्ति ।

धारयति कार्यवशतो

यस्माच्च विडवकोप्येतत् ॥ ४ ॥

मूलार्थ—वाळवेश-उपरनो आडपर असार-तुच्छ छे हेतु एक-वाळवेशना साथे काइ धर्मसिद्धि प्रतिबद्ध नथी, कारण के अग्रुध कार्य परत्वे-काइरु स्वार्थनी सिद्धि माटे विडवक लोको अने नागकियाओ पण आ वाळवेश धारण करे छे.

“ वाळवेशनी तुच्छताना कारणो ”

स्पष्टीकरण—वाळवेश ए शु त्याग नथी ? वाळवेश धर्ममा अग्रधान कारण शा माटे ? आ शकाओनो उद्धार आ अणो जाणवो-वाळ एटले जेने जनता पोतानी दृष्टिये

देखी शके, तुरतज जाणी शके एवो जे वेग—कपडानो आडवर-
 सपरनी टापटीप. जेमेके लैन मुनियोनो पोतवच्च, रजोहरण,
 गृहपत्ति आदि; यतियोनो श्वेतवच्च, रजोहरण आदि, सन्यासी-
 ओनो गेरु कपडा, चाखडी, डड, कमडल आदि; जावाओनो
 मभूत, लगोट, टिळाटपका, चिपियो आदि, फकीरनी कफनि,
 माला आदि, आ सर्व ते ते लोकोनो वाद्यवेश जाणवो कारण
 के आधी सामान्य जनता पण विना पूछये जाणी शके छे के-
 आ कोइ साधु या फकिर छे पण अर्ही तच्चदृष्टि तेमा खास
 धर्म होय एवो नियम नयी, कारण के धर्म साये वाद्यवेश
 ऐकान्तिक सवध धरावतो नयी परमार्थ के—ज्या वाद्यवेश होय
 त्या धर्म होय, अने वाद्यवेश न होय त्या धर्म न होय, एवो
 वाद्यवेश तथा धर्मनो एकान्तव्याप्ति सवध नयी निदान के-
 अष्टाचारियो, पासत्याओ, वैश्विडवको अने नाटकीयाओ तथा
 यतियो पण आ वाद्यवेश धारण करे छे तदपि त्या धर्म देखातो
 नयी. फरी केटलाक महानुभावो उच्च आदर्शपुरुषो वाद्यवेश
 विना पण धर्मिष्ठ देखाय छे, अतएव अत्रे ग्रथकर्त्ताए “वाद्य-
 लिंगमसार” वाद्यलिंग-वेशने असार—तुच्छ कद्यो परमार्थ
 के—वाद्यवेश ए खास धर्ममाप्तिमा हेतुभूत ज छे एवो अखड्य
 नियम नयी, तेम वैश्विडवको पण तेनो दुरूपयोग करता नजरे
 देखाय छे. आ वे कारखोधी अर्ही वेशने आचार्यश्रीये तुच्छ
 गण्यो, परतु ए तो निश्चित छे के—वाद्यवेश धर्मसस्थापक, मर्या-
 दावधक, लज्जावर्धक तो अवश्य छे ज, ११ १

धर्मप्राप्तक लक्षणय छे रररो, छता अर्ही जे निषेध जणाव्यो छे तेनो भावार्थ एटलो ज के धर्मप्रति खास एकान्त, भवाध्य, अन-तर कारण बाधपेश नथी, तेमज परपराए पण कारणभूत शि-थिल आत्माओने ज थाय छे, अन्पने नही ज आ परथी बाध-वेश अपेक्षणीय छे एवु निश्चित समझवानुं नथी, कारण के-शास्त्रमा सुग्व्यतः ते सिद्धाय मुक्तिनो पण निषेध कर्यो छे, तथा येशरहित भावचारित्री पण अत्रदनीय दर्शाव्यो छे अतः व्यवहा रथी ते सर्वथा स्वीकार्य छे, परतु अत्रे तो तत्रदष्टिनो ज विचार कर्यो होवाथी दर्शाव्यो छे, अतः बाधपेशने असार-तुच्छ कर्यो, परमार्थमा तो एकान्त अखण्ड सत्य होय तेनु जे प्रतिपादन करधु तेज न्याय गणाय ॥

व्यवहारमा बाधवेश धर्मप्राप्ति प्रति प्रधान कारण मनाय छे, जे बाधवेश त्यागनु भान कराये छे, जेथी आ कोई साधु-पुरुष छे, एवी लोकोने प्रतीति अने ते द्वारा धर्मप्राप्ति लोकोने याय छे. आखु छता अर्ही पेशने अप्रमा तुच्छ शा माटे आचार्ये कर्यो ? आ सचोट दलीलनु सभाधान प्रपकार आ रीते करे छे -

बाधप्रथत्यागात्त चारु,

न त्वत्र तादितरस्यापि ॥

कञ्चुकमात्र त्यागात्त हि,

भुजगो निर्वियो भवति ॥ ५ ॥

मूलार्थ—बाह्य परिग्रहको त्याग करवायी काइ मनोहर त्याग कहेवाय नहीं, कारण के आवो त्याग तो जानरने अथवा वेशधारीओने पण होय छे, पण त्या धर्म देखातो नहीं, साप काचळी मात्रने छोडी देवायी काइ निर्विष बनतो नहीं ॥
बाह्य त्याग ते अत्याग सापनु दृष्टात

स्पष्टीकरण—अथ एतले परिग्रह आ परिग्रह बाध अने आभ्यतर एम वे प्रकारनो कहवाय छे धन, धान्य, कुटुब, घर विगेर बाध, तथा लोभ, मोह, प्रेम, आसक्ति, तृष्णा विगेरे आभ्यतर परिग्रह जाणवो आचार्यश्री कह छे के—आ धन, कुटुब, घर आदिनो बाह्य परिग्रह केवल छोडवायी—त्यागवायी काइ धर्मापणु आत्माने प्राप्त यतु नहीं, कारण के आ रीते बाह्य त्याग करवा छता आभ्यतर त्याग तो न ज होय, किन्तु दुष्ट अनेरु वासनाओ, पुद्गलभावनो अद्भूत मोह, मान, पूजा, प्रतिष्ठा अने कीर्तनो लोभ, अनिष्ट तथा अभीतिवर्द्धक पदार्थनो द्वेष, विषयोनी आसक्ति एव तृष्णा यथावद् बनी रही होय तो ते त्याग ज न कहेवाय; परंतु ते मोह ज छे—उपरनो आडपर ज कहेवाय—लोकुरजन धाद्याचार ज कहेवाय, आयी ज अर्ही धर्मापणानी गधमात्रा पण नहीं होती, किन्तु आवो त्याग तो केवल पापमकृतिना उदयनु फल जाणवु जन्मातरमा भ्रमण करावनार कर्मबधक आ त्याग जाणवो, एव आवा त्यागपी जो त्यागीपणु—सत्य साधुपणु सुलभ होय, धर्मापणु आत्माने मलतु होय, तो श्वान आदि अने धूर्त मनुष्यो कब-

आचो त्याग घारे अंतर त्यागे छे, छता तेमा धर्पनी मध सासात देखातो नथी, एटले नितान्त बाधत्याग ए मनोहर त्याग न ज कहेवाय आचार्यश्री ए ज वातने उचरादर्थी सचोट इष्टान्त भापी सिद्ध करे छे व्यवहारपा आ वात प्रसिद्ध छे के-सर्प पोताना उपरनी काचली उतारी नाखे छे, परतु एतावन मात्रयी साप लेश पण विपरहित बनतो नथी किन्तु विपधारीज रहे छे. एव आभ्यतर त्याग विना बाधत्यागी साचो त्यागी, सत्य साधु कहेवाय नहीं-धर्मी कहेवाय नहीं निदान ए के-लोकोने जे न्यागनु मान, आ त्यागी पुरुष छे एवी बुद्धि बाधवेशयी उपजे छे, ते केवल लोकोनो त्याग प्रतिनो अद्भूत प्रेम साधुओ प्रति पोतानो साचो पक्षपात, अने साधुओ त्यागी छे एवी पोतानी इठ मान्यताने लीधे ज अथवा लोकोनी भद्र-प्रकृति, कारण के-लोको धर्म पण तुरत ज पामे छे, अने बाध त्यागीमा ज्यारे गोटाळो देखे छे त्यारे अर्म पण तेयी अधिक पामे छे, आधी बालवर्गने जे बाधवेशयी धर्म प्राप्त थाय एटला मात्रयी ते धर्म्य छे, प्रधान छे, एम न कही शकाय निष्कर्ष ए के-आभ्यतर त्यागपूर्वक बाध वेश ज धर्मप्राप्तिमा मुख्य कारण बने छे एम जाणु। केवल बाध वेश तो अप्रधान ज कळो छे.

फरी एज वातने आचार्यश्री अन्य मतना प्रमाणयी शुष्ट करी अधिक सिद्ध कर छे—

मिथ्याचारफलासिद्ध

ह्यपैरपि गीतमशुभभावस्य ।

सूत्रेऽप्यविकलमेतत्प्रोक्त-

ममेध्योत्करस्यापि ॥ ६ ॥

मूलार्थ—अपर-अन्यदर्शनीयोए पण निश्चयपूर्वक अशुभभाव विशिष्ट एवा वाद्यत्यागोनु फल मिथ्याचार-कपट-फल कथु छे, अने जैन सिद्धातमा पण आवा त्यागने अवि-फलपण विष्टाना उकरण जेवो कथो छे

वाद्यत्यागनु फल

स्पष्टीकरण—अपर-जैन सिवायना दर्शनवालाओ अर्थात् पातजल विगेर आभ्यतरत्याग विनाना वाद्यत्यागने अशुभ-भाव रहे छे अर्थात्-केवल वाद्यत्याग ते ज कहेवाय के जेना अतरमा अनरु मर्लान वासनाओ, दुष्ट मरुत्यो, विषयोनी तृष्णा आदि भया होय, अतएव आ त्यागने अशुभ, अपवित्र त्याग अर्हा कथो, अने आवा त्यागनु फल ते लोमो स्पष्टतया-निश्च-येन मिथ्याचार-कपटीत्याग दाभिक फल दर्शावे छे, जेम कोइ नट लोकोने रजन करवा, मोह उत्पन्न करवा अल्पकाल माटे मुनिवेश धारण करे छे, पण नाटकना अते ए वेश उतारी नाखे छे, परतु अतरमा तत्सवधी लेश पण भाव के त्याग होतो नथी, जेथी आ न्याग नाटकियो-त्याग दाभिकृत्याग कहे-वाय छे एव अत्रे पण उपरोक्त त्यागने नाटकीयो त्याग कथो छे आ त्यागनु फल मिथ्याचाररूपी फल सिवाय अन्य फल मलतु नथी बहुमा शास्त्रकर्ताओए आवा त्यागने तो केवल महापापना उदय तरिके जणाव्यु छे.

“ मिथ्याचार ”

मिथ्याचारनु स्वरूप आ प्रमाणे छे—“ बाह्येन्द्रियाणि सयम्य, य आस्ने मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थं विमूढात्मा, मिथ्याचार स उच्यते” ॥१॥ “बाह्य इन्द्रियोनो सयम करी जे मूढात्मा इन्द्रियोना विपयोनु मनथी ध्यान करतो सयममा-त्यागमा रहे ते मिथ्याचार कहेवाय ” दुरुमा जेओ साधुपणु बाह्यथी धारण करी भ्रष्टाचारो सेवे, लोकोने ठगे, लोक रजनार्थे अनेक कष्टो वेठे, विषयवासनाथोने पुष्ट करे, शरीरादिक्नी पुष्टि माटे अनेक उपचारो करे, ए सर्वनो त्याग दाभिरुत्याग, तिरस्करणीय विचारवा योग्य त्याग जाणवो आवा त्यागमा रहेवा करता ते त्याग छोडी उत्तम ग्रहस्थधर्म स्वीकारी व्यापारादि कर्मथी आजीविका करवी ते हितावह कहेवाय अत्रे टीकाकार भार दइ आवा वेश माटे सखत फटको मारे छे रोग तथा उपभोग रहित पुरुषे पढितोमा निंदाकारी तथा क्लिष्ट एवां आजीविका केवल पेट भरवा खानर ज अथवा मानपूजाना लोलुपीपण्याथी आभ्यतरत्याग विना खाली बाह्य-वेश धारण करवा ते पूर्व जन्मना उपार्जित अशुभकर्मनु विपाक फल-कडुफल जाणवु निदान के-पूर्वना पापकर्मना उदयथी आवो त्याग उदयमा आवे, धारण कराय, वर्तमान समयमा आ वात बहु विचारवा जेवी छे अयस्त्वां आटलु कही जयावे छे के अन्यदर्शनमां ज नहीं, किन्तु जैन सिद्धान्तमा पणु आवा त्याग माटे बहु बहु कडक रीते कथु छे अणतसो द्धवर्तिगाइ

“ उकरडो अने त्याग ”

विगेरे गायाओवडे गुणशून्य त्याग मलमूत्र नाखवाना उकरडा जेवो जाणवो. जेम उकरडो मळमूत्रयी व्याप्त होवाथी लोको तेना प्रति तिरस्कारभावयी देखे छे, एव उपरोक्त त्याग पण गुणशून्य नहीं, किन्तु अनेक मलिन वासना, विषयतृष्णामान, पूजा प्रतिष्ठा, लोभरूप, मळमूत्र भरेल होवाथी उकरडो छे उकरडामा दुर्गंध ज होय तेम अहीं पण दुर्गुणरूप दुर्गन्धनी मात्राओज देखाय छे. वधुमा सज्जनो उकरडा तरफ तिरस्कार भावयी नथी देखता पण तेने अमुक अशे सादरभावयी पण देखे छे. ज्यारे आ त्यागरूप उकरडा तरफ तो सज्जनो शु पण महात्माओ पण तिरस्कार्य नजरयी देखे छे तेनो छाया खेवानो पण निषेध करे छे, पटले विष्टाना उकरडा करता आ त्याग तो सर्वांशे उपेक्षणीय छे, दूरयी सो सो गजना नमस्कार करवा योग्य छे. परमार्थ के-आवो त्याग देखी तेना पर पूज्यभाव धारण करवो ते पण महापापकारी समज्जु ज्यारे बालवर्ग आवा त्यागने पण धर्मबुद्धिए निहाळे छे, वदन, पूजन, नमस्कार करे छे, माटे ज अहीं आ वर्गने कनिष्ठकोटिनो विद्वानो माने छे. ॥

प्रथम कहु हतु के—“बालवर्ग” करता मध्यमबुद्धि वर्ग चडतो छे, कारण के आ लोको खाली वेशयी ज खुशी नथी घता किन्तु वर्तन आदि तपासे छे पटले ह्ये अहीं मुनियोनु वर्तन कोने कहेवु ? अने ते वर्तन केतु होय ? ए बात-

जाणवानी रही पाटे ग्रयइती ए वातनो स्पष्ट खुलासो करे छे.—

वृत्त चारित्र खल्वसदारं—
भविनिवृत्तिमत्तच्च ॥

सदनुष्ठान प्रोक्त

कार्ये हेतूपचारेण ॥ ७ ॥

मूलार्थ—असद्-अशुभ पापकारी आरमोना त्यागरूप-अभावरूप जे क्रिया ते चारित्र, आनु नाम ज सद्वर्तन जाणतु. आ वर्तने कार्यमा कारणनो उपचार-आरोप करी शास्त्रमा सदनुष्ठान कछु छे ”

“सत्य चारित्र अने तेनी व्याख्या”

स्पष्टीकरण—वृत्त-वर्तन वृत्त एतले वर्तन-वर्तन, आचार, आनु नाम चारित्र-सत्यन्याग आ सर्व शब्दो एक ज भवने ध्वनित करे छे एतले एकार्थ प्रतिपादक शब्दो जाणवा. परमार्थ ए के-विधि अने प्रतिपेय वच्चे जेमा होय ते चारित्र जेमरे टीकाकार कह छे-हिंसा, जूठ, चोरी, मैयुन, मूर्च्छा ए पाप कर्म आखाना द्वारी-आधवो छे आ पाचैनो जेमा सर्वश्रे निपेय होय तथा अहिंसा, जूटनिवृत्ति, अदत्तत्याग आदिनु विधान जेमा परान्तव जणाव्यु होय, भूलमा ‘खलु’ ए वाक्य अवधारणार्थे-निश्चयार्थे आपेल होवाधी, आवा प्र-कारना वर्तनने न चारित्र दर्शाव्यु छे निदान के-विधि तथा

प्रतिषेध विना नु अयमा उभयकोटी पैकी एक ज विधि या प्रतिषेधकोटीबालु चारित्र न कहेवाय, कारण के-निगोदवर्ती जीवो हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन विगेरे काइ करता नथी पएले तेओ शुं चारित्री कहेवाय खरा ? नहीं ज एव पापाण अंगर लाकडामा अहिंसक, जूठरहित विगेरे भावो स्पष्टतया मालूम पडे छे, अपवा मूर्च्छित मनुष्यमा आ चिन्हो मालूम पडे छे तो शु ते पदार्यो चारित्री कहवाय ? नहीं ज. आ हेतुयी विधि-प्रतिषेधरूप ज चारित्र अत्रे अपेक्षित छे एम 'खलु' ए वाक्यथी जणाव्युं आनो मथितार्थ मूलकर्त्ता जणावे छे के- 'असदारभविनिवृत्तिमत्तच्च' असद्-बुरा-खोटा एवा जे आरभो के लेनायी भवनो प्रपञ्च ववे, अनतर्म्मोनो वय थाय, आत्मा जन्म-परणना फेरामां भटके, छक्कायनो वय सणो क्षणो जेमा होय, तेनो त्याग-निषेध जे वर्तनमा होय ते अही चारित्र जणावु, आवा चारित्रने शास्त्रकर्त्ताओ सदनुष्ठान कह छे

“ सदनुष्ठाननुं लक्षण ”

शास्त्रमा आत्मीय विशिष्ट त्यागरूप परिणामनु नाम चारित्र कथु छे ने बाह्यक्रियारूप सद्वर्तननु नाम सदनुष्ठान जणाव्यु छे. आ रीते चारित्र तथा सदनुष्ठाननो भेद सुझो दर्शाव्यो छे, छता अही चारित्रने ज अयकर्त्ता सदनुष्ठान जणावे छे. तेनो सुलासो करवा श्रीमान् हरिमद्रमूरिजी कहे छे के-“ कार्ये हेतूपचारण ” प्रथम आत्मीय विशिष्ट परिणामरूप आभ्यतर चारित्र-लोभ वृष्णा आदिनो त्याग करवारूप भाव

प्रकट थाय अने त्यारपट्टी तेना फलरूपे बाह्यक्रिया—सर्व्वर्तन विशिष्ट आचारोनी जन्म थाय छे पटले चारित्र ते कारणा अने सदनुष्ठान तेनु फल कार्यरूप छे, माटे अर्ही कार्यमा कारणांनो उपचार आरोप करी चारित्रने ज-आभ्यतरत्यागने ज सदनुष्ठान कष्टु निदान के—सुदर सदनुष्ठान आभ्यतरत्यागपरिणति विना मली शके नही. आ रीते सुदर सदनुष्ठान ते ज जाणवु क-जे परमार्थ-चारित्र-सत्यचारित्र होय अर्ही वर्तन बाह्यक्रियारूपी चारित्रनी परीक्षा करवा मध्यमबुद्धिजनी प्रवृत्ति करे छे माटे तेअोने बालवर्ग करता चढती कोटीना कदा आठलु विशेष जाणवु.

हवे उपरोक्त सदनुष्ठान तो शुद्ध तथा अशुद्ध पम वे प्रकारनु छे अतएव आ बसे प्रकारनु सदनुष्ठान ग्रयकर्ता जणावे छे

परिशुद्धमिद नियमादांत-

रपरिणामत. शुपरिशुद्धात् ॥

अन्यदतोऽन्यस्मादपि

बुधविज्ञेय त्वचारुतया ॥ ८ ॥

मूलार्थ—सुविशुद्ध-अतिनिर्मल एवा आत्मीय परिणाम-पूर्वक जे सदनुष्ठान प्रगटे ते सर्वतो शुद्ध चारित्र जाणवु, अने ए सिवाय अन्य कारणोधी जे बाह्य अनुष्ठान प्राप्त थाय

ते अशुद्धचारित्र. अर्हा शुद्ध तथा अशुद्धपणानी परीक्षा पंडितजनो ज करी शके. ॥

“सदनुष्ठानना भेदो”

स्पष्टीकरण—अनुष्ठान पटले बाह्यवर्तन, आ वात उपर जणावी गया. आ अनुष्ठान वे प्रकारनु करुं छे चारित्रमोहनीयकर्मना क्षयथी अथवा उपशम यथाथी आत्पानी विशिष्ट त्याग तरफ जे अभिरुचि प्रगटे, आत्मा पौद्गलिक भावो प्रति वैषयिक सुखो तरफ अने ससारना मोहक पदार्थो प्रति, उदासीन भाग्यी, कर्मवर्धकभावथी, हेयपणो समजी तेनी लालसा रहित घने, एव शास्त्रनिर्दिष्ट आज्ञानुसार जे क्रिया-ओनु सेवन, पालन करे, दुकमा ज्ञानविशिष्ट वैराग्यवडे जे चारित्र प्राप्त थाय आने ज शास्त्ररुर्ताओ सदनुष्ठान कहे छे. मूलमा ‘नियमात्’ ए पद छे, पटले निश्चयथी आ ज सदनुष्ठान शुद्ध कहेवाय निदान के-जे चारित्रमा ज्ञानविशिष्ट वैराग्य होय ते चारित्र शुद्ध अने वदनीय जाणवु, सिवाय पूजावा मनावा खातर अथवा स्वर्गसुख, राज्यलोभ, धनलोभ, यशःकीर्ति माटे जे त्याग स्वीकाराय ते अशुद्ध अनुष्ठान फतु छे. यद्यपि वझे अनुष्ठानो बाह्यदृष्टि तुल्य मालुम पडे छे तदपि एक त्याग शुद्ध आत्माभिमुख-मोक्षाभिमुख होवाथी अतरग पवित्र विचारोथी नितान्त बाह्यभ्यतर वझे रीते शुद्ध छे अने वीजो त्याग मलीन वासनाओथी वासित होइ सर्वथा अशुद्ध छे पटले पहेलो त्याग ज्ञानविशिष्ट वैराग्यनु फलरूप छे, ज्यारे वीजो

त्याग दुःख या मोहगर्भित वैराग्यनु फलरूप छे एउ व्यवहार-
मा आ बन्ने त्याग सरिखा देखाय छे.

“ बुधज्ञेयता ”

सामान्य मनुष्य आमा काइ पण भेद देखतो नयी तो
पण बनावटी अने कुदरती हीरानी परीक्षा श्वेरी तुरतज
करी ले छे, तेम बुधजनो आ बन्ने त्यागमायी शुद्ध
त्याग तथा अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीमा रहेला केटलारु
क्रियारुचि, क्रियाकृशल्ता, पापपरिहार, यतनाप्राधान्यता,
सत्यपरुषणता, प्रशान्तभाव, अल्पमोह आदि विशिष्ट चिन्हो
द्वाराए शीघ्र करी शके छे, माटे ज अही मूलमा कस्यु के-
' बुधविज्ञेय ' अर्थात् बुध मित्राय आ परीक्षा मध्यमवर्ग के
बालवर्ग न करी शके कारण के ते लोकोमा एटली विवेचक
शक्तिनो अभाव होय छे, ए बात पहेला ज अग्रकर्ताए
स्पष्ट करी छे ॥”

बुधजनो शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा कया लक्षणोयी
कर छे ए जाणतु जोइये आनो खुलासो भगवान् हरिभद्र-
सरिजा अही आ रीते दर्शावै छे-

गुरुदोषारभितया तेज्वकरण-

यत्नतो निपुणधीभिः ॥

सन्निदादेश्च तथा

ज्ञायते एतन्नियोगेन

मूलार्थ—चारित्र्यनो नाश थाय तेवा गुरुदोषो—म्होटा पापोतुं सेवन करे, श्रम करे, अने न्हाना पापोनो वचाव करे तेनी यतना पाले, तथा उत्तम पुरयो, सज्जनोनी निंदा करे विगेर लक्षणोथी निपुण्युद्धि—धुधजनो शुद्ध अने अशुद्ध त्यागनी परिच्छा करी वारणे छे ॥

“ दाभिक त्यागनी परीच्छाना साधनो ”

स्पष्टीकरण—शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यार्गाओना विशिष्ट वर्तनयी ज यद् शके ए वात उपर जखारवा गया छे फरी आ वातने ज हरिभद्रसूरिजी अर्ही स्पष्ट करे छे. जेओ त्यागीपणानु अभिमान अने तेनो वेशधारण करी त्यागीपणानो म्होटो ढोळ घाली लागी लावी वैराग्यनी वातो करी, हजारोने आत्मकन्याणनो उपदेश आपी, ससारनी असारता, लक्ष्मीनी चपलता, विषयोनी दुरतता विगेर जणावी, पोते ज शासनना उदाह थाय, अधर्मा वृद्धि थाय एवा प्रकारना अने चारित्र्यनो जडमूलमायी ज नाश थाय, चरणसिद्धि अने करणसिद्धिनो सर्वथा लोप थाय, महाव्रततनो गद्य पण न रहे तेवा गुरुदोषो—म्होटा दोषोतुं सेवन करे जेवा के—स्त्रीसंग, स्त्रीकराओ आदि साये दुनिया विन्दकर्म, हस्तकर्म विगेरे पापकर्मो, शिष्यादि वधारवा अनेकधा मायावादो, छळ, प्रपंचो खेलवा, पुस्तकादिना निमित्तथी गुप्तरीते हजारो रूपीयानो संग्रह अने वीजा हाये व्याज विगेर उपजाववु, शरीरनी पुष्टि माटे रोगादिकतु निमित्त निकाली

अनेक पौष्टिक दवाओं, पाको तथा रसवतीयो तैयार कराववी, यदि आ सर्व दोषो प्रगट यवानो समय आये तो नितान्त जूट अने बीजानी जीदगी पाटी भेगी करवा दुनियायी उतारी पाडवा अनेक खोटा प्रपचो करवा चूके नहीं भदारोमायी वाच वाना शोधवा लिष्ट करवाना न्हाने पुस्तकोनी चोरी करवी विगेरे अनेक म्होटा पापो सेवन करे, रात्रिविहार, वाहन आदि साये राखी विहार करवो, स्वार्थनो उपदेश आपवो, विरुद्ध उपदेश आपवो, स्वाग्रहने पुष्ट करवानो प्रयत्न करवो, तथा लोक समूहमा प्रशसा कराववा न्हाना न्हाना दोषोनो वधाव करे, तेनु प्रायश्चित्त ले, लोको समस्त पश्चात्ताप, गर्हा, निंदा करे. जेवा के—रजोहरणनी आठ, मुहपत्तिनी आठ, स्त्रीसघट्टो विगेरे पटले खाळे डुचा मारं अने दरवाजा खुल्ला राखे तेना जेवु करे, डुकमा लोकोमा महात्मापणु केम जणावाय तेवो प्रयत्न करे

एव पोतानामा तेवा विशेष गुणोनो अभाव छता गुणवान् त्यागी महात्माओं तपस्वीयो, उत्तमगुणी श्रावको अने सज्जनीनी बारवार अन्य न जाणो तेम वाक्पाटवतायी निंदा करे, तेयोनै उतारी पाडवा तेओना एक सामान्य सरसव जेटला दोषने मेरु जेटलो बनावी लोको समस्त अनेकधा टीकाओं करे, बारवार तिरस्कार करे, पोताना दोष सामे सो देखे ज नहीं, डुकमा आ छत्तणो गुप्त रीते जेमा होय के जे लक्षणो उपलक्ष दृष्टिये अन्यने न देखाय

माटे ज अहीं ग्रथकर्त्ता जणावे छे के-अत्रे शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा " निपुणाधिभिः " कुशाग्रबुद्धिवानो सत्यतत्त्वना प-रीक्षको ज करी शके निदान के-त्यागनी परीक्षा करवा इच्छके उपर कथित सर्व बात भ्यानमा राखवी, अने तदनुसार परीक्षा करी उच्च त्याग प्रति पूज्यभाव धारण करवो, केवल विद्वत्ता, व्याख्यानकौशलता के प्रसिद्धनामाकिनता देखी अपलावबु ते भविष्यमा नितान्त स्वात्माने धर्मभ्रष्ट करवानो ज उपाय छे.

बस ए रीते घालवर्ग तथा मध्यमबुद्धि जनो शेमा धर्म माने छे ? अने ते केटला अशे अनुचिन छे ? ए विषय पर विस्तारयो शंका अने प्रत्युत्तर करी विचार कर्यो. हवे बुध जनो आगमतत्त्वनी परीक्षा करी धर्म प्राप्त करे छे ए बात आचार्य श्री प्रथम कही गया हता, तो आगमतत्त्व कयु ? अने तेनी परीक्षा शी रीते करवी ? तेनो विचार ग्रथकर्त्ता जणावे छे सर्वमा आ विषय सूक्ष्म होवाधी अने ते ज परिणामे स्वीकार्य तथा हितावह होवाधी, तेनो विचार ग्रथकर्त्ता बहु उदा उतरी जणावे छे.

आगमतत्त्वं ज्ञेयं,

तद्दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया ।

उत्सर्गादिसमन्वित-

मलमैदपर्यशुद्धं च

॥ १० ॥

मूलार्थ—जे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोयी अने इष्ट पटले आगमना पोताना ज बचनोवडे अविरुद्ध होय, एव उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय, तथा ऐदपर्य-परमार्थवडे शुद्ध होय ते ज खरु आगमतत्त्व जाणवु

स्पष्टीकरण—आगमतत्त्वनी कसोटी करवा अर्ही हरिमद्र-सूरिजी खरो मार्ग दर्शावे छे अत्रस्य श्लोकमा हरिमद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षा माटे त्रण प्रकारो जणावी उत्तरना घे श्लोकयी तेनु विवेचन करे छे. अर्ही आगमतत्त्वनी परीक्षाना मुख्य त्रण विभागो कह छे आ त्रण विभागो आ रीते जाणवा—जे आगमतत्त्व दृष्ट अने इष्ट बन्ने रीते अविरुद्ध वाक्य होय १, उत्सर्ग अने अपवादयुक्त होय २, तथा ऐदपर्यवडे परिशुद्ध होय ३.

दृष्ट, पटले प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणो, अने इष्ट पटले आगम आ बन्नेनी कसोटीमा जे आगमोक्त तत्त्व अविरुद्ध होय, एकवाक्य होय परमार्थ ए के—आगममा आत्मा, कर्म, बंध, मोक्ष विगरे पदार्थो न्ह्या छे आ पदार्थोनी प्रथम प्रत्यक्षादि प्रमाणद्वारा परीक्षा करवी, यदि ते परीक्षामा जो ते ते पदार्थो बराबर सिद्ध थाय, अविरुद्ध मालुम पडे तो ज ते तत्त्व सयुक्तिक कहेवाय आ बात समजवाने आपणे दाखला तरीके आत्मानो ज सामान्य विचार करीये. शास्त्रमा “अत्थि मे आया उववाहृष्ट” “एगे आया” मारो आत्मा उत्पत्ति धर्मवान् छे.” इत्यादि कथं छे. आत्मा—पटले चैतन्य

जीवनामक पदार्थ अने ते शरीरर्था भिन्न तथा उत्पत्ति-विनाश रूप पर्याय-धर्मवान् छे, खाण्णमा रहल माटी हमेशा कायम ज छे, परतु जेम कुमार आदिना हाथमा आव्या पछी तेना विविध घट आदि आकारो-पर्यायो वने छे, अने जूना जूना पर्यायो-धर्मनो नाश यतो प्रत्यक्ष देखाय छे परमार्थ के-माटी ज्यारे घटपणो परिणमे त्वारे घटाकाररूप पर्याय उत्पन्न थयो अने माटीरूप पर्याय ते समये न ओऽखावाधी तेनो नाश थयो एव माटीरूप द्रव्य घटमा कायम ज छे. तथापकारे आत्मा पण जानवर, मनुष्य, देवता, नारकीरूप गतियोमा प्रत्यक्ष देखाय छे, कारण के-आत्मा सिवाय जगतनो सर्वव्यवहार लुप्तप्रायः थइ जाय, धर्म या पापकर्म पण निष्फल मानवा पडे, अत एव ज्ञानादि गुणवान् विलक्षण शक्तिवालो कोइ आत्मा नामक पदार्थ छे एम मानवु जोइये. आ आत्मा यद्यपि अछेद्य, अमेद्य, अदाह्य, अजर, अमर, अविनाशी, धर्मवान् छे, तो पण माटीनी माफक नवा नवा रूपणो परिणमे अने पूरातनरूपणो तेनो अभाव यतो अनुभवाय छे जानवरपणु छोडी मनुष्यपणु, मनुष्यपणु छोडी देवपणु, देवपणु छोडी जानवरपणु एव नारकी-पणु आ रीते आत्मा नवा नवा पर्यायो-धर्मो अनुभवतो तथा जूना जूना धर्मो नो त्याग करतो प्रत्यक्ष अनुभवपयमा आवे छे, अने प्रत्येक अवस्थामा आत्मा पोने शाश्वत न देखाय छे, कारण के पूर्वावस्थामा अनुभवेल, सेवेल, करेल, दरेक कार्यो उत्तर अवस्थामा स्मृतिपयमा आवता तथा भोगवाता मालूम पडे छे.

अन्यथा जेम देवदत्ते करल कार्यों अने कर्मों यत्नदत्तने स्मरण-
 मा तथा भोगमा आवता नहीं, तेम पूरावस्थामा करेल कार्यों-
 नु स्मरण तथा कर्मोंनो भोग उत्तरावस्थामा आत्माने बाल
 अवस्थामा करेल कार्योंना स्मरणनी माफक समझे ज नहीं.
 अतएव आत्मा उत्पत्ति आदि विशिष्ट धर्मयान् छे ए शास्त्रोक्त
 तत्त्व प्रमाणधी अविच्छिन्न सिद्ध थाय छे, एव आत्मा प्रत्येक
 शरीरभेदे भिन्न भिन्न छे तो एण आत्मरूप स्वरूपनी अपेक्षाए
 सर्व आत्माओ तुल्यरूप छे अर्थात् मनुष्य, देव आदिमा जेवु
 आत्मतत्त्व छे तेवु ज आमनत्त्व एरु कीडामा अने हायीना
 शरीरमा एण छे हा मात्र मनुष्यमा केटलीक विशेष आत्म-
 शक्तियो आविर्भूत छे, उत्तरोत्तर विकास यतो देखाय छे,
 ज्यार देवोमा एयी एण अधिक आत्मशक्तियो विकसित होय
 छे अने कीडाओमा ए सर्व शक्तियो कर्मोंना जोरे तिरोभावणो
 रहेल होय छे, निदान के-अगाए बुद्धिमान् सर्व विग्रामंपन्न
 कोई मनुष्य वेदना या मदिरापी मूर्च्छित यया पछी तेनी सर्व
 शक्तिओ विग्रमान छना तिरोभावरूप थइ गयेल आपणो अनु-
 भवीये छीअने, एव कीडा जेवी अरम योनि प्रविष्ट आत्मानी
 सर्व शक्तियो अधमयोनि तथा अगारमोंना कारणो दबायेल
 ज छे एम मानवु जोइये, नहीं रु तेओमा आत्मा नहीं अथवा
 शक्तियोनो अभाव छे निष्कर्ष ए क-आत्मरूपेण सर्वात्मा-
 ओ तुल्य स्वरूपवान् होवायी सामान्यरूप एरु ज छे, ने विशेष
 रूपेण अनन्त आत्माओ छे, निदान के-ए रीते आत्मा प्रत्यक्ष

आदि प्रमाणथी जेम अविरुद्ध स्वरूपवान् अनुभवाय छे, तेम
 इष्ट एतले आगमना पूर्वापरना वाक्योथी पण अविरुद्ध स्वरूप-
 वान् ज सिद्ध करेल छे, परतु आगमना एक देशमा आत्मा
 माटे अन्यथा प्ररूप्यु होय, अने अन्य स्थलमा तेथी विरुद्ध
 कहु होय तेम न होय हा जैनदर्शनमा निश्चय अने व्यवहार,
 बाह्य अने आभ्यतर, द्रव्य अने भाव, पर्याय अने गुण विगेरे
 स्वरूप प्ररूपण करती बखते भिन्न भिन्न स्वरूप दर्शाव्यु छे खरु,
 परतु ए सर्व स्वरूप कथनमूल आत्मस्वरूपनो बाधकर्त्ता न
 होवाथी किन्तु पुष्टिकारक ज होवाथी तेनु नाम विरुद्धकथन
 न कहेवाय, उजडु ए तो सत्य तत्त्वकथन, सर्वज्ञकथित तत्त्व-
 पणानी ज सिद्धि कर छे अही आगम-परीक्षामा विद्वानोए
 एतलु ज तपासवानु छे के-एक ज वस्तुतत्त्वनु कथन एक
 स्थलमा भिन्न होय अने अन्यत्र ते ज वस्तु भिन्नरूपे कही होय
 आनु नाम विद्वानो विरुद्ध वाक्यता कहे छे दृष्टान तरीके एक
 स्यानामा “ अस्ति आत्मा ” एवु कहु, अने फरी अन्यत्र
 “ नास्ति आत्मा ” एम कहु होय आमा सत्य शु समजवु?
 अथवा जेम वेदमा कहु छे के-“ मा हिंस्यात् सर्व-
 भूतानि ” “ सर्व जीवोनी हिंसा न करवी ” आम कथा
 पछी फरी ते लोको कहे छे के-“ पद् शतानि नियुजेत,
 पशुनां मध्यमेहनि ” मयमेह नामना यज्ञमा छ सो पशु-
 ओनो होम करवी ” जे हिंसा पापकारी-बधकारी मानी तेनो
 सर्वांशे निषेय कयो, ते ज हिंसाने पुनः धर्म्य मानी, स्वर्गदात्री
 मानी विषेय मानवी ए शु विरुद्ध न कहेवाय ?

फरी जे आगमतत्त्व उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय पटले दरक वस्तुतत्त्व माघान्य पणो विधेय अने परिहार्य दर्शावी पुनः विशिष्ट कार्यनी अपसाए विधेयतया दर्शावी होय, निदान के-विशेषवादना स्थल पर विशेषवादनी अने सामान्यवाद स्थल मा सामान्य कथन बराबर कहु होय, किन्तु विशेष स्थानमा सामान्य कथन अने सामान्य स्थलमा विशेष कथन कहु न होय. परमार्थ के-आने जैन शास्त्रो उत्सर्ग तथा अपवादवाद कहे छे ए रीते जे आगमोक्त तत्त्व कथन कर्तु होय तेज आगमतत्त्व नितान्त ग्राह्य जाणवु जेम के-जैनशास्त्रो हिंसामा पाप कहे छे, जलना जीवोनो आरम्भ करवाधी बिनाश थाय अने तेधी पापबध थाय एवु कह छे, छता मुनियो एक स्थलधी अन्यत्र गमन करता होय अने मार्गमा नदी आरे तो यतना-पूर्वक उतरा सामे कठि जाय एवी जिनाज्ञा छे आ स्थलमा जलना जीवोनो बध थाय छे तो पण तेयोने पापबध तुच्छ कसो छे, कारण के-वत्र करता आरम्भमय प्रवृत्ति करे अने जीवोनो रचाव करवानी अपक्षा राखे नहीं तेमज कल्याणनी इच्छा विनानो होय, दुकमा सोपयोग वर्तन न राखतो होय एवो ज बध अवश्य पुष्ट पापत्रय कर एवु शास्त्रो कहे छे. अथात् उत्सर्गधी जीवबधनो निषेध करी, तेमा पाप प्रतिपादन करी फरी अपवादधी नदी उतरवानी आज्ञा आपी तेमां धयेल जीवबधधी अल्पत्रय जणाव्यो, कारण के मुनि नदी उतर्या सिनाय सामे काठे जड़ शके नहीं अने जलना जीवोनो तेमा

उत्तरवाची अवश्य वध थाय ज एटले ए वध अपरिहार्यरूप
 होवाची आसोए नदी उत्तरवानी मुनियोने अपवादयी आझा
 आपेल छे कोइ साग्गी नदीमा डूवती होय, अन्य कोइ उतारु
 न होय अने मुनि त्या टाजर होय तो मुनि पण तेमा पढी
 साध्वीनो वचाव र्गी ले कार्य पढे ग्रहस्य मुनिने दोपयुक्त
 आहार आपे-आ सर्व आझाओ प्रभुए अपवादयी आपी छे ने
 तेमा दोपना बदले लाभ ज दर्शाव्यो छे परमार्थ ए के-ज्या
 उत्सर्ग, सामान्य आझाथी वर्तन करवा जना विशेष आत्महानि,
 अकल्याण यतु होय त्या विशिष्ट आत्मलाभ, कल्याण माटे
 विशेष रथन करी अन्यथा प्रवृत्ति करवानी छुट आपी होय ते ज
 आझाओ निर्दोष सयुक्त अने सर्वज्ञवाच्यरूप कहवाय मथितार्थ
 एटलो ज के उत्सर्ग वाच्य कल्याणने माटे होय अने अपवाद
 वाक्यो पण नितान्त उत्सर्गनी पुष्टि करता होय परतु उत्सर्ग
 वाक्यना विष्वक्करूप अपवाद वाक्यो न बने आ प्रमाणो
 विषे जे आगमतत्त्वमा बराबर सचवायो होय, ते ज सत्य
 आगमतत्त्व जाणतु अर्श जेओ यज्ञमा यती हिंजाने धर्म्य तथा
 विषेय माने छे तेओ पण आ हिंसा सापवाद छे एम कहे छे,
 कारण के स्वर्गार्थी यज्ञक्रिया अरथ्य कर अने यज्ञमा जे पशु-
 ओ रल्लिरूप बने तेओ पण यज्ञ तथा वेदमंत्रना प्रभावयी स्वर्ग
 प्राप्त करे छे, एटले आ हिंसा पण अहिंसा ज जाणगी आना
 डुक उत्तरमा कहेवु जोइए के-याज्ञिकोनी आ दलील अनुभव,
 युक्तियो अने प्रमाणोना प्रटारोने लेश पण सहन करवाने अ-

शक्त छे. प्रथम तो यज्ञ धर्म्य छे के नहीं ए मुरय विषय विवादमस्त
छ, तथा यज्ञ सिवाय दानादि क्रियार्थी स्वर्ग न मलतु होय
अने यज्ञयी ज स्वर्ग मलतु होय तो स्वर्गार्थी माटे, अशक्यतया
यज्ञ विधेय मनाय खरु भ्राम छता घाटलु तो चोकस जाणवु
क यज्ञ ए आरभक्रिया होवाथी स्वर्ग तो दूर रहु, किन्तु मनु-
ष्यपणु पण तेनार्थी प्राप्त यवु असभवनीय छे. एव तेमा जे
हिंसा थाय ते पण श्लिष्ट परिणामशूय तो नहीं ज याविको
तेमा जे पशुओनो होम करवा बेसे छे ते काइ तेओनो कोई
पण प्रकारे बचाव ज करवो, तेओने दुःख न थाय तेम वर्तवु,
दयावुद्धि राखी यज्ञ करवो विगेरे काइ विचार राखता होय
ए सबधमा अनुभव अने युक्तियो सर्वथा ना कहे ठे अरे ! जे
पशुओ लारा बराडा पाडता होय, अग्निथी त्रास पापी मृत्युना
भयथी दूर भागता होय तेने बाधी, ज्वरजस्थिथी जम्डी, निर्द-
यतापूर्वक चांडालनी माफक डुकडा करी तेनो होम थाय, तेनी
शेपाओ सानढपणे खवाय ते हिंसामा यदि पुण्य होय, अनुकपा-
भाव होय अने तेथी स्वर्ग प्राप्त थाय तो माता-पितानो यज्ञ शा
माटे न करवो ? परमार्थ के-ए हिंसा श्लिष्ट परिणामय अने
दयावुद्धि रहित होवाथी अधर्म्य अने एरान्त त्याज्य ज छे,-
एटले ते सापवाद केम कहेवाय ? सापवाद प्रवृत्ति तो ते ज कहे-
बाप के जेनाथी आत्मश्ल्याणना मार्गमा स्वलना न थाय अने
उत्सर्गमार्गना एकान्तत पृष्टि ज करे, अतएव याज्ञिक हिंसा तो
उत्सर्गपयनो ध्वंस करी आत्माने दुर्गतिमा घमडी जाय छे,

माटे प्रत्यक्ष तो त्याज्य होवा छता तेने सापवाद वहेवानु सादस करवु ए ज मताग्रह सूचने छे.

पुनः आगमतच्च “अलमैदं पर्यशुद्ध च” अल-अतिशे सर्वांशे करीने ऐदपर्य जेनो परमार्थ परमतच्च शुद्धं निर्मल-निर्दोष होय, एटले जे आगमना वाच्यो वरावर वस्तुतत्त्वनु प्रतिपादन करवामा निपुण होय, भूत, भविष्य तथा वर्तमानमा सरस्वी रीते ज वस्तुतत्त्व दर्शावता होय, प्रत्येक क्षेत्रमा एक ज रीते अविस्वादीपणे भावो प्रतिपादन करता होय, ज्यार ज्यार शासनप्रवृत्ति याय अने तेना प्रवर्तकी शासननी रचना करे त्यारे त्यारे पूर्वपुरुषोना शासन प्रमाणे ज शास्त्रो उपदेशे आधी सर्वज्ञाने तुल्यपणे जे शास्त्रो परमार्थनु वचन करता होय, जे आगम वाच्यो आकाक्षादि दोष रहित होय, अने शब्दप्रतिपाद्य शक्तिविशिष्ट होय ते ज आगमतत्त्व शुद्ध जाणुनु निष्कर्ष एटलो ज के-श्लोकोक्त त्रण विशेषण विशिष्ट जे आगमतत्त्व होय ते ज परम आगमतत्त्व अने ग्राह्य तत्त्व जाणुनु अर्हो दर्शनिल त्रण्ये विशेषणोना परमार्थ अने तेनी विस्तर व्याख्या मूलकर्ता हवे पछीना श्लोकोथी करे छे एटले त्याज तेनो विशेष विचार करवो इष्ट गणाय ॥

उपर आपणे तपासी गया के-आगमतत्त्वनी त्रण प्रकारे परीक्षा करवी, तेमा प्रथम आगम प्रतिपाद्य वस्तु दृष्ट अने इष्ट वन्ने रीते एकवाक्य-अविरुद्धवाक्य होय, ते ज आगम वरावर

निर्दोष जाणवु अतः अर्ही प्रयकार "दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्य-
तया" प्रथम कथीत श्लोकना आ पदनी विस्तृत समाप्ता
करवानो प्रकार दर्शात छे—

आत्मास्ति स परिणामी,
बद्ध सत्कर्मणा विचित्रेण ॥
मुक्तश्च तद्वियोगाद्धि—
साहिंसादि तद्धेतुः ॥ ११ ॥

मूलार्थ—आत्मा जीव छे, ते परिणामन स्वभावयुक्त
तथा विचित्र एवा सद्भूत कर्मोधी बद्ध छे ने कर्मोधी मुक्त
छे अर्ही हिंसा विगेर आत्माने कर्मबधमा अन अहिंसा विगेरे
कर्मोधी छूटवाना कारणो जाणवा ॥

स्पष्टीकरण—अर्ही आगमोक्त तत्त्वनी परीक्षा करवा
अर्थे आचार्यश्री उपायो दर्शावना वदे छे के—ज्या आत्मा-
जीवनी सत्ता प्रतिपादन करी होय, निदान के—पुण्य, पाप,
मोक्ष, परलोक, दानादि सत्कर्मो विगेरे तत्त्वोनी मूलस्थम
आत्माज छे. यदि आत्माज न होय तो उपदेष्टा, श्रोता
अने उपदेश विगेर कोना माटे ? तपश्चर्या तथा इन्द्रियादि
दमननु फल शु ? त्याग अने दान विगेरे शाना माटे ? अत-
एव ए सर्वनी मूल आधारभूत आत्मा छे ने ते आत्मानु कथन
एवा कर्यु होय ते ज सत्य आगम.

टीकाकार महाराज कहे छे के-नास्तिको आत्मसत्ता मानता नथी तेओ कहे छे के-प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोद्वारा आत्मा घटी शकतो नथी जे वस्तु होय ते चक्षु आदि इन्द्रियो-वहे जरूर देखाय आत्मा चक्षु इन्द्रियी देखातो नथी. परमाणुओ जो के साक्षात् देखाता नथी तो पण तेनु कार्य घट पट विगोरे देखाय छे माटे ते छे एम मानवा जोइये, ज्यार आत्मानु बनानेल कोइ पण कार्य देखातु नथी माटे आत्मा नथी अनुमानथी पण आत्मा घटतो नथी अनुमान प्रमाणमा लिङ्गज्ञान मुख्य साधनभूत छे एटले जेम अमृक स्थानमा धूम दर्शन यता त्या अग्निनु ज्ञान थयु अने तयारपछी कोइ स्थले दूरथा धूमदर्शन यवायी अहीं अग्नि अवश्य होबो जोइये, कारण के ज्या ज्या धूम होय त्या त्या अग्नि निश्चयनया होय. रसोढामा तथाप्रकारना अनुभव प्रत्यक्ष देखाय छे. एटले अहीं पण अग्नि छे एबो निश्चय अनुमानथी गाय छे एव आत्माने अथवा तेना लिङ्गने कोइ स्थले प्रत्यक्ष जोयेल नथी के जे परथी आत्मा छे एवु अनुमान करी सकाय. ज्या सुमी आत्माना कोइपण लिङ्गनु प्रत्यक्ष दर्शन न थाय त्या सुमी आत्माने सिद्ध करवा अनुमान प्रमाणनी गति थइ शके नहीं. एव आत्मा जेबो अन्य पदार्थ अन्यत्र स्थानमा देखातो पण नथो, जेथी आ आत्मा छे तेना सरिखो आ पण पदार्थ छे माटे ते आत्मा कहवाय, ए रीते उपमानप्रमाणथी पण आत्मानी प्रतिष्ठा थइ शक्ती नथी. फरी आगमवचनो अन्या-

न्य पुरुषो प्रतिपादित दोवार्थी अनेक स्यद्धमा परस्पर विरोधी-
 पण भिन्न भिन्न रीते पदार्थनु प्रतिपादन करे छे एदले आ-
 गमो ज अविश्वसनीय होइ तेनाथी आत्मा छे ए मान्यता सभने ज
 क्याथी ? अतएव आत्मा नथी ए सत्य छे तथा जेप मरिा
 मादक पदार्थना सयोगर्था पदा थाय छे तेम पाचभूतना सयो-
 गर्था आत्मा पण आविर्भूत यह जतना घुदुपुदो जेम जलथी
 प्रगैटी तेमा तेनो विलय थाय छे एव आत्मानो पण पाच-
 भूतोमां ज वितय-नाश थाय छे अतएव परिणामे आत्मा
 चैतन्य नामर कीइ पदार्थ स्वतत्र नथी ज

आ बाल्मे निर्मूल करवा हरिभद्रमूर्तिजी उपरोक्त श्लोकना
 प्रथम चरणर्था प्रतिपादक शैलीए वदे छे “ आत्मास्ति ”
 आत्मा-चैतन्य एक स्वतत्र पदार्थ छे, नहीं के अमुक पदार्थना
 सयोगजन्य आ आत्मानो अस्तित्ता केवल आस्रो ज कथन
 नथी करता, किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो पण तेनी अस्तित्ता
 सिद्ध करे छे ते आ प्रमाणे—

आत्मा शरीरर्था एक भिन्न पदार्थ रूपे छे ज, ते न होय
 तो ‘ आत्मा छे के नहीं ? ’ एवो सशय थाय नहीं सशय ए
 ज्ञानरूप छे, अने ज्ञान आत्मानो गुण छे, केवल शरीरमा
 अथवा खाली इन्द्रियोमा ते गुण देखातो नथी निदान के-
 शरीरजन्य जो गुण होय तो भूतकलेवरमा ते गुणजु दर्शन यवु
 जोइये अने इन्द्रियोनो ते गुण होय तो अमुक इन्द्रियना विध्वंस

पछी ते गुण न देखावो जोइये. दाखला तरीके अमुफ माणसे नेत्रद्वाराए अमुक अमुक चीजोनु यथावत् भान कर्यु अने त्यागवाद् ते अध थयो छता चतुना नाशयी तेने थयेल ज्ञाननो काइ नाश थतो नथी, किन्तु ज्यारे ज्यार पूडवामा थापे त्यार त्यारे ते चीजोनी ओळखाण परावर करावी थापे छे एटले ए गुण चतुनो तो नज कहेवाय, कारण के—चतुनो तो पहेला ज नाश थयो छे थाथी ज अज्ञानगुणने भिन्न मानवो जोइए. था रीते आ ज्ञानगुण प्रत्यक्ष भिन्नरूपे अनुभवमा आववाथी गुणा आत्मा प्रत्यक्ष छे एम मानवु ज जोइये. निदान के—आत्मा शिवाय था गुण अन्यत्र अनुभवातो नथी “ अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना । अहम स्मीति मयेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥ ” फरी छबस्यन इद्रिय प्रत्यक्ष होमाथी सूक्ष्म पदार्थनु प्रत्यक्ष ज्ञान अमुक अशे ज थाय छे, ज्यारे पूर्ण आत्म प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञोने ज होय छे एटले जे आत्मा पूर्णरीत्या सर्वज्ञोने प्रत्यक्ष छे, ते आत्माने आपणे ज्ञानना अभावयी पूर्णतया प्रत्यक्ष न करी शक्ये एतावन मात्रथी आत्मा नथी कहेवानु साहस करवु ते मूढताज गणाय.

एव अहीं “ आत्मा छे के नहीं ” ए सशय उद्भूत ववाथी आत्मा पदार्थ जरर कोइ पण जग्याए होवो जोइये, कारण के कोइ पण वस्तु सबधी ज्यार ज्यारे सशय थाय छे त्यारे त्यारे ते वस्तु कोइ पण स्थानमा होय छे ज अन्यथा ते

वस्तु सशयी मशय उद्भवतो नथी, ' नास्त्यात्मा ' ए वाक्य पण आत्मानो एकान्त निपेय करतु नथी, किन्तु " नास्ति अत्र घटः " " आ स्यानमा घट नथी " ए वाक्य जेम-एतत् भूमि विशिष्ट घटनो अभाव दर्शाये छे परतु सर्वत्र घटनो अभाव दर्शावतु नथी. अर्थात् ए वाक्यथी अन्यत्र घटनी सत्ता सिद्ध थाय छे एव उपरोक्त वाक्य पण अमुक शरीर अथवा इन्द्रियोमा आत्मा नथी एज भाव दर्शाये छे, परतु सर्वत्र आत्माभाव दर्शावतु नथी निदान के-एक स्यानमा सशय थवाथी त्या सशयी आत्मा जेम सिद्ध थाय छे तद्वत् अन्यत्र पण ज्या ज्या तदाकार सशय उद्भवे त्या त्या आत्मा छे एवु अनुमान चोक्कमपणो प्रवर्ते छे

प्रत्यक्ष अने अनुमान प्रमाणथी आत्मानी सिद्धि थवाथी उपमान अने आगम प्रमाणथी आत्मा सिद्ध ज छे एदले तेने समजाववानी साइ विशेष जरूर रहेती नथी, कारण के-उपमान प्रमाण तेना पाछल ज गमन करे छे अने आगम प्रमाण तो ' अत्थि मे आया उववाइये ' इत्यादि वचनोथी आत्ममत्ता पोकारी पोकारी बारबार कहे छे आ रीते युक्ति तथा प्रमाणोद्वारा आत्मा वराबर सिद्ध होवाथी जे शास्त्रो नास्तिक पतनी भावना दूर करी आ आत्मतत्त्वनु कथन करता होय ते ज आगमवाक्य आद्य थाय. अतएव अर्ही पण भगवान् हरिमद्रमूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षानो नियम दर्शावता बदे छे के-" आत्मास्ति " ' आत्मा छे ' अर्थात् जैनदर्शनमा

आत्मा चोक्तस मान्य छे आ आत्माने केटलाको नित्य कहे छे अने कोइ अनित्य पण यह छे नित्यपक्षमा “अप्रच्यु तानुत्पन्नस्थिरैक स्वभावो हि नित्यं” ‘जेनो नाश न थाय, उत्पन्न न थाय अने सर्वदा स्थिर एक स्वभावमा रहे ते नित्य’ आ लक्षण होवाथी आत्मा जो उत्पन्न न थाय, नाश न पामे अने स्थिर एक ज स्वभाववान् होय तो जन्म तथा मरण कोने ? क्षणमा सुखी, क्षणमा दुःखी, क्षणमा, रोगी क्षणमा निरोगी आ अवस्थाओ कोनी ? बाल, युवान अने टुट्ट अवस्था अनुभवनार कोण ? मनुष्य, नारकी, तिर्यच, देवता आदि भावोमा रमनार कोण ? निम्नान के—उपरोक्त नियम प्रमाणे तो सर्वदा आत्मा एक ज रूपमा वर्तनशील मालूम पडवो जोइए जे मनुष्य होय ते मनुष्य ज, जे देव होय ते देव ज, जे नारकी होय ते नारकी, जे बाल होय ते बाल ज, रोगी होय ते रोगी, दरिद्र होय ते दरिद्री ज, धनी होय ते धनवान् ज, मूढ होय ते मूढ ज, ए रीते एक ज अवस्था प्रत्येक आत्माए अनुभववी घटे, किन्तु अवस्थाओनु परावर्त्तन यत्तु न घटे.

अनित्यपक्षमा—आत्मा क्षणस्यायी होवाथी प्रथम क्षणोत्पन्न आत्मा द्वितीय क्षणमा नथी रहेतो अने द्वितीय क्षणोत्पन्न आत्मा ए रीते भिन्न क्षणमा नथी रहेतो. ए रीते प्रत्येक क्षणमा आत्मा उत्पन्न थाय अने विनाश पामे अर्थात्—अनित्यवादपक्षमा क्षणोनी केवल परपरा ज मान्य छे. आ रीते कसुल कर्माथी प्रथम क्षणमा उत्पन्न आत्माए जे काइ पुण्य या पापकर्म

कर्युं अने ते आत्मा मरी गयो हवे बीजी क्षणमा उत्पन्न आ-
त्माए-पूर्वात्माए कृतपुण्य-पापनु फल अनुभव्यु आथी जेणे
पापकर्म कर्युं तेणे भोगव्यु नहीं अने जेणे ते कर्म उपाज्युं नहीं
तेणे अनुभव्यु. एटले कर कोइ अने अनुभवे कोइ चोरी या
घनमासी काइ कर अने तेनी शिक्षा अन्य भोगने ए शु न्याय्य
गणाय खरा ?

आ रीते उभयपक्षमा अनेक दोषो उद्भववाथी ग्रथरुर्त्ता कहे
छे के-आ आत्मा "परिणामी" भावार्थ क-आत्मा भिन्न भिन्न
अवस्थामा, भिन्न भिन्न भावोना परिमनभाववालो छे पाचे गति-
योमा गमन स्वभावान्, अलग अलग भवोमा पर्यटन करनार,
बाल, युवा अने वृद्ध आदि अवस्था अनुभवनार, दारिद्र्य, रोग,
सुख, दुःख पर्यायोनी भोक्ता, चैतन्य स्वरूपी आत्मा छे निदान
के-द्रव्यनी अपेक्षाए आत्मा नित्य चैतन्य स्वरूपी छे, ने पर्यायनी
अपेक्षाए अनित्य जन्म, मृत्यु, दारिद्र्य, रोग, शोक, देव, मनु
ष्यादि विविध भावोना अनुभविता कथो छे परिणामनु लक्षण
टीकाकार उपर कथित भावने अनुकूल जगारे छे "परिणामो
ह्यार्थांतरगमन न सर्वथा द्यवस्थान । न च सर्वथा
विनाश परिणामस्ताद्विदामिष्ट " ॥ १ ॥ " एरु
भाव-अवस्था मूकीने अन्य अवस्थामा गमन करवु, सर्वथा
एरुज भावमा स्थित न रहेवु, सर्वथा विनाश पण जेनो न याय
तेनु नाम परिणामस्वरूपवेत्ताओ परिणाम माने छे " निष्कर्ष-
आत्मानो जेम अस्मिता सिद्ध छे तेम ते परिणामी पण सिद्ध न

छे. आ प्रमाणे भिन्न भिन्न अस्वस्याम्बोमा अनुगामी धर्मवान्
 आत्मा प्रमाण अने युक्तिओधी वरावर सुयटित छे, एम बिना
 शक्याये कबूल करबु जोइये

परिणामनभावो-भिन्न भिन्न पर्यायोना अनुभव पण आत्माने
 हेतु बिना तो नज मभने, केमके अ-यया सिद्धात्माने पण ते ते
 भावोनो अनुभव मानवो पडे आ हेतुओ कर्मो सिवाय अन्य
 तो नही ज कर्मोना सप्रथी ज आत्मा अनेक पर्यायोने अनुभवे
 छे अने सिद्धात्माने ते कर्मो न होवाथी ते ते भावोमा पर्यटन
 करवानी जरूर रहेती नथी. निदान के-ससारस्थ आत्मा
 “ यद्दः सत्कर्मणा ” मोहनीय आदि आठ कर्मोधी आटत
 छे, वद्द छे आ कर्मो पण सदरूप-विग्रमान छे, परतु असद्-
 रूप कल्पनामात्र नथी. असद्रूप पदार्थ आत्माने सुखदुःख
 आदि पर्यायोमा हेतुभूत न्दापि न बने. जे पदार्थ व-यापुत्रनी
 माफक असत्-अविग्रमान छे, कल्पनामात्र छे, ते पदार्थ यदि
 निमित्त बनतो होय, फल आपना समर्थ यतो होय तो व-यापुत्र
 पण जरूर बध्याने फल अर्पण करे, परतु व-याने ते मल्लतु
 नथी आत्माने उत्पन्न यता सुख-दुःख विगेरे भावी सामान्य
 जन पण अनुभवे छे एटले जगत्मा सदरूप कर्मो छे अने
 आत्मा तेना सप्रथी ससारपर्यटन आदि भावो पामे छे, ए
 सिद्ध थयु.

आ कर्मो अनेक प्रकारना छे कर्मोना मुख्य आठ भेदो-
 ज्ञानावरेखीय, दर्शनावरेखीय, मोहनीय, अर्ताराय, वेदेनीय,

आयुष्य, नाँव, गोत्र-परीते शास्त्रोपा कथा छे तेना उच्चरमेदो
 १२० कथा छे तेमन धा कर्मोने शुभफल अर्पक अने अशुभ
 फलार्पक पुण्य तथा पापरूप ये प्रकार जणायेल छे, मागे
 ग्रयकर्ता कह छे के-“ विचित्रेण ” विविध प्रकारना कर्मोना
 आत्मा बद्ध छे, अतएव विविध फलोनों अनुभव पण आत्मा
 करे छे, एव “ मुक्तश्च तद्वियोगात् ” दर्शित आठे कर्मो-
 नो सर्वथा वियोग, विषय यवार्था आत्मा अने कर्मो सर्वथा
 भिन भिन यवार्था आत्मा शुद्ध, निर्दोष स्फाटिकरूप चैतन्य
 स्वरूप पामी मुक्त-सिद्ध थाय छे एगने आत्मा केवल सद्
 चिद्व आत्मारूपने ज अनुभवे छे निदान के-पछी सुख-दुःख,
 जन्म-मरण, रोग-शोक, मनुष्यादि भावोनु पर्यटन छूटी जाय
 छे दुःखमा ए राते परिणमनमात्राजो विचित्र कर्मोयी बद्ध
 अने कर्मोयी छूटी यनार एवो आत्मा छे एम सिद्ध कर्युं

अर्धा प्रसगवशात् जणावतु जोइये क—कर्मो जड पुद्
 गलस्वरूपा अतीन्द्रिय वस्तु छे, अने आत्मा चैतन्य ज्ञानादि
 स्वरूपवान् छे निदान के-वस्तुतः आत्मा ज्ञानादि कर्मोने मूर्की
 अन्य क्षणिक सुख-दुःख, रोग-शोक, जन्म-मरण, मनुष्यादि
 पर्यायरूप धर्मवान नथी किंतु बुढाडो के तरवार जड छता मनुष्यना
 हाथमा आव्या पछी मनुष्यना प्रयत्नथी काष्ठ आदिने कापी
 नासे छे, पत्थर पण जड छता ग्राहकना हाथमा आव्या
 पछी अन्यने मारवा समर्थ बने छे, एव कर्मो पण आत्माना
 सयोगने पामी आत्मस्य चनी आत्माने तत्तत्प्रकारना भावोमय

बनाये छे. एटले तरवार पकडनार निर्वृत्त छता तरवारनी सहायता पापी स्वात्माने समर्थ माने छे, मारामा अन्यने मारवानी शक्ति छे हु बलवान् छु एम मिथ्या अनुभव करे छे एक प्रकारनो विचित्र जुस्तो अनुभव छे, एव आत्मा पण जे जे भावो पोताना स्थायी नयी ते ते कर्मकृत भावोने कर्मना सबधयी पोताना माने छे स्वपणो अनुभव छे तत्तत्भावो अभिमानी वनी कर्मोधी भिन्न पोतानु रूप विसरी जइ कर्म बनावेल रूप ते ज पोतानु स्वरूप छे एम समजे छे, थडे छे, आयीज अनेकधा आत्मा विविध भवोमा पर्यटन करे छे, अभिमानिक मान्यता आत्मा पोतामा रहेल अनादि रागद्वेषादि दोषोना कारणयी ज अनुभव छे ने कर्मोने बाधे छे तथा सत्सारपर्यटन करे छे, एव कर्मो रागद्वेषादिमय आत्माने बनावे छे तथा रागद्वेषादिको कर्मरूप आत्माने बनावे छे ए रीते अन्योन्याश्रयी अनादि सबध आत्मा तथा कर्मोनी प्रवर्त्ते छे फरी ए अभिमानिक मान्यताने खोटा रूपमा ज्यारे आत्मा देरो छे वरारर थडे छे कर्म अने पोतानु रूप भिन्नपणे माने छे त्यारे ते कर्मोने खसेडवा अने पोतानु परमार्थ रूप पापवा प्रयत्न करे छे, परिणामे सर्व कर्मने अलग करी स्वस्वरूपी मुक्त-सिद्ध थाय छे.

अतएव अर्ही उपरोक्त कर्म आववानु तथा छुटवानु कारण मथकार महर्षि एकज वाक्यमा बहु सुंदर रीते दर्शाव छे—
 “ हिंसाहिंसादि तद्धेतुः ” हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन,

परिमह ए पांच मुख्यतया कर्मरचना कारणो कथा छे तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ए पांच मुख्यतः कर्मनाशना कारणो कथा छे.

मूलमा जे आत्ति शब्द आप्यो छे ते प्रत्येकनी साथे जोड़वानो होवायी "हिंसादि-अहिंसादि" ए रीते वाक्यप्रयोग करबो एटले-मिथ्यात्व, अविरेति, प्रमैद, कर्षाप, योगे आदि शब्दमाह ए पांच कारणो कर्मरचना जाणवा. तत्त्वार्थमा उमास्वातिवाचक पण एज जणावे छे-मिथ्यात्वाविरति-प्रमादकपाययोगा बधहेतवः" (त० अ० ८-मू० १) 'अहिंसादि' अस्य आदि शब्दयो उपर कहैल हिंसादिथी विपरीत एवा अहिंसा विगेरे पांच साधनो कर्मवियोगना कारणो जाणवा मथितार्थ एटलो ज के मिथ्यात्वादि कारणोथी आत्मा कर्मरध करे छे, अने तेना त्यागयी अर्थात् सम्क्यत्व आदि कारणथी आत्मा कर्मविमुक्त बने छे, कारण के-मिथ्यात्व विगेरे भावो आत्माने असन् मति पैदा करी, दुष्ट मार्गमा दोरो जइ कर्मरध करावे छे, ने सम्यक्त्व आदि भावो आत्माने सन्मति-सत् श्रद्धा उपजावी मोक्षपथमा मेरी कर्मविमुक्त करे छे, ए भाव ग्रथकारना वाग्यमा रह्यो छे एव प्रकारे आत्मा आदि पदार्थनु स्वरूपदर्शन जे शास्त्रना कथु होय, पछी ते शास्त्र मने ते पुरुषरुचित होय, तत्शास्त्रोक्त वाक्यो जरुर ग्रहण योग्य जाणवा. आनु प्रवचन मयम प्रकारनी कसोटीथी शुद्ध जाणवु निदान क-ए रीते प्रमाण अने युक्तियो अखण्ड जाणवु

अन्तमा आटलु जाणवु जर्री छे के—‘आगमतत्त्व’ नी परीक्षानो प्रकार ग्रथकर्ता दर्शावी रखा छे, तेमा जे आगमवाक्य प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनधी अखण्ड होय, १ उत्सर्ग अने अपवादना विषयबालु होय २ अद्वैतपर्यपरमार्थवडे सशुद्ध होय ३, ते ज वचन हितार्थ ने स्वात्महित अर्थे उपादेय गणाय. आ वात आपणे उपर जोड़ गया, तेमा प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनधी जे आगमवाक्य अखण्ड होय, ए रीतनो आगमतत्त्वनी परीक्षानो प्रथम प्रकार ग्रथकार दर्शाव्यो. निदान के—उपर कथा प्रमाणे आत्मा आदि पदार्थनी अस्तित्ता जे शास्त्रमा कथन करी होय ते शास्त्रोक्त वाक्यो आदेय जाणवा. हवे रवो उत्सर्ग तथा अपवादे करी सशुद्ध ए बीजो प्रकार, एटले जे शास्त्रना वचनो उत्सर्ग वाक्यरूप तथा अपवादवाक्यरूप उभयथा शुद्ध होय, अही उत्सर्ग तथा अपवादानु स्वरूप दशमा श्लोकना विवरणमा यत्किंचित् देखाइद्यु छे, एटले अही तत्सबधमा विशेष जाणाववानी जरुर रहेती नथी, तेमज प्रथम प्रकारनी परीक्षामा ते विषय आवी जतो होवायी ग्रथकारे भिन्नपणे जखान्यो पण नथी अतएव बीजा विषयने मूकी अद्वैतपर्य परमार्थवडे सशुद्ध ए बीजो प्रकार समजाववा ग्रथकार एक श्लोकयी कथन करे छे—

परलोकविधौ मान वचन तदतीन्द्रियार्थदृग्ग्यक्तं ॥
सर्वमिदमनादि स्यादैदपर्यस्य शुद्धिरिति ॥१२॥

મૂલાર્થ—અર્તીદ્રિય અર્થ દટ્ટા એવા સર્વજ્ઞ મગતોએ સ્પષ્ટ-
પગો કહેલ ઘચન જ પરલોક સવધી વિધેય કાર્યોમાં માન્ય
પ્રતિષ્ઠિત ગણ્યું છે. ફરી આ ઘચન સર્વ જ્ઞેત્રની અપેક્ષાએ અના-
દિકાલીન છે, એ પ્રકારે ઐદર્પ્ય પરમાર્થની શુદ્ધિ જાણવી ॥

સ્પષ્ટીકરણ—“ અર્તીદ્રિયાર્થદગ્ધ્યચ્છ ” જગતમાં
પદાર્થો એ પ્રકારના છે એક તો દ્રિયદ્રશ્ય પડતે આપણે સૌ
જેને દેખી શકીએ, અનુભવીએ છીએ તે અને ધીજા જે દ્રિય-
દ્રશ્ય ન હોય કિન્તુ જ્ઞાનબ્રાહ્મ હોય જેવા કે—આત્મા, કર્મ, પર-
માત્મા, ધર્મ, અધર્માસ્તિત્વાય આદિ જેને આપણે દેખી શકતા
નથી પણ તેવા અનતજ્ઞાની દેરે છે તે, અર્થાત્ ધીજા નહરના
પદાર્થો તેઓ જ દેખી શકે કે જેઓને કૈવલ્યજ્ઞાન—અનતજ્ઞાન
માત્ર થયું હોય. શિવાય અન્યને તે પદાર્થ દેખવાની શક્તિ ન
હોય નિશ્ચય કે—ધીતરાગ મગતો જ સર્વજ્ઞ હોય અને તેઓ જ
આ ધીજા નહરના સર્વ પદાર્થને ઘરાવર જોઈ શકે છે આ પરથી
જેને જે પદાર્થનું યથાસ્થિત જ્ઞાન નથી તેઓ તે પદાર્થનું યથા-
સ્થિત સ્વરૂપ કયાથી કહી શકે ? એ વાત ઘરાવર સમજાય તેવી
છે. ઘગણે કોઈ અજ્ઞેય પદાર્થનું સ્વરૂપ કયન કરવાનું કરે
છે તે પણ અનસ્થિત અને ઘાધિત જ કયન કરે
શકે. આથી તેના પર વિશ્વાસ સ્થાપન
જાણવાનું કારણ કેવ ન થાય ? માટે આ
જ્ઞાનમાપણની પરીક્ષામાં ધીજો મગતો દર્શ
“ પરલોકધિઘૌ માન ઘચન ” પરલો

कार्योमा—स्वर्ग तथा मोक्ष आदि विधेयकार्योमा, आत्मिक शुभ विधानोमा अर्तोद्रयार्थदर्शी एवा सर्वत्र भगवतोनुज वचन मान्य, प्रतिष्ठित, विश्वसनीय होय हेतु एज के तेओनेज तत् पदार्थ सबधी यथास्थित अत्रा य ज्ञान होय छे, एटले तेओना कथनमा लेश पण विरोध अथवा विसवादिपणु होतु नथी. विरोध के विसवादिपणु तेओना ज कथनमा होय के जेओमा राग या द्वेष उद्भूत अनुद्भूतरूपे विद्यमान होय, अने तेथी ज तेओ स्वार्थना मोहमा खंचाई अगर मानादिमा आवी जइ इच्छाथी, अनिच्छाथी असत्य सत्यासत्यपणु भरडी मारे. ज्या असत्य के सत्यासत्य उत्पादक राग या द्वेषनु मूलज नथी—सर्वथा अभावज थइ गयो छे, तेओना कथनमा असत्य सत्यासत्यनो अश क्याथी संभवे ? नज सभने ए बात सामान्य बुद्धिए पणु स्वीकारी शक्य एवी छे कतु पणु छे—

रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा

वाक्यमुच्यते धृतम् ।

यस्य तु नैते दोषा

तस्यानृतकारण किं स्यात् ? ॥ १ ॥

अतएव अहीं अथकर्ता परलोक सन्धी विधेय वाचतोमा सर्वज्ञवचन ज प्रमाणिक होय एवु जणावी प्रतिपादन करे छे के—जे शास्त्रो खास सर्वज्ञना कथन करेल होय एम प्रमाण अने अनुभव पणु मान्य करे ते ज शास्त्रवचन शुद्ध जाणवु—ग्राह्य जाणवु निदान के—सर्वज्ञवाक्य ते ज अदपर्य—परमार्थ शुद्ध जाणवु. अथकार आ वचननी विशेष परीक्षा माटे कहे छे के—

‘ सर्वमिदमनादि स्यात् ’ सर्वज्ञवचन आदि अने अनादि वे प्रकारे जाणवु अमुक अमुक सर्वज्ञनी अपेक्षाए आदि वचन, अने महाविदेह आदि क्षेत्रीनी अपेक्षाए अनादि वचन अथवा प्रवाहनी अपेक्षाए अनादि वचन जाणवु एतले भूतकालमा आ सर्वज्ञवचन हतु, वर्तमानमा छे अने भविष्यमा रहेमानु एवो कोइ काल नथी क जे काले आ सर्वज्ञवचन न होय

अर्थां एक चान वरावर ध्यानमा राखवानी छे, अने ते ए वे-सर्वज्ञपणु कोइ पणु व्यक्तिने अनादिनु घटे नहीं किन्तु अल्पज्ञ ज कालक्रमे कर्मो नाश करी सर्वज्ञपणु प्राप्त करे एम युक्ति अने प्रमाणाथी सिद्ध थाय छे; अन्यथा अमुक व्यक्तिने सर्वज्ञपणु अनादिनु ज मान्य होय तो आपणो जीवोना जीवात्मा अने सर्वज्ञात्मा एम वे भेदो अनादिना नज मानवा जोइये.

आ परथी जेम सर्वज्ञात्मा ते सर्वज्ञ होवाथी कदापि जीवात्मपणाया आवता नथी, अगर आने तो तेथोने पणु एक प्रकारनु अरघटघटीयत्रनी माफक पर्यटन ज रह्यु कहेवाय, अने तेम यवाथी सर्वज्ञ छता तेथो असर्वज्ञनी वरावर ज कहेवाय, एव जीवात्माए पण जीवात्मरूप स्वस्वभारनो त्याग करी सर्वज्ञपणु कदापि प्राप्त न करचु जोइये करे तो अनादिनु जीवात्मपणु कयाथी रहे ? नज रहे, किन्तु जीवात्मा जीवस्वरूप छोडी सर्वज्ञपणु तो अवश्य प्राप्त करे छेज वधुमा उपरोक्त अनादिना वे भेदो पणु कल्पितज मानवा जोइये दुःखमा वस्तुगत्या स्थित अनादि भेदोनु परिवर्तन कदापि सभवे ज नहीं, जेम अनादिथी

जड ते जड अने चैतन्य ते चैतन्य ए मेदनु परिवर्तन यतु नथी तेम अनादि उपरोक्त मेदोनु पण परिवर्तन न ज सभवे तथा जीवात्मा सर्वज्ञपणु प्राप्त करवाने जे त्याग, तप, दान आदि करे ते अने तेम करवानो उपदेश अर्पनार शास्त्रो विफल ज मानवा लोड्ये, जे वस्तु मज्जवानी नथी तेना माटे जे परिश्रम करवो के उपदेश आपणो ते निष्फल ज गणाय-वध्या जेवो जाणवो. अज्ञानावस्थामायो अल्पज्ञपणु अने तेनी उत्क्रान्ति यतां प्रखर-ज्ञानीपणु आपणो अनुभवोये छीये, तो तेना क्रमिक उत्क्रान्ति-वादमा सर्वज्ञपणु आत्मा प्राप्त कर ए मानसिक गूढ अनुभवने पणु आपणो केम मिथ्या मानवो घटे ? निद्रान के-अधकार पछी कइक प्रकाश अने उपा त्पारवाद क्रमश प्रकाश वधता धीरे धीरे अधकार जगतमार्थी दूर धाय छे ने पश्चात् सर्वथा सूर्यनो प्रकाश ज देखाय छे एव आत्मा पणु अतरना अध-कारने दूर करी सर्वथा ज्ञानरूप प्रकाशने प्राप्त करे ए वात अनु-भवमा आवे तेवी छे. सर्व आत्माओने सर्वज्ञपणु अनादिनु आवि-र्भूत होय ए मान्यता सबध वगरनी मालुम पडे छे.

तथा पृथ्वीनो जे भाग व्यवहारमा जणाय छे तेटली ज पृथ्वी नथी किन्तु पढदा पाछले आ सिवायनी वडोळी पृथ्वी अवश्य छे ए वात तो आजे जडवादीयो पण कबूल करे छे. जे देशो पहेला व्यवहारमा न्होता जणाता ते देशो व्यवहारमा आवते साय ज शिवायना देशोनी शोध करवानी पाश्चात्योने लालसा बधी क्रमे क्रमे ज्या ज्या ते लोको पडोचो

शक्या तेयी तेओनो उत्साह अधिक उदीप्त ययो अने हत्री पण अन्य विभाग माटे तलपापड थाय छे एटले वर्त्तमानमां आपणी दृष्टिये जे विभागो न जणाय ते विभागो नथी एवु कथन करवु ते नितान्त आग्रहज गणाय भायी सर्वज्ञ-प्ररूपित जैन शास्त्रो पहेलाथीज पृथ्वीना अनेक विभागनु वर्णन करे छे ने ते विभागो एवा छे के ज्या विशिष्ट बल शिवाय सामान्य जनता जइ शक्रे नहीं. आ विभागोमा केट लाक विभागो अर्हीनी धरापर स्थितिवाला छे अने केटलाक विभागो अर्ही करता पण अति उच्च स्थितिवाला छे, के ज्या सर्वदा नितान्त सुख, वैभव, म्होटा बलवान् शरीरो अने अनतज्ञानीओ वर्त्ती रहा छे

अतएव सर्वज्ञवचन आ सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए विचार करता सर्वदा विद्यमान होवाथी एटले महाविदेहादि क्षेत्रोमा सर्वज्ञो हमेशा विहरमान रहेवाथी तदपेक्षया अनादि शाश्वत वचन अर्ही शास्त्रकर्त्ताए जणाव्यु निदान के-उत्तम शास्त्रवाक्यनी परीक्षा करता शास्त्रवाक्यो उपर कथा प्रमाणे सर्वज्ञकथित अने आदिअनादिभाय अलकृत छे के नहीं ? ए बात जरर तपासवी आ परीक्षाने महर्षिओ अदपर्य-परमार्थ शुद्ध परीक्षा निर्देशे छे निष्कर्ष-आतु वचन ज परलोक माटे आत्माने उप-कारी थाय, शिवाय तो अन्यना वचनना आलवनथी आत्मा ससारगर्तमाज गोया खाय ॥

वस अर्ही सुधी ग्रथकर्ताए सत् धर्मना परीक्षक एवा बाल,
मध्यम, बुधवर्गनु स्वरूप तथा परीक्षा अने परीक्षाना प्रकारो
दर्शान्या हवे आ लोकोने धर्मोपदेश आचार्ये केवो आपवो
जोइये जेथी आ लोकोने पण यथास्थित धर्मनो ख्याल आवे,
आ हतुधी ग्रथकर्ता हवे उपदेश आपवानी रीति दर्शावे छे-

वालादिभावमेव सम्यग्बिज्ञाय

देहिनां गुरुणा ॥

सद्धर्मदेशनापि हि

कर्त्तव्या तदनुसारेण ॥ १३ ॥

मूलार्थ—ए रीते धर्मगुरुण मनुष्योना बाल, मध्यम, बुध
विगेर भावोनु यथास्थित स्वरूप जाणी उत्तमधर्मनी देशना-
उपदेश तेओने जेम सुदृढ रीते उपकारी थाय ते प्रमाणे ज
आपवो ॥

स्पष्टीकरण—‘एव’ आचार्य हरिभद्रमूरि कहे छे के—प्रथम
कथा प्रमाणे बाल, मध्यम आदि वर्गोनु स्वरूप ध्यानमा राखी
तेओने हितकारी ज उपदेश धर्मोपदेशके करवो निदान के—श्रो-
तानु दिल समज्या बगर उपदेशनो प्रवाह छोडवाथी श्रोताने
तेनाथी लाभ थाय नहीं अने वक्ताने उलटो क्लेश पैदा थाय
छे, बल्के घणीवार श्रोता विपरित परीक्षामी उनी सदाने माटे
धर्मश्रवण करवानु छोडी दे छे. एटले यत्किंचित् पहिलानो
भाव होय तेमां पण हानि पडोचे छे, एव उपदेशकने तेटलो

समयें व्यर्थ जवाधी पठन-पाठनादिमा पण व्याघात पहींचे छे. अंतर्पर्व आचारागमा पर्वद् जनस्वभाव अने धर्मरुचि विगेरे श्रोता मंत्रंधी भावो जाण्या शिवाय उपदेश करवानी खुल्ली मनाइ करी छे निष्कर्ष-आचार्य-देश, काल, जनस्वभाव, लोकोनी अभिरुचि विगेरे वातो जाण्या वगर जे धर्मोपदेश कर ते शून्यरूप ज परिणामे-वधुमा अनर्थ करे, माटे अर्ही प्रयकर्ता भार दइने जणावे छे के-“ याखादि भावमेव सम्यग्बिज्ञाय ” वरापर बाल विगेरनु प्रथम धर्मोपदेशके स्वरूप जाणतु ते जाण्या पछी ज धर्मोपदेश करवो. शिवायने शास्त्रोमा उटवैद जेवा गण्या छे आ उपदेशको पण इलदर-नो हुकडो मलवाधी गापी यइ बेसे तेवा तो नज होवा जोइये. एटले एकाद ग्रथ के चरित्र, अमुक लेख के भाषण, छुटक थोडाएक श्लोको मुखे याद करी लीधा अने पछी उपदेशकनो सडो लइ लोकोने उपदेश आपवा दोडी जाय तेवा न जोइये; किन्तु आचार्य कहे छे के-“ गुरुणा ” गुरुपणाना यथा-स्थित गुण जेमा होय, जेपके-धर्मज्ञो धर्मकर्ता स्व, सदा धर्मपरायण. । सत्त्वेभ्यो धर्मशास्त्रार्थदेशको गुरुरुच्यते ॥ १ ॥ “ धर्म जाणकार, धर्मकर्ता, नित्य धर्ममा ज तत्पर, तथा भव्यात्माश्रोने धर्मशास्त्रनो उपदेश अर्पनार गुरु कर्हीये ” परमार्थ के-स्वशास्त्र अने परशास्त्रना हाता तथा नित्य धर्ममा ज दत्तचित्त एवा गीतार्थ महापुरुषो शिवाय अन्ये धर्मोपदेश आपवा वेसडु ए केवल धर्म अने श्रोताने

उत्पथमा दोरी जवानु ज कारण बने छे निदान के-आजे
 आँवा वक्ताओ शासनमा केवो गोटाओ पेदा करी रहाँ छे ते
 नंजरे ज धरणी बखत आपणो अनुभवीये छीये. व्यसन, अभक्ष्य
 अने पौद्गलिक मोहमा राचीमाची रहेअ उपदेशकोए काई
 शासननी ओछी खरावी नथी करी अतएव-हितार्थाए आ-
 चार्यना उपरोक्त गभीर कथन पर खास ध्यान आपवानी जरर
 छे बहुमा अयकर्त्ता जणावे छे के-बालादिभाव जाण्या
 पछी धर्मोपदेश करवो ते पण एवी रीते के-"तदनुसारेण"
 एटले बालादिकोने हितकारी धाय परमार्थ-बाल विगरे धर्मो-
 पदेश श्रवण करी पोतानो बालभाव समर्जा तेनो त्याग करी
 बुधपणु प्राप्त कर. टीकाकार कहे छे के-" यस्य यथोपक
 राय सपद्यते देशना तस्य तथा विधेया " " जेने जे
 प्रकार धर्मदेशना करवोथी उपकार पाय तेने ते प्रकारे धर्म-
 देशना करवी " अर्थात् जीव आदि एक पण तत्त्वने जे सम-
 जता नथी तेवाओ सामे सूत्रोना गहन भावो कथन करवा
 वेसबु अने गहन तत्त्वोना शोखीनो पासे राजा राखीनी
 कथाओ करवा वेसबु, धर्मना खरा मर्मने नहीं जाणनार पासे
 लावा लाया तत्त्वोना व्याख्यानो करवा ए सर्व अनुचितपणु
 पेदा कर छे, माटे, अने मूलमा 'हि' ए शब्द होवार्थी हित-
 कारी धाय तेवो ज उपदेश आपवो पण अन्यथा प्रकारनो
 उपदेश न आपवो ए खास उपदेशके ध्यान राखबु जोइए.
 स्पष्ट शब्दोमा कहीये तो अहितकर उपदेश आपवा करता

ઉપદેશક મૌન ધારવું, ઉપદેશક્ષણાનો મોઢ છોઢી દેવો ં વધારે ઉચિત ગણાય, ઘલ્કે લાભકારી જ યાય, અને તેમ કરવામા પોતાને હાનિ થતી હોય તો અવશ્ય ગ્રથકારના કથન પ્રમાણે પ્રથમ તેજુ ઉચ્ચ જ્ઞાન માત્ર કરવા કમ્મર કમવી અને પછી ઉપદેશ કરવો જેથી ઉપદેશકનો મનોરથ સફલ ગણાય

ઉપર દર્શિત વિપયની જ વતુ પુષ્ટિ માટે પ્રથકર્તા આગઢ વધીને અધિકુ રુલામો કર છે—

યદ્ ભાપિત મુનીંદ્રે. પાપ

સ્વલુ દેશના પરસ્થાને ।

ઉન્માર્ગનયનમેતદ્

ભવગહને દારુણવિપાકં ॥ ૧૪ ॥

મૂલાર્થ—પરમજ્ઞાનીયોં—અન્યને ઉપકારી ધર્મદેશના અન્યને આપવામા નિશ્ચયથી પાપકારી કહી છે, કારણ કે—અન્ય યોગ્ય દેશના અન્યને આપવાથી ઉન્માર્ગમા લડ જડ ભવ-સમુદ્રમા ઢૂસાવી મયકર કડુકફલ આપનારી ઘને છે

સ્પષ્ટીકરણ—૧૩ મા ંલોકમા જે ઘાત કહી છે તેજુજ અહીં ગ્રથકાર સ્પષ્ટીકરણ કરે છે અન્ય યોગ્ય દેશના અન્યને આપવામા સર્વજ્ઞો પાપ કહે છે, અર્થાત્—ઘાલ યોગ્ય દેશના મધ્યમને, મધ્યમ યોગ્ય ઘુઘને, ઘુઘ યોગ્ય ઘાલ અથવા મધ્યમને અને મધ્યમ યોગ્ય ઘાલને ં રીતે ધર્મદેશના કરવામા

महापाप कष्टु छे. व्यवहारमा पण जेटली अने जेवी लायकात होय ते प्रमाणे ज अधिकारो अपाय छे, अन्यथा आपवामा देनारने नीचु देखवु पडे अने लेनार तेनो डायरशाही उपयोग करे ए बात काइ छानी नथी तद्वत् अर्ही पण बुध विगेरे योग्य देशना-धर्मस्वरूप वाल आदिने आपवाधी तथा वाल आदि योग्य धर्मस्वरूप बुध विगेरेनी पासे कथन करवाधी जे लाभ कल्याणना पथे पढौंचवानो थवो जोइये ते न यता उलटो धर्मश्रद्धा खसेडवानु वने छे एटले नितान्त ते लोको पतित परिणामी थइ धर्म पर अने उपदेशक आचार्योना प्रति अग्रहु-मानी थइ धोलवा माडे छे-“शु च्याख्यानमां जइने करीये ? त्या तो झीणु झीणु कताय छे, काइ समजातु नथी, समय नकामो जाय छे केवल राजा राणीनी वातो वंचाय छे ” विगेरे विगेरे अतएव मूलपर्या कहें छे के-आवी धर्मदेशना महापापकारी थाय “खलु” निश्चयथी पाप पेदा करे छे, एटलु ज नर्ही, किंतु “उन्मार्गनयन” आवी धर्मदेशना श्रोताने उन्मार्ग तरफ सुंची जाय छे. दाखला तरीके जेम बुधवनो वेशने अग्रधान माने छे तैपा मुख्यतया धर्म मानता नथी, ज्यारे घालजीवो तेमा धर्म माने छे प्रधानतया ते धर्म छे एम समजी वेशने नमस्कार करे छे, पूजे छे, बहुमानथी माने छे, हव गालजीवो सामे वेशमा धर्म नथी, ते तो अग्रधान छे, कारण के पासत्याओ अने भाडो पण पोताना स्वार्थ माटे साधुवेश धारण कर छे, पण एतावनमात्रथी

तेथो काइ धर्मी कहेवाय नहीं किन्तु अधर्मने ज बधारे सेवे छे आ रीते कयन करवाथी बालजीवो जे वेशना अनुरागथी यत्किंचित् धर्म साधता होय, क्रमशः अधिक धर्म पायता होय तेनो त्याग करी तेथो पण वेशने अबहुमानथी जोवा शीखे, निद्रता शीखे छे, अने तेम यथाथी विचारा बालजीवो धर्मभ्रष्ट वनी अपरिणामी अथवा विपरीणामी बने ए स्वाभाविक छे. आ पाप केवल योग्यने योग्य धर्मदेशना न देवाथी थाय छे, यावत् अथकार कह छे क-छेवटे " भवगहने दारुण-धिपाक " उपरोक्त प्रतिकूल धर्मदेशना ते ते लोकोने ससार-समुद्रमा डूगाडी भयकर कटुक फल अर्पनार बने छे परमार्थ के-श्रोता अने वक्ता बधे आ रीतनी धर्मदेशनाथी भवसमुद्रमा अथडाय छे अर ! वक्ता तो अधिकतया कटुक फल पण उपार्जन करे छे, कारण के-खरो विचार तो प्रथम वक्ता-नेज करवो जोइये. ज्ञान बिना धर्मदेशना आपवानो साहस फरवो तथा प्रभुज्ञाननो अनादर करवो ए वक्ता माटे महापाप-कारी केम न कहेवाय ? खरखर व्यवहारमा पण कायदानो जाणकार यइ कायदानो अनादर करी गुन्हो करनार बकील घेरिष्टरने ओछी सजा भोगवची नथी पडती ॥

उपरना कयनथी अही आश्चर्य साथे बधु शका पेदा थाय छे क-आचार्यो जे धर्मोपदेश आपे छे ते यदि सर्वज्ञकथितज होय तो ते गमे तेना सामे कयन करवामा आवे एथी ते अनप उत्पन्न केम करी शके ? कारण उपदेश सर्वज्ञदर्शति

हावाधी अमृततुल्यज गणाय छे, अर्थात्-अमृत गमे जे पुरुष आरोगे पटले आरोगनारने तो अते लाभज याय छे. हा, जो उपदेश सर्वत्ररूधित न होय अने ते उपदेश आचार्यों आपे तो उपर कहेल सर्व बातो बचयेसती याय खरी. अतः आ शकाने निर्मूल करवा माटे हये आचार्यधी अर्ही स्पष्ट खुलासो करे छे—

हितमपि वायोरौपधमहित

तत् श्लेष्मणो यथात्यतं ॥

सद्धर्मदेशनौपधमेव !

वालाद्यपेक्षामिति ॥ १५ ॥

मूलार्थ—वातरोगीने जे औपध हितकारी-उपकारी थाय-होय तो पण तेज औपध कफरोगीने आपराधी अत्यत अहितकारी-नुकसान करनार थाय छे एव उत्तम धर्मदेशनारूप औपध हितकर छता अनधिकारी वाल आदि वर्गने आपनार्थी अहितकर ज थाय छे

स्पष्टीकरण—औपध मात्र उपकारी ज होय छे, छता अधिकारि प्रमाणे पटले रोगनु निदान कर्या पछी रोगीने औपध आपवामा आने तोज ते औपध रोगीने उपकारी थाय छे अन्यथा हितकर पण औपध अहितकारी थाय, ए आपणे सारी रीते जाणीये छीये. दाखला तरीके—जे औपध वात-

स्पष्टीकरण—अत्र आचार्यश्री योग्यने योग्य उपदेश
 आपवायी वक्ता-श्रोता उभयने शु लाभ याप ए वातनो रुलासो
 करे छे, जेप समय अने प्रकृतिज्ञ उत्तम वैद्य रोगीना रोगनु
 बराबर निदान करी औषध आपो उभयने महान् लाभ कर
 छे एव अर्ही पण उपदेशक धर्मगुरु आगल कथा प्रमाणे बाल
 आदि वर्गनु ययास्थित स्वरूप ध्यानपा राखी तेभोनी प्रकृति
 अनुकूल अने ते पण केवल परोपकार युद्धिए, के जेमा स्वार्थ-
 भावनो अश न होय ते रीते यदि धर्मापदेश करे तो अत्र
 अथकार कहे छे के “ विधिबदिह ” एटने विधिपूर्वक बाल
 योग्य बालने, मध्यम योग्य मध्यमने अने युष योग्य युषने ए
 रीते उपदेश आपे तो वक्ता नितान्तेन श्रोताने धर्मपर
 श्रद्धा उपजात छे परमार्थ के—बाल विगेर जीवो तथाप्रका
 रनो योग्य उपदेश श्रवण करी स्वनिष्ठ बालपणु छोडो मध्यम
 तथा युग्मणु प्राप्त करे छे, जेथी तेभो पोतानु कल्याण सारी
 रीते साधी शक छे आधी आ जीवो आवा प्रकारना उपदेशना
 बलधी समार्गगामो उत्तमर्मी बनी परिणामे सम्यक्त्व पामे
 छे अर्थात् शुक्लपाक्षिरुपणानी दुर्लभ स्थिति प्राप्त करे छे
 एव वक्ता पण अनेक जीवोने धर्म प्रमाटी पोतानु अभूत्पूर्व
 कल्याण करे छे आचार्यश्री कहे छे के—‘ नियमतो ’
 आवा उपदेशयी निश्चयेन वक्ताभो श्रोताने बोधिलाभ पमाडे
 छे दुःकृपा आधी श्रोताभो उत्तरोत्तर पोतानु कल्याण साधता
 शीते छे ॥

“ उद्देश ”

गत अधिकारना अतभागमा आचार्यश्रीष जणाव्यु के—
 बाल आदि योग्य वर्गने तेओनी योग्यता अनुरूप उपदेशक उप-
 देश आपे तो ज नियमेन बोधि पमाडे छे आ परयी क्या श्रोताने
 क्या प्रकारनो उपदेश आपवायी लाभ घाय ? ए वात हवे समज-
 वानी नितान्त आवश्यकता कही अतएव प्रयकर्ता आ धीजा
 प्रकरणमा क्या क्या जीवने क्या क्या प्रकारनो उपदेश
 आपवो तेनु स्वरूप दर्शाववा प्रयत्न कर छे, अर्थात् धीजा
 अधिकारनो प्रारभ अने तेनो मवध आदिमा आ रीते
 प्रथकारे दर्शाव्यो छे.—

बालादिनामेपां यथोचित,

तद्विदो विधिर्गीत ।

सद्धर्मदेशनायामयमिह,

सिद्धान्ततत्त्वज्ञैः ॥ २-१ ॥

मूलार्थ—बाल, मध्यम आदिनु स्वरूप जाणनार उप-
 देशक आचार्योष पूर्वे जणावेल बाल आदिने यथोचित रीते
 उपदेश केवो आपवो ते सब्रमा सद्धर्मनी देशनाविधिनु स्वरूप
 आ प्रस्तुत प्रकरणमा कहेवाशे अर्थात् जे रीते सिद्धान्ततत्त्वज्ञ
 पुरुषोष विधि जणाव्यो छे, ते प्रमाणे आचार्यश्री कहशे

“ प्रस्ताव अने निर्देश ”

स्पष्टीकरण—आ कारिकानो भावार्थ जो के स्पष्ट ज छे तो पण काइक विशिष्ट खुलासो करवानी आवश्यकता छे खरी प्रकरणनो प्रारंभ करवा पूर्व प्रयकर्ता आचार्यथी निर्देश करे छे के—आ प्रकरणमा सिद्धान्ततत्त्ववेत् महापुरुषोए जे प्रमाणो उत्तम धर्मनी देशना आपवानो विधि अने तेना प्रकारो बाल आदि जीवो माटे कहा छे तदनुसार अमे पण कयन करीशु, कारण के पूर्व प्रकरणमा कही गया हताके “ बाल आदिने योग्य हितोपदेश आपवाथी आचार्य तेथोने घोधि पमाडे छे ” एठले माल आदि वर्गनु स्वरूप जाण कार पण उपदेशविधि जो न जाण तो ते तयाप्रकारनो विधि कयाथा दर्शावी शके ?

“ सबद्ध ”

निदान के—उपदेशके आ विधि अवश्य समजवो जोइए अतएव पहेलु प्रकरण बाल आदि वर्गनु स्वरूप दर्शावनारु जणाव्यु एठले आ बीजु प्रकरण देशनाविधि स्वरूप दर्शावनारु जणावीशु आ रीते बीजा प्रकरणनो सबध पहला प्रकरण साये बराबर घटावी लेवो, कारण के—ग्रथनो विषय योग्य रीते उत्तरोत्तर सुसमद्ध होवाथी ज समुचित ग्रन्थ अने पाठ्य थाय, जेथी पाठको पण उपदेशविधि समजो ययोचित रीते उपदेश करवा साये घोधि पमाडी शके अही आठ्लु

विशेष जाणवु के अर्ही जे विधि कहेवामा आवगे ते 'तद्विदो' बाल आदि वर्गनु स्वरूप जाणकार एवा उपदेशक पुरुषोने ज खास करीने उपकारी धरो शिवाय अन्य लोकोए तो आ विषय सपनी यानमां राखवानो छे आटलो सुलासो करी हवे आचार्यश्री जणावे छे के—

“ पराधीनता अने तेना हेतुओ ”

आ विधि हु स्वतंत्र कल्याणी नथी कहेवानो, किन्तु “ सिद्धान्ततत्त्वज्ञै ” सिद्धान्त-आगमशास्त्रोना जाणकार, पारगत एवा श्रुतकेवली भद्रवाहुस्वामी जेवा महापुरुषोए जे रीते पूर्व शास्त्रोमा जणाव्यो छे, ते ज विधि “अधोचितं” बगवर बाल आदि वर्गने उपकारी थाय तथाप्रकार अर्ही हु कथन करीश मतलब के—आ विषयमा ग्रथकर्ता पोतानी पराधीनता तथा गिष्टाज्ञा परिपालनता दर्शावे छे शिष्टत्व प्राप्त्यर्थ अने ग्रथने आदेय बनाववा माटे आ एक उत्तमोत्तम मार्ग छे के जे आचार्यो पूर्वपुरुषना पथे चाली उस्तु कथन करी पोतानी पराधीनता दर्शाव छे, तथा जे लोका उपदेश अने वस्तुनो निर्देश शास्त्रोमा पोतानी स्वतंत्र मतिरुदनाओ मुख्य करी कथन करे तो ग्रथकर्ता छग्रस्थ होवार्था अवश्यमेव स्वलिखित थाय अने दोषमिश्रित ज यारपाथा करे, कारण क ज्या छग्रस्यो अल्पज्ञ होइ पर्यादित ज्ञान धरावे छे त्या तेश्रो निर्दोष अने अविरोधी कथन कयायी करी शकै ? परमार्थ के—सदोष तथा विसवादी ज वस्तुनु प्ररूपण करे छे, आ बाहु प्राकृत लोको

तो श्रद्धालु, विश्वासु अने अतिअल्पज्ञ होवाथी ग्रथकर्त्ताना वाक्योपर ज निर्भर रहे छे. निदान के-एकान्त आदेयरूपे माने छे. आथी मयाज्ञा प्रमाणे वर्तन करी परिणामे ते लोको कल्याणना बदले विश्वासर्था स्वात्मानु अकल्याण ज करे एटखे आबु महत् पाप ते स्वतत्र आचार्यनी बुद्धिथी ज पेदा ययु, एम विनासकोचे मानबु जोइए अतएव सज्जन अने शिष्टनो ए वास्तविक धर्म छे क पूर्वपुरुषना पथे चाली तैवी वस्तु-तत्त्वनी प्ररूपणा करवामा पराधीनता ज दर्शाववी-राखवी. निष्कर्ष के-अल्पज्ञे सर्वज्ञोना अने महद् ज्ञानीओना वचनाधारे पदार्थनी व्याख्याओ करवी ए न्याय्य गणाय

अहीं मूलमा "अथ" शब्द एटला माटे ज ग्रथकर्त्ताए धर्यो छे के-आ आगलनी आर्याओथी साक्षात् दृश्यमान एवी सद्-धर्मनो देशनाविधि हू जणावीश जे विषय अनतरपणे समी-पमा ज-साक्षात् देखाहवानो होय छे त्या ज अथ शब्दनो प्रयो-ग घाय छे हवे उपर देखाडेला सबधना अनुसार वाल, मध्यम अने बुध पैकी धर्मदेशनामा प्रथम वाल योग्य धर्मदेश-नानो प्रकार अने उपदेशके पण तयाप्रकारे ज वर्तबु जोइये, ए बात आचार्यथी जणाय छे—

वाङ्मयचरणप्रधाना,

कर्त्तव्या देशनेह बालस्य ॥

स्वयमपि च तदाचार-

स्तदप्रतो नियमत सेव्य ॥ २-२ ॥

मूलार्थ—उपदेशके अर्ही उपदेशविधिमा प्रथम तो बालवर्ग पासे बाह्य चारित्रनी प्राधान्यता एटले मुनिवेशनी मुख्य प्रशसा जेमा होय एवी देशना आपवी, तथा उपदेशके पण नियमेन तेओनी सामे तेवो ज आचार पालवो जोइये.

“अयोग्य उपदेशानु परिणाम ”

स्पष्टीकरण—‘ बाह्य एवो मुनि आदिनो वेश, बाह्य एवी अन्य क्रियाओ तेमज बाह्य आचार-वर्तन देखीने जेओ खुशी धाय, धर्म पामे ते बालवर्ग’
आ बात गत प्रकरणमा आचार्यश्री कही गया छे परमार्थ के-बालजीवो बाधाडबरमा वधार श्रद्धालु होय छे, कारण के-तेओने विशिष्ट विवेक तथा दीर्घ विचार न होवाथी तेम बननु उचित छे निदान के-बालवर्गनी आवी स्थिति होवाथी यदि उपदेशक धर्मोपदेश आपता आ लोको सामे “ बाह्य वेशनी असारता, अन्य बाह्य क्रियाओनी गौणता, एव बाह्य वर्तननी आडबरता, तेमा धर्म नहीं, पासत्याओ, वेशविडबको अने माडो पण आजीविका माटे, अन्य स्वार्थ माटे तेवो वेश, तेवी क्रियाओ तथा तेवु आवेहुव वर्तन करे छे छता आ लोकोमा धर्मनो लवलेश देखातो नहीं; माटे धर्म तो तत्त्वमार्गमा अने आत्मानी शुद्ध परिष्कृतिमा ज होय छे, शिवाय वेश के क्रियाओ तो एकटा बगरना शून्य जेवी ज समजवी ”
आ रीतनो उपदेश अपाय तो नितान्तेन तेवु ज एकान्त पोपण

थाय तो ते बाललोको तुरतज धर्म प्रति मद आदरवाला यह धर्मशून्य-अश्रद्धालु बनी जाय छे अरे ! विमुख परिणामवाला थाय तो पण आश्चर्य नहीं

“ उपदेश प्रकार ”

अतएव ग्रथकर्त्ता स्पष्ट कहे छे के-“ इह ” उपदेश विषयमा उपदेशक ते बालजीयो विपरिणामी न बने, अश्रद्धालु न थाय माटे तेओनी प्रकृति अनुकूल ऋश गुणवृद्धि थाय, तेओ सप्तार्गारूढ बने, तेओनी धर्मप्रीति बघे तेम वाह्यवेश, वाह्यनिया अने राह्यवर्तननी माधान्यता जेमा होय तेवो धर्मोपदेश उपदेशके आपयो, तथा वक्ताए पण वर्तन अने क्रियाओ तथाप्रकारे ज ते लोको सामे प्रेमपूर्वक आचरवी, जेथी ते लोको आधिक्येन धर्मश्रद्धालु रनी उपदेशक पर अनुरागी पण थाय अन्यथा आ लोको उपदेश अन्यथा प्रकारनो तथा आचरण भिन्न प्रकारनु निहाळा शौघ ही शकाशील बनी अविश्वासु थाय छे ते ज उपदेश अने उपदेशक प्रति मद आदर के अनादरवाळा बनी परिणामे धर्ममा पण किंचित् अदृढ परिणामी यह जाय निदान के-‘परोपदेशे पाडित्य’ ए वाक्यनो लोको तुरतज उच्चार करे,-‘पोथीना रिगणा’ जेवु कहे, अतएव अही ग्रथकर्त्ता भार मूकाने कहे छे के-“ नियमत सेट्यः ” नियमेन वक्ताए पण जेवो उपदेश आपवो तथाप्रकारे ज वर्तन सेववु, पटले उपदेश अने वर्तनमा द्विषामात्र न करवो जोइए, अर्थात् उपदेशके “ चित्ते वाचि

क्रियाया च, साधुनामेकरूपता ” ए ज नियमनु समुचित रीते पालन करवु न्याय्य गणाय.

“ ग्रथकर्त्तानो आशय ”

अत्र ‘ उपदेशके बालजीवोने बाह्यवेश तथा वाद्याचारनी प्राधान्यतावाली धर्मदेशना आपवी ’ आत्रु जे आचार्य-श्रीए जणाव्यु तेनु कारण आ बाललोको आवा उपदेशधी अनुक्रमे धर्म पामे ए ज समजवु, परतु आवा उपदेशधी ते लोकोने अधारामा अथवा बालस्थितिमा राखवा एवो आशय आचार्यश्रीनो छे एम न समजवु किन्तु बालकन मिठाइनी लालच आपी जेम रुडवा ओपमनु पान करावाय छे, ए न्याये अर्ही पण आ लोकोने जे वस्तुमा अधिक प्रेम तथा श्रद्धा छे ते वस्तुना गुणो दर्शावा तेमा तेओने परावर सुदृढ रुरी, तेओनी विचारशक्ति अने विवेकशक्तिने खिलववी तेमज अनुक्रमे द्रव्यक्रिया अने भावक्रियानु स्वरूप, आत्मानी विचित्र परिणतीयो, अध्यात्मतत्त्वनु दिग्दर्शन, आगमतत्त्व, व्यवहार अने निश्चयनयनी मान्यता विगेरे जग्यावी बाह्यवश, बाह्यक्रियाओनी मुरय गौणता, क्रियानो खाली पण राह आडघर क्या अने केवा केवा प्रकारनो होय छे ? पासत्याओ पण केवु वर्तन तथा क्रियानु परिशीलन करे छे ? विगेरे दर्शावी, केवल बाह्यवेश आदिमा बालजीवोने स्यापित एकान्त अनुशासक ठावी तत्त्वमार्गमा भावप्राधान्य द्रव्यक्रियाओमा स्यापन

कराववो. बालजीवो मयमपणु पामी अनुक्रमे बुधपणु प्राप्त करे, आत्मानि परमविशुद्धि करता शीले तयाप्रकारे उपदेशके प्रयत्न करवो जोइए तोज उपदेशकनो उपदेश मशुआज्ञाकारी बनी स्वपरने यथारूपे उपकारी याय, एज आचार्यश्रीनो अर्ही गर्भित परमार्थ छे. अतएव अर्ही उपदेशानुकूल वर्तन राखवानु पण उपदेशक माटे आचार्यश्रीए भारपूर्वक जणाव्यु छे

आ प्रकारे उपदेशरने भलामण करी इवे बालवर्ग लायक देशनानु स्वरूप ग्रथकर्ता पाच आर्या श्लोकथी विस्तृत-पणे अर्ही दर्शाव छे—

सम्यग्लोचविधान

ह्यनुपानत्कत्वमथ धरा शय्या ।

प्रहरद्वय रजन्या ,

स्वाप शीतोष्णसहन च ॥ २-३ ॥

मूलार्थ—सम्यक्—सर्वज्ञ आह्वानुसारे छ छ पासे मुनि-योए लोच करवो, उपानह (जोडा) पहरवा नहीं अने पृथ्वी पर शयन—सयारो करवो, तथा रात्रिना वे प्रहर सुधी एटले बीजा अने त्रीजा महोरमा निद्रा लेवी एव शीयाळे, उन्हाळे शीत तथा उष्ण आदि परीपहो सहन करवा जोइए.

“ धर्मप्राप्तिनु कारण ”

स्पष्टीकरण—बालजीवो सुत्तर एवो मुनियोनो बाह्यवेश

तथा बाह्य कठिन आचारो निहाळी खुशी यवा साये धर्म पामे छे, तेनु मुरय कारण आ छे. प्रथम तो आ लोको खानपान, गाढी, वाडी अने लाडीनी मोजमजाहमा, कपडा अलकारोमा, शरीरनी शुश्रूषामा ज आनद माने छे, जेमा अतिकष्ट के अल्प कष्ट होय तेवी क्रियाथी, आचारोथी धुजी उठे छे, पोताना आत्माने लेश पण कष्ट थाय तेनार्थी आस पामे छे, अशक्य अनुष्ठानो माने छे, आर्था जे लोको कष्टसाध्य दुर्वह क्रिया के आचारो पालता होय तेना दर्शनमात्रथी आ लोको 'अहो ! महान् भयकर अशक्य दुर्बाह्य आ लोको धर्मसेवन करी रखा छे.' एम उचारी नमी पढे छे, गळगळा थइ जाय छे, बहु बहु मर्शसा करे छे, मुनियोना बाह्याचारो प्रति आ लोको मान पुद्धि धारे छे. अतएव उपदेशके पण आ लोकोने धर्म पमाडवा आ लोकोनी पुद्धि अनुकूल उपदेश आपवो कामकारी गणाय. ते उपदेश आ रीते आपवो

“ बाल उपदेश ”

जैन मुनियोनो एवो आचार छे के—शिरमा कोइ विशेष दर्द-पीडा न हीय तो छ छ मासे अवश्य साधुए हायवडे पोताना केश उखेडी नाखवा-लोच करवो. यदि विशिष्ट पीडा धती होय तो एक एक महिने अस्त्राथी मुहन करावहु अने अधिक दर्द यतुं होय तो उपरउपरथी पञ्च पञ्च दिवसे केशो कतराववा गमे तेवी कठण शीत या गरमी पडती होय, पत्थर, काकरा के कटकवाळी जमीन होय, लाबी

अथवा दीर्घ मुसाफरी करवानु होय तो पण साधुए पण चामडाना अथवा तेवा अन्य प्रकारना जोडा पहेरवा नहीं, उची के नीची, सम के विपम, काकरावाळी के साफ गमे तेबी जमीनमा पलग, खाटलो के गादी-तकिया विना साधुए शयन करवु, मात्र पोतानो उननो के तेवो एकाद वे कपडानो सयारो करी तेना पर शयन करवु जोइए. साधुए रात्रिना चार प्रहर पैकी पहला अने छेहटा प्रहरमा स्वाभ्याय, ध्यान अने ईश्वरभक्ति करवी तथा बीजा अने श्रीजा प्रहरमा एटले वपारेमा वपारे छ घगानी निद्रा लेवी उचित छे. जो के साधुए प्रमाद करवो न जोइए तथापि शिथिल एवु शरीर विना निद्राए अवश्य अस्वस्थ थइ जाय, अधिक आलस आवे ने अनुक्रमे धर्मसाधन छुटी जाय छे, एउ दर्शनावरणीयरुर्मना उदयथी निद्रा पण जरूर आवे छे, माटे अर्हा वे प्रहरनी निद्रा जाणवी, परतु रात्रिना आठ अने दण घगानी निद्रा, दिउसना वे वे कलाकोनी निद्रानो प्रमाद सेववो ए तो कदापि उचित न गणाय. फरी साधुए शांत, उष्ण अने वर्षा ए त्रणे श्रतुमा पोतानी शक्ति माफक सम्यग् रीते अनुकूल-प्रतिकूल शीत तथा उष्ण आदि परीपहो सहन करवा जोइये मस्तरु पर छत्र धारवु न जोइए, कोई पण वाहन आदिमा बेसवु न घटे अत्र जे परीपहो सहन करवानु मुनियो माटे कष्टु छे ते त्या सुधा ज के पोतानी शुभ परिणतीओ चढता रहे, शरीरनी शक्तिओ बनी रहे, आर्त्तध्यान सबधी क्लिष्ट परिणामो उपजे नहीं, वधुमा कोई पण रीते

प्रथम जे चारित्र परिणामो हता तेमा क्षति न पहुँचे किन्तु
 वृद्धि ज धाय तथाप्रकारे सहन करवु, आचरण सेवुं जे
 आचारोनु सेवन करवा छना आत्मा चणो चणो अधिक मत्तीन
 यतो होय, क्लिष्ट परिणतीयो पामतो होय, वधु कर्मवध करतो
 होय तो ते कठीण आचारोनु पालनपणु निष्फल ज समजवु
 अरे । एक प्रकारे कर्मप्रथमा हतुभूत समजवु, माटे ज अर्ही मूलमा
 ग्रंथकर्त्ताए ' सम्म्यक् ' ए पद आप्यु छे अर्थात् शुभ भावोयी
 आचारोनु पालन करवु

फरी ए ज विषयने ग्रथकार वधु स्पष्ट कर छे—

पष्ठाष्टमादिरूप चित्र,

वाह्यं तपो महाकष्ट ।

अल्पोकरणासधारण च,

तत् शुद्धता चैव ॥ २-४ ॥

मूलार्थ—सामान्य जनो जेने दुःखयी करी शके तेवा
 नाना प्रकारे छद्म अहम आदि बाह्यतपनु आचरण करवु, एव
 पोतानो निर्वाह यद् जाय एटला ज अल्प वस्त्रपात्र आदि
 आधार्मी विगेरे दीपो रहित चारित्रना उपकरणो धारण
 करवा

“ तपस्वरूप ”

स्पष्टीकरण—जेनायी आत्मा जाज्वल्यमान यद् पोतानी

साथे लागेला अनादिना निकाचित-अनिकाचित बन्ने प्रकारना विविध कर्मों प्रजाली प्रजाली भस्मीभूत कर अथवा जे कर्मोंने तपावी तपावी आत्मा आत्मायी अलग करे तेने शास्त्रमा तप कर्हुं छे परमार्थ के-आत्मा शुभ एवा परमविशुद्ध परिणामोपूर्वक अनेक विचित्र खानपान अने तप्यानी कांइ पण बाद्धा विना केवल कर्मस्यनी इच्छायी ज पोतानी शक्ति अनुसारे निरोध करे. एव इन्द्रियो तथा मन, वचन, कायाना प चित्र योगोंने बाधा न पहुँचे, खडित न थाय एवी परम विशुद्ध त्रियाने सुविशुद्ध तप कयो छे. आ प्रकारनो ज तप कर्मनो स्य करी आत्माने ब्रह्मस्थानमा स्थापन करे छे, ज्यार आ शिवायनो अमुक प्रकारनी लालसाओथी बनेलो तप मात्र आ जन्म के पर जन्ममां ते ते लालसाओनु ज पोपण करी कृतकृत्य थाय छे आथी ज महर्षिओए आ बन्ने तपना अनुक्रमे निष्काम अने सकाम एवा नामो आप्या छे आ बन्ने तपो ऋष्ट अतिकष्टकारी होवार्थी सामान्य जनता करी शकती नथी, एटले जे कोइ करे छे तेमा तेओ मुग्ध ज थाय छे, तथापि सकाम तप तो घणाए लोको स्वार्थ-लोभयी कर छे ने तेमा पोते क्लेशने पण गणता नथी. जेपके-पैसा पाटे, विपयो पाटे लोको खानपान छोडी दे छे, अति गरमी के शीत विगेरे सहन करे छे, चार-पाच फलाको सुधी एकी पगे खडा रहे छे, रोगादि कारणो आठ, दश, पन्नर दिवसना उपवासो कर छे, एवो ज रीते आ अने जे लोको परलोकमा राज्य आदिना लोभया विविध कष्टो सहन करे छे ते सर्वने सकाम तप कयो छे आओ तप तो घणाये

करे छे एटले ते काइ दुर्लभ नयी, परतु निष्काम एवा तपनी ज
भाप्ति दुर्लभ अने आश्चर्यकारी शास्त्रोमा जणावी छे ।

“ तपना भेदो ”

अत्र निष्काम एवा तपना वाह्य तथा आभ्यन्तर ए वे भेदो
तथा उभयनाह्य वाह्य अने ह्य आभ्यन्तर मली द्वादश (बार)
भेदो कथा छे. जे तप वाहेरथी शरीर आदिने सुकावी सुकावी
सीण कर, लोको जेने सारी रीते देखी शके ने आश्चर्य पामे ते
वाह्य, अने जे अदरना कषाय तथा रागादिकने चीण करी
विषयादि वासनानो प्रलय करे तथा बहुधा सामान्य जनता
जे तपने देखी न शके ते तपने आभ्यन्तर तप कथो छे अथ
उभय तप पैकी आभ्यन्तर तप एकान्ततः कर्मक्षयकारी
होवाथी तेने प्रधान गण्यो छे, ज्यारे बाह्य तपथी तो सुवि-
शुद्ध परिणामो वर्तता होय तो कर्मक्षय याय अने न वर्तता
होय तो न याय माटे आ तपने तेटला असे गौण कथो छे
तथापि एटलु तो चोकस जाणवु के—वाह्यतप जनताने आश्च-
र्यमा नाखी बालजीवोने मुग्ध जरु वनायी शके छे. निदान के-
बन्ने तप कल्याणकारी होवाथी सर्वासे आदरणीय जाणवा
कर्मक्षयना अर्थाए तो आ तपो अवश्य आचरवा जोइये

“ विचित्र दलीलो ”

अर्ही आ तप विषयमा घणाधोनी एवी दृढ मान्यता छे
के—आवो तप करवाथी आत्मा जरु दुःखी याय, अदरना

जतुओ खोराक न मळवायी मरी जाय अने भूते मखुं एवा तपमा धर्म कैम समवे ?

“ समाधान ”

निदान के-आवा तपमा धर्म न ज घटे जरूर,-यदि अनिच्छायी तप कर्यो होय, हु भूते मरु छु एवा विमल्यो उद्भवता होय तो तो ते तपमा धर्म न समवे ए न्याग्य छे; परंतु जे तप खास जीगरना प्रेमधी कर्यो होय, कर्मस्य अने तेम करबु ते मारो एकान्त सुविशुद्ध धर्म छे, देहनो ममत्व अन्य करवानो आ मुख्य मार्ग छे आवा विचारोधी यदि ते तप करीए तो आत्मा दुःखी क्यायी थाय ? एमा तो आत्मा एकान्त खुशी ज मनावे छे अन सर्वज्ञ भगवतोनी आवा अद्वितीय तप माटे ज आशा छे अदरना जतुओना उचाव माटे ज मनुष्यो खोराक स्वीकार छे, आ दलील तो हास्यास्पद जेवी छे, कारण जो एमज होय तो शरीरने निरोगी बनाववा लोको दबाओ, विरेचनादि स्वीकारी शमाटे अदरना जतुओने नाश करता हशे ? केवल शरीरमा अने वाहिर जीवढाओ कैम बधवा देता नथी ? तथा शु लोको जतुओने आराम पहुँचाववा ज आहार ले छे के पोताना शरीरनी पुष्टि माटे ? यदि जो आहारधी पोतानी पुष्टिना घटले एकान्त जतुओनी वृद्धि यइ शरीरने हानि पहुँचती होग तो प्रत्येक मनुष्यो शु आहार लेवानु पसद करे खरा ? विगेरे विगेर विरोधी दलीलो उपर बहु विचार करवो घटे छे फरी शरीरमा जतुओनी उत्पत्ति

आहारना अपचायी ज यापछे, एटले शरीरमा काइ जतुओए
पहेलाथी पर कर्यु नथी होतु हवे रही भूखे मरवानी दलील.
आनु समाधान उपर करी गया छीए ज्या मात्रयी तप कर-
वानो होय त्या भूखे मरवानु कोण कही शके ? ए तो जवर-
जस्तीथी अगर काइ लालसाथी आहार छोडवानो होय त्या ज
आ दलील टकी शके

“ उपवास ”

आधी सिद्ध थयु के-आत्मार्थीए तप अवश्य करवो
जोइए अतएव साधुए क्रमे क्रमे देहनों मोह अल्प करवा महा-
कष्टकारी एवा छट्ट (वै उपवासो), अष्टम (ऋण उपवामो) आदि
विविध बाय तप करवा घटे अहीं जैन शास्त्रनी मर्यादाप्रमाणे
प्रथम एक बखत भोजन करी बीजा दिवसे अन्न, जल, स्नादिष्ट
वस्तुनो अने मिठाइ आदिनो अथवा जल सिवाप सर्वनो
सर्वथा त्याग करवो अने बीजा दिवसे एक बखत मात्र भोजन
करयु आवा त्यागने चतुर्थभक्त उपवास एवी सज्ञा शास्त्रीमा कही
छे, तो पण सूर्योदयथी बीजा सूर्योदय पर्यंत उपरोक्त भोजनादि
वस्तुनो त्याग करवो तेने उपवाम कथो छे अत्र आटलु तो उपवास
करनारे ध्यान राखवु के पहेला दिवसे सध्या समये जल विगेर
छोडी देवा, एव बीजा दिवसे सूर्योदय वाट ओछामा ओछी
४८ मीनीट पर्यंत काइ पण मुखमा न नाखवु अर्थात्
नवफारसी करवी एटले आ उपवास उचित गणाय. साधुए

आवा विचित्र तपो अक्षय करवा जोइए, जेयी देहनो मोह
अल्प धवा साथे नितान्त कर्मक्षय थाय.

“ उपकरण ”

तथा साधुए पोताना निर्वाह अर्थे वस्त्र, पात्र, फारली,
रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपकरणो पटला ज राखवा के
जेनाथी निर्वाह धवा साथे भारभूत थइ मूर्च्छाकारी न बनाय
ते पण अल्प कर्मतना ज राखवा जेथी कोइने उठाववानी इच्छा
न थाय अने पोताने मोह न उपजे आ उपकरणो पण निर्दोष,
न्यायथी आरल अने साधु माटे रनाव्या न होय, पैसाथी ग्वरीया
न होय तवा राखवा, यावत् जमा साधुपणानी शोभा वधे तेवा
उपकरणो साधुओए राखवा उचित छे, धारण के ग्रयकर्ताए
अर्ही ‘ उपकरण ’ शब्द मूत्रयो छे तनो अर्थे ‘ उपक्रि
यते इति उपकरण ’ जे उपकार करे ते उपकरण परमार्थ
के-जेने धारण करवाथी आत्माने उपकार थाय, आत्मा
अधुमिं थाय ते ज उपकरणा, सित्राय उपधिना बदले
उपाधिभूत समजवा

पुन. उपदेशनो विषय ग्रयकार दर्शवि छे—

गुर्वी पिंडविशुद्धिश्चित्रा,

द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव ।

विकृतीनां सत्यागस्तथैक—

सिन्धादिपारणक ॥ २-५ ॥

मूलार्थ—साधुए आहारादिनी विस्तारथी शुद्धि करवी ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रित विविध अभिग्रहो धारण करवा, तथा नित्य छ विगयोमार्थी अमुक विगयनो त्याग करवो एव तपना पारणे एक सिक्क्य, वे सिक्कयी पारणु करवु

स्पष्टीकरण—जैन साधुओ हनन, पचन, ऋयण ए ऋण कोटीना त्यागी होय छे, अर्थात् साधुओ कोइ जीवने मारे, मरावे अने मारताने सारो समजे नहीं, अग्नि आदिनो आहारादि माटे आरंभ कर, करावे तथा करताने सुदर ममजे नहा एव विक्रयवी कोइ वस्तु ले, लेवरावे नहीं—आवो कठोर आचार साधुओनो होवाथी साधुओए शरीरना निर्वाह तथा धर्मसाधनार्थे ग्रहस्ये स्वकृदुव अर्थे तैयार करेल भोजन अने पाणी आदिमाथी माधुरी वृत्तिये उचित समये अल्प अल्प आहार ग्रहण करवो एटले जे आहारमा शास्त्रकथित आहार सगधी ४० दोषो न लागे एवो ज आहार मुनियो माटे लेवा योग्य कथो छे, अने ते सिवायनो आहार अकल्प्य कथो छे. अर्हाँ आहारना १६ उद्गम दोषो, १६ उत्पादना दोषो, १० एसणा अने आसेमणा दोषो मली ४२ दोषो पिंडनिर्मुक्तिमा कथा छे. आनु विस्तारथी स्वरूप बालश्रोता सामे उपदेगके करवु, तथा द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी ४ प्रकारना अभिग्रहनु स्वरूप ऋयन करवु. अर्थात् उत्तम मुनियो रोग नाना प्रकारना अभिग्रहो धारण करे

जेमके-द्रव्ययी अमुक ज आहार, क्षेत्रयी अमुक घरनो अगर अमुक जग्याए, कालयी अमुक समये अने भावयी स्त्री अथवा पुरुष के वाञ्छक अमुक वयना, अमुक रंगना कपडा पहरेला होय-आ रीते अभिग्रहो धारण करी अग्लानभाये, अमपादपणो तेनो निर्वाह करे बळी नित्य दुध १, दही २, घी ३, गुड ४, तेल ५, तखेल चीजो ६-आ ६ विगयमायी अमुक विगयनो त्याग कर, अने उपवास, छट्ट, अष्टम आदि तपस्याने पारणो एक सिक्थ, ये सिक्थ आदि आहार अगीकार करे. आ रीते मुनि-आचारनु सुदर स्वरूप प्रतिपादन करतु, जेयी बालश्रोता सारी रीते धर्ममार्गमां आवी शके

पुन आचार्यश्री जणावे छे—

अनियतविहारकल्प

कायोत्सर्गादिकरणमनिश च ॥

इत्यादि बाह्यमुञ्चै

कथनीय भवति बालस्य ॥ ५-६ ॥

मूलार्थ—साधुए अनियमित रीते विहार करवो तथा हमेशा कायोत्सर्ग विगेरे उचित क्रियाओ जरूर करवी आ विगेरे सर्व बाह्याचार सबधी उपदेश बालजीवो पासै कथन करवो.

“ अनियतविहार ”

स्पष्टीकरण—मुख्यतया साधुए एक जग्याए अधिक काल रहेवु न जोइए. ससारत्याग कर्या पछी, मोहना बघनो छोड्या पछी फरी एकज स्थानमा रहेवाथी साधुओने अनेक प्रकारना दोषो लागु थाय छे. प्रथम तो एक स्थानमा लागु काल पर्यंत रहेवाथी लोको साये, पदार्यो साये अने स्थान साये जरुर मोह बघाड जाय छे यावत् आ मोह पाछळ अनेक खटपटो अने प्रपचो पण उमा थाय छे. एटले साधुपणु स्वीकार्या छता एक ससारी करता पण अधिक विटण्णाओ आ महात्मा (!) ने सहवी पडे छे, एव लोको अति सवधमा आववाथी धर्मगुरुपणानी भावनानो त्याग करी एक सामान्य सवध घराववा लागी जाय छे. परिणामे निंदापात्र बनी लोकोने धर्मश्रद्धा प्रति स्वलित आशयवान् करे छे अतएव साधुए एक स्थानमा अधिक समय न रहेता भिन्न भिन्न क्षेत्रमा विचरवु जोइये परमार्थ के—“ गामे एग राईय एगरे पच राईय ” ए शास्त्राज्ञा प्रमाणे ग्राममा एक रात्रि अने शहरमा पाच रात्रि जघन्यथी रहेवुं. विशेषमा चातुर्मास सिवाय एक महिनाथी अधिक रहवु न कल्पे यदि शरीर अशक्त होय, रोगादि कारणो होय अथवा तेवा प्रतिकूल सयोगो उभा यया होय तो पण एक महोद्धो छोडी बीजा महोद्धामा, एक उपाश्रयथी बीजा उपाश्रयमा अने छेत्रे एक खुणाथी अन्य खुणामा ए प्रमाणे स्थान बदली मासकल्प कर-

वानो विधि अथर्व्य साचवयो जोइए निदान के-त्यागोने एरु स्थानमा रहेवु सर्वथा हानिकर छे माटे अर्ही “ अनियत विशरकरूपः ” ए पद अथर्व्यसाधुओ माटे उचित न करु छे.

“ काउस्सर्ग ”

फरी मुनिए इग्मेशा कायोत्सर्ग करवो जोइए, अवलमा तो साधुए नित्य पोतानी समयोचित उचित क्रियार्ण्डयी निवृत्त पड सूत्राभ्यास करवो, करावयो, अर्थ आदिने विचारावा, विचारावा, एव लोकस्वरूप, अनित्यादि ससारनी वार भावनाओ, मैत्री आदि समकितनी भावनाओ, पंचमहाजननी पचीम भावनाओ, देह अने आयुष्यादिनी स्थितिओ, कर्मनु स्वरूप, आत्मा तथा कर्मनो सबध ने प्रत्येकनु स्वरूप विगेरे पदार्थ पर बहु बहु विचारो करवा, धर्मभ्यान अने शुद्धध्यानना पायाओ ध्यावा. वाद शरीरनी मूर्च्छा अल्प करवा, आत्मानु अडग बल प्राप्त करवा, कपायोने निर्वळ करवा, एकान्त स्थानमा, शून्य खडियेर मुकाममा, श्मशान अने अरण्यादिकमा दिवसे अने निशाये कायोत्सर्ग जरर करवो. एटले जे त्रियामा पोताना आत्माने स्थिर वधता परिणामवाळो बनावी देहना सस्कारो, शुश्रूषाओ त्याग कराय, गमे तेवा उपद्रवो अर्थात् गजसुकुमाल मुनि माफक प्राणातकष्टो पण आवी पडे, दास, मत्सरादि पीडा उपजावता होय तथापि आत्मा पोतानु शुभध्यान त्यागे नही; किन्तु परमात्मानु अथवा आत्मस्वरूपनु ज

ध्यान धरे मन, वचन अने कायानी एकामता-अविचलता राखी, नासिकाना अग्रभाग पर दृष्टिने स्थिर करी, ऊर्ध्वदेहपणो शरीरनु एक पण स्वाडु फफडाव्या विना अग्रमत्तभावे आत्मा स्थिर रहे तेनु ज नाम अर्ही कायोत्सर्ग कह्यो छे. 'आवश्यक' सूत्रमा काउस्सग्गनु मुख्य फल 'वर्णतिगिच्छा' कथ्यु छे जेम देह पर गुमडा विगेरे थया होय तो तेनी मलमपट्टी विगेरेथी शान्ति कराय छे एव आत्मा पर दोपोरूपी जे गुमडा थया होय के जेनी शान्ति प्रतिक्रमवायी एटले वारवार निदराथी, पथात्ताप करवाथी न थाय तेवा प्रवळ दोपो-पापोनो नाश आ काउस्सग्ग ध्यान करवाथी निश्चयेन थाय छे, अतएव छ आवश्यकमा प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ आवश्यक पट्टी आ काउस्सग्ग नामक पाचमु आवश्यक प्रतयारी भाटे करवानु सर्वज्ञ भगवते निर्देश्यु छे निदान के-उपरना पापोने आ कायोत्सर्गरूप क्रिया जर शान्त-निर्मूल कर छे. अतः साधुए हम्मेशा काउस्सग्ग करवो जोइए.

“आसन”

मूलमा 'कायोत्सर्गादि' ए पद आय्यु छे अत्रस्य आदि शब्दथी 'निपद्याकरणमासेवनम्' टीकाकार जणाये छे. न्यायविशारद उपाध्यायजी महाराज 'आदिना तापनादिग्रहः' कहे छे. अर्थात्-जेम साधुए कायोत्सर्ग हम्मेशा एक ज स्यानमा कायाने स्थिर करी

जीवोनो बचाव थाय तेम एक आसने बेसी घ्यानादि पण करवा जोइए. एटले वारवार इधरउधर फरवु न जोइये जेधी जीवोनी विराधनानो प्रसंग प्राप्त थाय, अथवा डढासण, उत्क-दुकादि आसन बाळी कायानु दमन करवु-कायानो निग्रह थाय ते रीते स्थिर यतु उपाध्यायजीना वचनमा स्वाध्यायादि-माधी निवृत्त यइ खुल्ला स्थानमा नम्र देहे उभा रही चैत्र-वैशाख महीनानी गरमीमा आतापना लेवी, षडकडती ठडीमा कपडा अलग करी खुल्ला म्यानमा ठडी लेवी एटले शीतमहन विगेरे क्रियाओ करवी जोइये, परतु आत्मा आर्तध्यानी न थाय ए वात नितान्त ध्यानमा राखवी

‘ उपसहार ’

आटलु कथन करी ह्ये श्लोकना उत्तरार्द्धधी प्रथकर्ता वाल योग्य धर्मोपदेशनो उपसहार करता जणावेछे के-आ सर्व वाल योग्य धर्मोपदेश राख आचार सवधी जाणवो वस्तुतः अर्ही जे विस्तृतरूपे वाद्य आचार सवधी उपदेश जणाव्यो ते अने तेने लगतो ज उपदेश उपदेशके वालवर्गने आपवो आ उपदेश वाद्य आचार सवधी ज आपवो जोइये आटलु तो घरा-वर उपदेशके ध्यान राम्वडु सिवाय आचार्यश्रीए ‘इत्यादि’ अर्ही आदि शब्द आप्यो छे एटले आदि शब्दयी साधुए जे स्थानमा रहेवु तेनी अने बह्मपात्रनी उमय काल वरावर ध्यान राखी पहिलेहणा करवी, उमय काले लागेला दोपनी शुद्धि माटे मतिक्रमण करवु, एव सूत्रादिना अभ्यास माटे

रात्रिना पाङ्गला पहोरमा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक प्राभातिक-
काल ग्रहण करवानी विधि विगेरे क्रिया अवश्य करवी
जोइये पुनः महाप्रतोनु पालन, गरम जलनु पान, रात्रिभोजन
आदिनो त्याग ए अनुष्ठानो साधुए अवश्यमेव करवा जोइये
अर्ही दशविला आ सर्व साधुओना वाङ्म आचारो जाण्वा.
निता तेन बालवर्ग वाङ्म आचारने निहाळ्या जेटली ज बुद्धि
घरावनार तथा तत्परत्वे अनुरागी होवायी आ सर्व उपरोक्त
उपदेश तेओनी श्रद्धामा बधारो करी धर्मपति भवल अनुराग
उपजारे ए सम्भवित ज छे, बन्के वधुमा आवा उपदेशथी उप-
देशक तेओना हृदयमा ग्रयकर्त्ताना वचन प्रमाणे बोधिनीज
प्रकटावी मध्यम अने बुजपणानी अवस्था पर लइ जाय ए काइ
अधिकोक्ति न गणाय

आ रीते दुकमा ग्रयकर्त्ताए गाल योग्य हितोपदेश कद्यो
आवा उपदेशथी गालजीवो धर्ममा दृढ आशयगाला यइ अवश्य
क्रमशः मध्यमवर्गमा आवी जाय छे. अतएव आ लोकोने
हवे मध्यमवर्ग योग्य उपदेश आपवो जोइए, माटे आ उपदेशनु
स्वरूप आचार्यथी अर्ही दर्शारे छे —

मध्यमबुद्धेस्त्वीर्यासमिति-

प्रभृति त्रिकोटिपरिशुद्ध ॥

आद्यतमध्ययोगैर्हितदं,

खल साधुसङ्घत्तम ॥ २-७ ॥

मूलार्थ—उपदेशके मध्यमबुद्धिवर्गने ईर्यासमिति आदि पाच समितिनु स्वरूप तथा त्रिकोटिये शुद्ध आदि, मध्य अने अतमा कल्याणकारी एवु साधु सबधी सुदर वर्तननु निश्चयेन कथन करवु

“मध्यमवर्गनी योग्यता”

स्पष्टीकरण—पहला प्रररणा नीजा अने नीजा श्लो कना विवरणमा आपणे तपासी गया के—मध्यमबुद्धिवर्ग वाल वर्ग करता बुद्धिमा तथा आचारमा चडतो होय छे, अर्थात् तेओ विचारशील होवाथी वाह आडवरना खाली भभका-मात्रधी खुशी यता नथी किन्तु अदरना शुद्ध आचारोनी परीक्षा करवा माटे पोतानी बुद्धिने दोडारे छे अतएव आ लोकोनी पासे आधिक्येन धर्ममा दृढ करवा माटे उपदेशक प्रधान एवा साधु आचारनु स्वरूप जरूर प्रतिपादन करवु निदान के—आगल जणावा गयेल आचारनु प्रतिपादन आ लोको पासे करवु ते निरर्थक समजवु पाचमी या छट्टी चोपडीना अ भ्यासकने पहेली चोपडीनो पाठ शीखवाहवा जेजु हास्यकारी ज गणाय, कारण के उपर दर्शित साधुओना वाह आचारो दुष्कर अने दुर्वाय छता अमुक प्रकारना लोभ या मोहना का रणथी विनयरत्न आदिनी माफक घणा लोको सेवन करे छे एव राली आत्मशुद्धि विना आवा मखर वाह आचारो आत्माए—“अणताह दच्चर्लिगाह” ए वचनथी अनती

घार सेव्या छे, परतु तेधी आत्मकल्याण जराये ययु नहीं.
आधा आवा अनेक विचारो आ मध्यमबुद्धिबर्ग विचारे छे

“ उपदेश ”

अतः जे आचारोनी खरी दुष्करता अने उचमता होय तेवा अभ्यतर शुद्ध आचारोनु स्वरूपदर्शन उपदेशके आ लोकोने करावबु उचित गणाय. ग्रथकर्ताना वचनमा ‘ ईर्यासमिति-प्रभृति ’ ईर्यासमिति विगेरे साधुओनु सत्य स्वरूप कहेनु. ते आ प्रमाणे-प्रथम तो साधुए स्वात्मशुद्धि माटे अने धाग आचारोनी सार्थकता बदल आठ प्रवचनमातानु पालन करबु जोइए १-ईर्यासमिति, २-भाषासमिति, ३-एपणासमिति, ४-आदानभटमत्तनिक्षेपणासमिति, ५-पारिष्ठापनिकासमिति, ६-मनोगुप्ति, ७ वचनगुप्ति, ८-कायगुप्ति आमा पाच समिति अने प्रण गुप्ति छे, उभय मली आठ प्रवचनमाता कही छे

“ प्रवचनमाता ”

प्रवचन एटले जैनसिद्धान्त तेमा जे माता तुल्य माता ते प्रवचनमाता, अर्थात् जेम माता पुत्रनु सर्वावस्थाया हित ज चाह अने करे छे तेम आ माता पण तेनी सेवा करनार अने तेनी आझामां वर्तनार साधुरूप पोताना पुत्रनु एकान्त कल्याण ज करे छे. धल्के लौकिक माता कदापि विरोधी पण यइ जाय छे अथवा आ लोकमा पूरतु हित पण नयी करती त्या परलोकना हितनी बात ज क्या रही ? ज्यारे आ लोकोत्तरमाता

तो स्वप्नमा पण पोताना पुत्रनु अहित नथी करती-विरोधी नथी बनती. आ लोकमा पूर्ण कल्याण करवा साये परलोकमा नितान्त कल्याण ज कर छे एटले आ माताने सर्वतोश्रेष्ठ केम न कहथी ? अवश्य उत्तमोत्तम माता ज कहवाय

“ समितिओ ”

अहीं समितिनु स्वरूप शास्त्रमा आ प्रमाणे दर्शाव्यु छे-
 “ प्रविचाराप्रविचारात्मिका समिति ” “ जे क्रियामा कर्मबन्धक खोटी प्रवृत्तिनो आत्मा रोध कर अने कर्मक्षयकारक प्रवृत्ति करे ते समिति ” हिंसा, झूठ आदि चेष्टाओथी नितान्त कर्मबन्धक ज थाय छै, माटे तेपायी देह आदिने रोकी कर्मनिर्नरानी हतुभूत समितिरूप क्रियामा आत्माने स्यापवो एटले मार्गमा गमन करवा पूर्वे बीजी तरफना ध्यान, विचारो अने वार्तालाप आदिने रोकी केवल साढात्रण हाय जमीनमा दृष्टि राखी जीवनो बचाव करी गमन करबु ते ईर्यासमिति १, अन्यनी निंदा क दु ख न उपजे, पदार्थनु यथार्थ स्वरूप कयन कराय, नितान्त अन्यनु हित थाय अने परिमित शब्दो जेमा होय जेथी खुल्ली रीते अर्थबोध थाय ए रीते भाषानो उचार करवो ते भाषासमिति २, आधाकर्मि आदि ४२ दोपो न लाग्या होय एवा आहारादि ग्रहण करवा ते एषणासमिति ३, बस्त्र-पात्र आदि काइ पण चीज प्रथम दृष्टिथी बराबर निहाजी, रजोहरणथी प्रमाजी वाद लेवी अथवा भूमि पर मूकवी ते आदानभङ्गमत्तनिक्षेपणसमिति ४, मळ, मूत्र, श्लेष्म

। न हण्ड १ किण्ड २ न पयड ३, कय
 षण अणुमर्द्धि नवहा ” ॥१॥ “ पिडेसणा सवरी
 विधि सशेषयी न हण्डु ३, न खरीदु ३, अने
 न रागु ३ करु, फरावु अनुमोदु विगेरे ए नवक्रोन्मा
 ममापेश थाय छे ”

“ कपच्छेदताप त्रिकोटि ”

एव टाकाकार पुनः “ त्रिकोटीपरिशुद्ध ” ना टीका
 “ कपच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्ध ” अणावी स्पष्ट कहे
 छे के-सपूर्व जेनागम आठ प्रपनमातामा अतर्हित होवायी
 एतज जेनागम आठ प्रवचनमाताना आसार ज जीव छे, पाट
 पिदानोए आ जेनागमना पण त्रण कोटिथी कप, छे अने
 ताशुदाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय गणाय रात्र-आ-
 भ्यतर आसारने टगावनार एवा मूल स्थमभूत प्रवचन-मिद्धान-
 न्तनी रमाटी कर्या विना आचाराना कपोटी कयायी थाय ?
 अतएव अत्र टाकाकार तेना परीक्षा करवा “ त्रिकोटिपरि-
 शुद्धं ” ए पदना उररोक्त अर्थ अणाव्यो छे एतश्च न ही किन्तु
 मगादपणे गुल्लो कर छे निगान के-आगम एतने सर्वज्ञु वान
 अने तेना पयास्थित परीक्षा यवायी तदुक्त आठ प्रवचनमा-
 नी म्वत परीक्षा यड गइ, कारण के-सर्वज्ञवचनरूप प्रवचन
 थायी ज साधुओ बर्तन-क्रियापात्र करे छे.

“ शुद्धि ”

“ छेद अने तावतु स्वरूप एव प्रपकर्ता ” धर्म-

द्वेष अने मोहे करीने शुद्ध होय, अर्थात् मुनियोने ससारना विविध सुदर पदार्थोनो मोह न होय, स्वप्न-परजनमा मोह क रागवध न होय, निद्रक के पूजकमा प्रेम या द्वेषभाव न होय. अरे ! माधुओने स्वशरीर पर पण मोह नथी होतो तो अन्य पदार्थोनो मोह कयाधी होय ? निदान के-साधुओ पणु चारित्र-सुदर वर्तन आचरे के जेमा आ राग, द्वेष व मोहने अवकाश न मले अथवा अनुक्रमे निर्मूल यइने चाल्या जाय. टीकाकार आ पदोनो रीजो अर्थ दर्शाव छे—“ तिस्रः क्रोटयः हननपचनक्रयणरूपा कृतकारितानुमतिभेदेन श्रुयते ताभिः परिशुद्ध ” हनन, पचन, क्रयण ए त्रण कोटीने करवु, करावु अने अनुमोदनवडे गुणवाधा नव भेदो थाय आ नव भेदे शुद्ध साधुआनु वर्तन होय, अर्थात् मुनियो कोइ जावने हणु, हणाये अने हणताने सारो समज नहीं, अग्नि आदिनो आरभ कर, कराने करताने ठारु माने नहीं, कोइ पण चीज वजारथी मूल्यथी ले, लेवराये ने लेताने सारो समजे नहीं परमार्थ के-४२ दोष रहित जे आहारविधि मुनियो माटे आगल दर्शागी गवा ते आ त्रण कोटीमा अतर्गत थाय छे जो आ त्रिकोटीशुद्ध वर्तन यथास्थित होय तो ज आ आहारविधि पण बराबर सुरचित थाय, अन्यथा आहारविधि पण सदोपमय जाणवी पटले निर्दोष आहार इच्छक मुनिये अवलमा अग्रथ आ त्रण कोटीनी शुद्धि करवी ए न्याय्य गणाय ए ज बात शास्त्रोमा कही छे—“ पिंडेसणाय सव्या, सखित्तो असरह नव-

सुकोटोसु । न हणइ १ किणइ २ न पयइ ३, कय
कारवण अणुमईहिं नवहा ” ॥१॥ “ पिंडेसणा संधी
सर्व विधि सक्षेपयी न हणवु ३, न खरीदवु ३, अने
न राघवु ३ करवु, कराववु, अनुमोदवु विगेरे ए नवकोटिमा
समावेश थाय छे ”

“ कपच्छेदताप त्रिकोटि ”

एव टीकाकार पुनः “ त्रिकोटीपरिशुद्ध ” नी टीका
“ कपच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्ध ” जणावी स्पष्ट कहे
छे के-सपूर्ण जैनागम आठ प्रवचनमातामा अर्थाहित होवायी
एटले जैनागम आठ प्रवचनमाताना आधारे ज जीवे छे, माटे
विद्वानोए आ जैनागमनी पण त्रण कोटिथी कप, छेद अने
तापद्वाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय्य गणाय वाह्य-आ-
भ्यतर आचारने दर्शावनार एवा मूल स्थभभूत प्रवचन-सिद्धा-
न्तनी कसोटी कर्या विना आचारोनी कसोटी क्यायी थाय ?
अतएव अत्र टीकाकार तेनी परीक्षा करवा “ त्रिकोटिपरि-
शुद्ध ” ए पदनो उपरोक्त अर्थ जणाव्यो छे एटलु ज नहीं किन्तु
भगवदपणे सुबो करे छे निदान के-आगम एटले सर्वज्ञनु वचन
'अने तेनी यथास्थित परीक्षा यवायी तदुक्त आठ प्रवचनमा-
तानी स्वतः परीक्षा थइ गइ, कारण के-सर्वज्ञवचनरूप प्रवचन
आज्ञायी ज साधुओ वर्तन-क्रियामात्र करे छे.

“ कपशुद्धि ”

कप, छेद अने तापनु स्वरूप एतत् प्रयकर्ता “ धर्म-

विदुः ” मा आ रीते ज्ञावे छे, जे परीसकोने बहु उपयोगी
 तथा ध्यान राखवा योग्य छे “विधिप्रतिषेधौ कप इति”
 विधि तथा प्रतिषेध ते कप. मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिमा हेतुभूत
 जे कार्यो तेने दर्शानार वाक्यो ते विधिव्वाक्यो, जेवा के-
 “ आस च हृद च विर्गि च धिरे ” धीर पुरुषोए आशा
 तथा मोहनो त्याग करवो जोइए, “उदाहु वीरे अल्प-
 मादो महामोहे ” वीरप्रभु कहे छे के-महामोहयी अप्रमादी
 सावधान रहो, “ सव्यामगध परिण्णाय षिरामगधो
 परिब्वए ” (आचाराग) सर्व भावोने छोडी निर्मोही
 यइने विचरो एव दान देबु, तप करवो, पाच समिति
 तथा व्रण गुप्तिए शुद्ध चारित्र पालबु-आ सर्व विधिवान्यो
 जाणवा फरी जे करवायी पापवध थाय, आत्मानु अहित थाय
 तेवा कार्योना निषेधदर्शक जे वाक्यो ते प्रतिषेध वाक्यो
 जाणवा, जेवा क-“ रागदोसकसाएहिं इदिएहिं य
 पचहिं । दुहा वा मोहणिज्जेण अट्टा ससारिणो
 जिया ” राग-द्वेष अने कपायथी, पाच इन्द्रियोथी तथा वे प्र-
 कारना मोहयी ससारी जतुओ दु खी थाय छे, अतएव तेनो
 त्याग करवो जोइये पुन “ आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे
 प्रियाप्रिये । चिंतयन्नात्मनोऽनिष्टा, हिसामन्यत्र
 माचरे ” ॥१॥ जेम स्वात्माने सुख तथा दु ख प्रिय अने अप्रिय
 लागे छे तेम सर्वात्माओ सगथे समजी पोताना आत्माने अनिष्ट
 एवी हिंसा अन्य आत्मानी विद्वाने न करवी, तेमज सुठ न

बोलवु, चोरी, मैथुन न करवा विगरे आ सर्व प्रतिपेय वाक्यो जाणवा. आ रीतना विधि, निपेय वाक्यो जेमा होय ते कपशुद्ध जाणवा. सोनानी परीक्षा करवा माटे प्रथम तेनी कमोटी पर आरु आपी शुद्धि कराय छे, एव जे घर्मशास्त्रमा आ उभय वाक्यो कर्तव्यनो उपदेश अने अकर्तव्यनो त्याग उपदेशता होय ते ज शास्त्र कपशुद्ध जाणवु; परतु जे शास्त्र हिंसा आदि पाप-कर्मना त्यागना बदले कर्तव्यनया कथन करे ते शास्त्र आ कप शुद्धिमा आर्षी शक्रे नहीं अतएव ' यज्ञमा हिंसा कर्तव्य छे ' एम स्पष्ट प्रतिपादन करनार वेदादि अने विषयकपाय आदिनी पुष्टि करनार पुराणादि शास्त्रो कपशुद्ध कर्षणी सभने ?

“ छेदशुद्धि ”

कपशुद्धि बाद छेद तपासवा जोइए “ तत्सम्भवपाल-नाचेष्टोक्तिश्छेद इति ” ज्या विधि, निपेयनी सभावना, पालन तथा वर्तनमा मूकवानु जणाव्यु होय ते छेद कथो छे. घण्टीवार सुवर्ण कसोटी पर वरानर शुद्ध देखाय छे छता पाळलयी तेमा भेद नीकली आये छे, माटे परीक्षको सोनाने कापीने तेना अदरना भागनी परीक्षा करवा चूकता नथी. ए ज रीते शास्त्रोमा विधि, निपेय उभय वाक्यो दर्शान्या होय, किन्तु ते प्रमाणो करी शक्या के नहीं, तेनु पालन करवु जोइए विगरे विषयो गुप्त राख्या होय अगर न जणाव्या होय या तो करवानु अन्यथा प्रकारे दर्शान्यु होय एदले उपदेश अने

वर्तन बन्ने जूटा जूटा दर्शाव्या होय तो ते शास्त्र कपशुद्ध न
 होवारी म्बीकार्ये नथी; बल्के सर्वथा हेय जाणतु अतः कप-
 शुद्धि पछी शास्त्रना धातरभागनी परीक्षा करवा छेदशुद्धि-
 द्वाराए मुमुक्षुओए अवश्यमेव चिकित्सा करवी जे शास्त्रमा
 विधेयवाक्यो अने निषेधवाक्यो कद्या पछी तेनी पुष्टि माटे
 विविध प्रकारनी बाह्य पवित्र क्रियाओ कयन करी होय,
 तेने पाळवाना विविध प्रकारो दर्शाव्या होय, अथवा जेधी
 विधेयवाक्यो अने निषेधकवचनोने जोर मळे तेवा विषयो
 जेमा अच्छी रीते वर्णाव्या होय तो ते शास्त्र छेदशुद्ध कही
 शक्य जेपरु-विधेयमार्गमा दान, तप, स्वाध्याय विगेरे
 कद्या छे, तो तेना पोषण माटे जैन सिद्धान्तमा दानतु स्वरूप,
 भेदो अने फल दर्शावी तथाप्रकारे करवानो उपदेश आपी
 तेना पर अनेक दृष्टातो म्ही पोषण कर्युं छे एव तपतु स्वरूप,
 द्वादश भेदो, तेतु फल अने तेने आचरणमा मूरुवानो उपदेश
 आपी सुद महावीर भगवानना दृष्टातथी पुष्टि करी छे स्वा-
 ध्याय विगेर माटे पण तथाप्रकारे ज प्रगाढरीत्या उपदेश
 कर्यो छे, एतु ज न्ही किन्तु साधु अने गृहस्थना ततो, क्रि-
 याओ, अतिचार, अनाचार दर्शावी विप्रवादने घणा जोरथी
 पोष्यो छे ए ज रीते निषेधक वाक्योधी मोहत्याग, कपापत्याग,
 हिंसा, झूठ आदिनो निषेध करी आ पापोना त्याग माटे भिन्न
 भिन्न क्रियापथो दर्शावी पालनता-कर्तव्यता पर बहु बहु जोर
 आपी अनेक दृष्टातो कद्या छे. अतः आ रीतना जे शास्त्रो ते

कष तथा छेदशुद्ध जाणवा, ज्यारे अन्य शास्त्रोमा तेवी प्रगाढ क्रियाओ दर्शावी नयी.

“ तापशुद्धि ”

कष तथा छेदे करीने वने रीते सुवर्ण सिद्ध थयु होय तो पण विशेष शकाने दूर करवा तेना मिश्रभागनी परीक्षा करवा करी बुद्धिमान सराफो तेने ताप आपी-अग्निमा तपावी अच्छी रीते निहाळे छे एटले जो सुवर्ण अग्निमा नारया पछी ते पोतानो असल रग तथा स्व-स्वरूपनो त्याग न करे तो ते खरु कचन कहेवाय, अन्यथा ते सुवर्णपणाना मूल्यने स्लायक न गणाय, कारण के साचु सोनु सर्वदा एक ज रूपमा रहे छे तथापकारे शास्त्र पण कष, छेद उभय रीते शुद्ध नीकन्या पछी तेना आतरतत्त्वनी ययार्थ परीक्षा करवा तेनी तापद्वाराए शुद्धि निहाळवी ए उचित्त ज गणाय. तापनु स्वरूप आ रीते जाणवु “ उभयनिबधनभाववादस्ताप इति ” उपर जणावेल कष अने छेद उभयना आधारभूत अने परिणामी कारणरूप जीवादि पदार्थोनी यथास्थित ले व्याख्या तेनु नाम ताप, कष तथा छेदनी साफल्यता तापनी शुद्धि पर अवलकी रह छे, एटले तापनी सफलतामा कष-छेदनी सफलता समजवी. एव शास्त्रमा विधि, निषेधवाक्यो दर्शान्या होय, विविध बाह्य क्रियाओ पण कही होय तदपि आ सर्वना आधारभूत आत्मा विगेरे तत्त्वनु स्वरूप एकदेशीय अ-यवा सदोष प्रकार्यु होय तो उपरोक्त वने फलशून्य समजवा.

परमार्थ ए के-सर्व बाह्य, आभ्यन्तर व्यवहारनो मूल आधार जीव, कर्म, जगत् विगरे पदार्थोनी शुद्ध-निर्दोष मान्यता पर रह्यो छे अतएव आ पदार्थो अनादि अकर्तृक अने नित्यानित्यत्वरूप धर्मवान् ए रीते ज्या प्ररूप्या होय अर्थात् आत्मा, कर्म, जगत् आदि पदार्थो द्रव्यास्तिक नयनी मान्यतामा नित्य अने पर्यायास्तिक नयनी मान्यतामा अनित्य, एव उत्पाद, व्यय अने स्थितिरूप धर्मवान् छे-आवु सुदर अवाध्य स्वरूप ज्या वर्णव्यु होय ते शास्त्रने तापशुद्ध विद्वानो समजे छे-आत्मा आदि पदार्थो कचनकुभना दृष्टाते नित्यानित्य धर्मवान् छे ए वात वरावर गळे उतरे तेवी छे कचनकुभ फुटी जवाधी तेना कुडल के कडा विगरे बनाव्या तदपि कचन तो कायम ज रह्यु, मात्र कुभ आकारनो नाश अने कुडलादि आ कारनी उत्पत्ति थइ, एव आत्मा पण अमुक गति अपेक्षया नाश अने उत्पन्न घाय छे ज्यार आत्मत्वरूपेण सर्वत्र विद्यमान ज रहे छे आ स्थितिमा प्रथम कहेल विधि, निषेधवाक्योनी साफल्यता तथा विविध क्रियाशोनी साफल्यता अच्छी रीते बनवा सभव छे, परतु एमान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य आत्मवादमा सर्व क्रियाओ, उपदेशो अर्थशून्य-अरे । छार पर लिपण जेवा समजवा, माटे विद्वानो तापशुद्धि, कपशुद्धि अने छेत्शुद्धि कर्या पछो ज समुचित रीते करे छे बसकप, छेद अने तापरूप त्रिकोटिये शुद्ध जे शास्त्र ते ज परिशुद्ध जाणवु, अतः तदुक्त आज्ञाओ ज हितार्थोने शिरसावध गणाय.

“ उपसहार ”

अर्हो आ त्रिकोटिशुद्ध सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य क्यु
शास्त्र होय ? ए रीते प्रणे परीक्षामा सर्वज्ञ भगवत महावीरनु
वचन असाधित सिद्ध यत्रापी तदुक्त आठ प्रवचनमाता पण
नितान्त शुद्ध, अत्राध्य जाणवी; माटे साधुए ए रीतनी निर्दोष
आठ प्रवचनमाता अहोनिश अवश्य पालन करवी, ए प्रमाणे
उपदेशके मयममुद्धि लोकोने उपदेश आपरो. क्युमा उपदेशके—
“ अमीपामान्तरदर्शनमिति ” आ कप, छेद, तापमा
मुष्ट्य कोण कोण ? समर्थ, असमर्थ कोण ? परस्पर भिन्नता
केटली ? विगेरे जरूर समजाववु

“ त्रिधा हितकारी ”

फरी मुनियोनो आचार उपदेशके “आद्यतमध्ययो-
बैर्हितदं” आदि, मय अने अन्तमा हितदायी एवो आ
आचार छे एम जणाववु पटले ईर्यासमिति विगेरे साधुओनो
आचार आदि, मध्य अने अन्तमा हतु, स्वरूप तथा अनुबंधे
फरी सर्वथा परम्पविन्न निर्दोष दर्शाव्यो छे प्रथम तो साधुने
जीवोनी दया-रक्षा अर्थे अने दुष्ट कार्यो बध करवा माटे ईर्या-
समिति आदि पालन करवातु जणाव्यु छे, माटे आ आचार
हेतुरूपेण निर्दोष जाणवो. पर ईर्यासमिति आदि स्वयं
जीवोनी रक्षा-दयारूप होवायी स्वरूपेण निर्मल जाणवो.
ईर्यासमिति आदि समितिमा अहोनिश सावधान मुनिने कदापि

अशुभ-अपवित्र विकृत्यो उद्भवता नथी, बल्के सर्वदा सद्दि-
चारो ज बन्या रहे छे अतएव आसमितियो कर्मनिर्जरा अथवा
शुभकर्मनो ज बध करी भविष्यमा सुदर फल अर्पण करे छे,
माटे आ मुनि-आचाररूप अष्ट प्रवचनमाता अनुबधरूपे पण
शोभन कल्याणावह ज जाणवो परमार्थ ए के-हेतु, स्वरूप अने
अनुबधरूप त्रिधा हितकारी एवो मुनियोनो आचार जाणवो

“ धीजी व्याख्या ”

अथवा टीकाकार “ आद्यत० ” आ पदनी टीका आ
प्रमाणे करे छे—“ वयसो जीवितव्यस्य वा हितदमु-
पकारि ” उपरोक्त साधु आचार जावननी प्रत्येक अवस्थामा
हितकारी-उपकारी थाय तेवो छे एटले प्रथम दर्शावेल मुनि
आचाररूप अमृतपान घाल, युवान के वृद्ध कोइ पण वयमा
देवामा आवे तथापि सर्व वयमा तुल्यरूपे उपकारी, अजर-
अमर फल अगादरीत्या अर्पणार बने छे पुन, प्रकारातरे
टीकाकार कह छे के—“ वयनी आदिमा सूत्रादिनो अभ्यास,
मध्यवयमा अर्थश्रवण अने अत्यावस्थामा धर्मध्यानादि
द्वाराए जणे वयमा आ मुनि-आचार हितकारी थाय छे ”
अर्थात् चारित्र ने जीवननी जण अवस्था पैकी कोइ पण
वयमा स्वीकाराय अने तेथी जे जे वयमा चारित्र स्वीकार्यु होय
ते ते वयमा तत् तत् वय योग्य कर्मद्वाराए स्वीकारनार आत्मा
पोतानु अवश्य कल्याण करी शके छे निदान के-अमुकज

व्ययमा चारित्र स्वीकारी शक्याय एवु अमुक ज व्ययमा चारित्र पोतानु फल अर्पण करे छे तेवो एकान्त नियम अर्ही नथी अतएव प्रथम १२ वर्षमा सूत्राभ्यास, पछी १२ वर्षमा अर्थाभ्यास अने पश्चात् १० वर्षपर्यंत विहार करी गिण्यादि निष्पत्ति एटले आचार्यपद योग्य थाय आम जे विशेषावश्य-कमा दर्शाव्यु छे, ते पण लेने प्रथम व्ययमा चारित्र स्वीकार्यु होय अने आयुष्य दीर्घ तथा बुद्धि तीक्ष्ण होय तेने माटे, अथवा व्य गमे ते होय छत्ता क्षयोपशमादि तीव्र होय तेने माटे आ नियम सुमत्रद्वरीत्या पाठकोए घटात्रो-आणवो. आयी उपरोक्त कथनमा पण कांइ बाध नहीं आवे

“ उपाध्यायजीनु कथन ”

उपाध्यायजी महाराज “ आद्यत० ” ए पत्नी टीरामा साधु आचार माटे “ आवीलए निष्पीलए इत्याग-मात्तदचिरोधि अल्पमध्यमविकृष्टतपोविशेषरूपैर्वा हितद भवति ” मलिन कपडु सामान्य मर्दन, विशेष मर्दन करवाथी सामान्य, विशेष रीते विशुद्ध वने छे, एव कर्मावृत्त आत्मा पण अल्प, मध्यम अने उत्कृष्ट तपस्या करवाथी विशुद्ध विशुद्धतर थाय छे. परमार्थ ए छे के-सयम स्वीकार्या पछी जेम मुनि-आचारमा आठ प्रवचनमातानु पालन करवानु कहु तेम आत्मानी विशुद्धि माटे जवन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट तप पण शक्ति अनुसारे करवो उचित छे. एटले ए रीते तप अ पेक्षाए पण मुनि-आचार आदि, मध्य अने अन्तमा सर्वथा

कल्याणकर्त्ता बने छे. साराश के-दरेक प्रकारनी जुदी जुदी व्याख्यानों सार पटलो ज के मुनि-आचार मातृवत् एकान्त हितकारी जाणवो.

“ समाप्ति ”

सत्सेपमा-अर्धी पर्यंत दर्शविल मुनि-आचारनी व्याख्या मध्यमवर्ग पासे उपदेशके करवी, केमके ते लोको बहु रीते मुनियोना उपरोक्त आचारो तरफ अधिक ख्याल राखे छे. पटले आ आचारो श्रवण करी धर्मभ्रद्दामा तेओ बहु मकम थाय तयारपछी तेओने आगमतत्त्वनु स्वरूप समजावी युध योग्य अवस्थामा आरूढ थाय तेम आचार्ये करवु शास्त्रीय गणाय. निदान के-मध्यमवर्गनी कोटीमा ज रहे ते काइ उप देशनु फल पर्याप्त न गणाय.

उपर कहेला मुनि आचार माटे ज बहु खुलासो करता ग्रथकार आठ प्रवचनमातानु पालन करवानो स्पष्ट उपदेश दर्शावे छे—

अष्टौ साधुभिरनिश मातर,

इव मातर. प्रवचनस्य ।

नियमेन न मोक्तव्या ,

परम कल्याणमिच्छद्भिः ॥ २-८ ॥

मूलार्थ—परम-उपमातीत कल्याण-सुखना इच्छक एवा

मुनियोए हितवत्सलमातानी तुल्य अष्ट प्रवचनमातानी नित्य सेवा करवी; निश्चयतया कदापि तेनो पद्मव छोडवो नही

“ तीर्थभूतमाता ”

स्पष्टीकरण—आ आर्यामा आचार्यश्री आठ प्रवचनमातानी सेवा करवानो उपदेश जणावे छे आठ प्रवचनमातानु स्वरूप आगलनी आर्याना चित्रणमा विस्तारयी दर्शावी गया. आ आठ प्रवचनमाताने महर्षियो मातानी उपमा आषी तेनो मातृत्वपणे निर्देश करे छे. उपकारण जनो मातानी सेवा एक क्षण पण विसरता नही, कारण के माता जन्मदाठ, पालनकर्ता अने हितकर्तृ होवारी अतुलित-अप्रतिकार्य-अनय उपकारिणी शास्त्रोमा कही छे. अतएव उत्तमजनो तेनी सेवा करवामा ज पोतानु सुख, यश, प्रतिष्ठा, इतिकर्तव्यता समजे छे एदले “आतीर्थभिवोत्तमानाम्” “तीर्थनी माफरु यावत्जीवन भक्तिपूर्वक आराध्य मानी उत्तम पुरयो मातानी सेवा करे” ए उक्तिने चरितार्थ कर छे. निदान के-माता माटे भक्तियी पोताना प्राणो समर्पिने पण जीदगीनी अतिम क्षण पर्यंत जेओ सेवा करे ते ज उत्तम पुण्य जाणवो.

“ प्रवचनमातृत्व-तत्सेवा ”

अही लौकिक आराध्योमा माता जेम उच्छृष्ट आराध्य मानी छे, परतु तेनी समान अन्यमां तेवा गुणो न होवारी अन्यने तथाप्रकारे आराध्य मानेल नही. एव लोकोचर क्रियातएवमा

आठ प्रवचनमाता मातृवत् गुणधारिका होवाची महर्षियो तेने माता कही सपूर्ण आरायतया उपदेशे छे, अर्थात् जन्मदातृत्व, पालनकर्तृत्व तथा शिक्षादातृत्व गुणो तेमा पण छे प्रवचन-सिद्धान्त तेने जन्म आपनार, ईर्यासमिति आदिमा उपयुक्त मुनि ज सिद्धान्त-तत्त्वने पापी शक सिद्धान्तनो अभ्यास, स्वाध्याय विगेरेनौ अधिकार आठ प्रवचनमातामा अनुपयुक्त मुनिने निषेधो छे निदान के-सिद्धान्तना अभ्यासची जे कल्याण सधातु जोइए ते कल्याण अनुपयुक्त मुनि सिद्धान्तनो अभ्यास करवा छता पण साधना असमर्थ वने छे अतएव आ माताने प्रवचनजन्मदाता महर्षियोए कही एव उत्तरकालमा प्राप्त सिद्धान्तज्ञान अने सद्-वर्तन तेनु पालन तथा पोषण अधिकाधिक आ माता ज करे छ अने क्रमश शिक्षाओ अर्पी उत्तरोत्तर उपाध्याय, आचार्य आदि पदोना अधिकारो पर लइ जइ उच्च स्थाने आत्माने आ माता ज बीराजमान करे छे परामर्श पटलो ज के-आ माता पोताना पुत्रने दुख-क्लेशोची बचावी ले छे तथा अपमार्गची सर्वदा दूर ज राखे छे, माटे उपकारः पुत्रोनु ए प्रधान कर्त्तव्य छे के मातानो यत्किंचित पण अनादर न करवो जोइये, तो दुःख के क्लेशनी तो बात ज क्या रही ? फरी माताना क्लेशची पुत्रने क्लेश अने माताना नाशची पुत्रनो पण परिणामे नाश याव छे एव ईर्यासमिति आदिनो क्लेश उप-जाववाची अथवा नाश करवाची प्रवचन आझारूप पुत्रनो पण नाश ज याव, माटे उक्त कल्याण इप्सु (इच्छनारा) मुनियोए आ

मातानी प्रतिक्षणं सेवा करवी, किन्तु एक क्षण पण तेने विसरवी न जोइये, कारण के आ मातानी सेवा करवायी परमार्यनया सर्वज्ञनी वरावर सेवा करी गणाय अन्यया प्रभु आज्ञानो लोप कर्यो मानवो एम भगवत पोकारी पोकारीने जणावे छे

ए रीते 'मयममुद्धि' ने उपदेश आप्या पछी, अन्तमा आ प्रमाणे उपदेश जरर करवो—

एतत्सचिवस्य सदा साथो—

नियमात्र भवभयं भवति ।

भवति च हितमत्यत्,

फलदं विधिनाऽऽगमग्रहण ॥ २-९ ॥

मूलार्थ—पूर्वोक्त आठे प्रवचनमाता सहित नित्य वर्न नार मुनिने निश्चयथी ममारनो भय होतो नथी अर्थात् ससारनो नाश थाय छे, एव भविष्यमा पण अतिशे आत्मानु हित-कल्याण थाय छे ने विधिपूर्वक आगमज्ञान पमाडवारूप फल अर्पण करे छे

“ प्रवचनमातानी सेवानु सर्वोत्तम फल ”

स्पष्टीकरण—पुण्यकामना अर्थे उत्तमजनो कदापि माताने अलग करता नथी, कारण के तेरा वर्तनमा ज पोतानु श्रेय तेओ समजे छे, एटले तेओने अपयश आदिनो भय उपजतो नथी. एव अर्हा पण दृष्टात समन्वय करता आचार्यश्री संक्षेपमा उपसहार करी जणावे छे के-जे मुनि आ आठ प्रवचनमानानी

ब्राह्मणो लोप करता नहीं, कोई पण क्षणमा आ मातानी सेवा
 विसरता नहीं, प्रतिघणो "जय चरे जय चिह्ने०" "जयणाथी
 चालवु अने जयणाथी बेसवु" ए महर्षिपूज्य ब्राह्मणे शिरो-
 धार्य करी, ईर्यासमिति आदिमा सोपयुक्त रही अहोनिश वर्तन
 आचरे छे, तेओने भवससारनो भय रहेतो नहीं-अर्थात् आ
 मुनियोने चतुर्गतिना दुःखनो लवलेश जेटलो डर होतो नहीं
 कारण क-तेओनी शीघ्र मुक्ति ज याय छे. ठीक ज छे के-
 जेओ अन्य प्राणीने स्वात्मवत् देखी एक रोममात्रमा पण
 पीढा न याय अने आत्मा अशुभ पापरूपनो बधक न वने,
 आत्मा एक रोममा पण अशुभ विचार के प्रवृत्ति न करे तेवी
 अलौकिक उदार-पवित्रतम अप्रमत्तभावना धारे-आचरे छे,
 तेओनी शीघ्र मुक्ति ज याय अतएव दशवैकालिकमा महर्षि-
 पूज्य शम्भुभवसूरि महाराजे कछु ते उचित ज छे -"सव्व-
 भूयप्पभूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ । पिहिया-
 सयस्स दत्तस्स, पाव कम्म न धधइ" ॥ १ ॥ "कोई
 पण जीवने दुःख न उपजावतो अने सर्वने स्वात्मवत् देखनार
 तथा आश्रवणे रोकनार अने इन्द्रियोनो नियम करनार एवो मुनि
 फराने पापरूपने धारतो नहीं" वधुमा अही मूलकर्ता भार दइने
 कहे छे क-'नियमात्' निश्चयथी भवनो भय रहेतो नहीं,
 एतले नितान्त-अशासयेन भवनो नाश याय छे.

“ उपसहार ”

फरी भविष्यमा आ मुनिनु अत्यत हित-उत्कृष्ट
 कल्याण ज याय छे परमार्थ ए के-सोपयुक्त मुनिने

आ जन्म के अपर जन्ममा अनिष्ट अपायो आवता ज नयी. एव ईर्यादिसमित्तवान् होवार्थी विनय, वैयावच्च, भक्ति, सरलता, नम्रता आदि गुणो जरूर होय, एटले आचार्य, उपाध्याय आदिनी समीपे सूत्रवाचनादि महलीमा बेटवानो पूर्ण अधिकार आ मुनिने यथेष्टपणे प्राप्त थाय छे, जेथी सिद्धान्तज्ञान सुखपूर्वक उपलब्ध थाय, माटे आवा मुनिने आगमज्ञाननी प्राप्तिद्वारा पण आठ प्रवचनमाता फलदाठ अवश्यमेव बने छे निष्कर्ष एटलो के—ईर्यासमिति आदिमा सावधान मुनिने ज आ सूत्रादिनी वाचनामहलीमा बसवानो अधिकार कथो छे अर्ही आचार्यश्रीए 'मध्यवृद्धि' जन योग्य उपदेशविधिनो उपसहार करी अन्तमा आठ प्रवचनमातानु बराबर पालन करवानु पर्याप्त फलनो निर्देश ए रीते कर्यो परमार्थ के—उपदेशके ए रीते 'मध्यमवर्ग' पासे आठ प्रवचनमातानु अवसान फल पण अवश्य जग्यावतु."

गत आर्या श्लोकमा आठ प्रवचनमाता—पाळक मुनिने आगमज्ञाननो अधिकारी कथो आगमज्ञान गुरुमहाराजना हृदयमा ज विराजित होय छे, माटे 'मध्यमवर्ग' ने आ उपदेश पण साथे साथे उपदेशके करयो—

गुरुपारतंत्र्यमेव च,

तद्बहुमानात्सदाशयानुगतं ॥

परमगुरुप्राप्तेरिह बीज,

तस्माच्च मोक्ष इति ॥ २-१० ॥

मूलार्थ—गुरु पर आतरनी भक्तिपूर्वक तेमना आशयने अनुलक्षी ते प्रमाणे वर्तन करखु—तेओनी आज्ञाने आधीन ज रहेतु ए ज परमेश्वर प्राप्तितु मुख्य बीज छे अने तेनाथी ज मुख्यतया मोक्षप्राप्ति आत्माने कही छे

“ गुर्वाधीनता ”

स्पष्टीकरण—अर्हां प्रवचनज्ञान प्राप्त करवा मुनिये मयम तो गुर्वाधीन रहेतु जोइये, ए तच्च आचार्यथी दर्शाने छे. अर्थात्—जेने आगमज्ञान, तेनु मौलिक तच्च प्राप्त करखु होय तेणो अक्लमा तो तेवा ज्ञानवान् गुर्वादिकोनी सर्वस्वनो भोग आपीने पण सेवा करवी जोइए टीकाकार कहे छे के—आ गुरुदेव सिवाय मारो ससारभय कोइ दूर करनार नथी—ए ज तरणतारण एक जहाजरूप छे, ए भावना हृदयमा अंकित करी—रोमेरोममा प्रतिबिंबित करी तेमनी सेवा करवी एतावन् मात्र नही किन्तु गुरु चित्त परीक्षी (जाणी) तेमना आशयनु अनुसरण करखु, चेष्टा के क्रिया विशेषथी तेमना हृदयनो भाव जाणी लेबो अने ते प्रमाणे वर्तन करखु तेओना पर सरल आशयथी अद्भूत भक्ति धारण करवी, बहुमान, विनय, सेवा, आसन अर्पण करखु, उमा ययु, सामे जतु, पादप्रक्षालन, वैयावच्च विंगेरे भक्ति मनसा, वाचा अने कायाथी करवी दुकमा गुरु आज्ञार्थी ज सर्व वर्तन करखु, किन्तु मोक्षार्थीए स्वतंत्र के स्वेच्छारी वर्तन न करखु जोइये “ आणाए चिय चरणं तन्भगे जाण किं न भग्गति । आणव अइकतो क-

स्साएसा कुणइ सेस ” ॥ १ ॥ “ भगवाने आज्ञा आरा-
धनमा ज चारित्र कष्ट छे. आज्ञानो लोप थवा पछी शु वाकी
रहे एटले चारित्र क्याथी रहे ? जेणे गुरु आज्ञाने अतिक्रमी ते
हये कोनी आज्ञा आराधे ? अर्थात् ते कोइनी पण आज्ञा माने
नहीं ” फरी सर्व तत्त्वज्ञान, चारित्रनु खास रहस्य, आगम
पेटीनी चावी, विद्या अने मत्रोनी सिद्धि, धर्मनु गूढ तत्त्व-ए
सर्व गुरु आधीन होवायी मोक्षार्थीए खास करीने गुर्वांगीन ज
पोतानु जीवन व्यतीत करवु, एटले गुरुपादसेवामा ज जीवन
चरितार्थ करवु जेथी सर्व सिद्धियोपूर्वक आगमनु गूढ रहस्य
त्याथी बराबर उपलब्ध थाय अने परिणामे कल्याण प्राप्ति पण
यइ शके “ णाणस्स होइ भागी, धिरघरो दंसणे
चरित्ते य । धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवास न
मुचति ” ॥ १ ॥ एव आ अनतससारना दुःखनो नाश
करनार अने मोक्षदर्शक गुरु सिवाय आ भूतलमा कोई नथी,
एवु धारी तेओने आज्ञाधीन रहेवाथी तेओनी परमकृपामय
प्रसन्नता प्राप्त थाय छे. गुरु प्रसन्नता पासे जगज्जना तमात्र पदार्थो
तुच्छ जेवा भासे छे. गुरुकृपा ए ज परम प्राप्तव्य तत्त्व छे
आ तत्त्व ज परमगुरु-जे परमेश्वर तेनी प्राप्तितुं मुख्य बीज छे.
एटले गुरुकृपा फल्या पछी परमेश्वरनी कृपा विनाविलवे
हायमा आवे छे. परमार्थ के-जेओ गुरु आज्ञा आराधक होय
तेओ अवश्यमेव प्रभु आज्ञानु पालन करे छे. अने जेणे गुरु
आज्ञा लोपी तेणे प्रभु आज्ञानु पण अवश्य खुन कर्तुं जायवु,
माटे अही गुरु पराधीनताने ईश्वरप्राप्तिनु मुखेप अग कष्ट छे.

निदान के—छेवटे तेनाथी ज तेने मोक्षप्राप्ति याय छे निष्कर्ष
 पटलो ज के—मुनिये गुरु आज्ञाधीन रहेवु, गुरुकुमा वास करवो,
 तेनाथी ज परमेश्वरनी प्राप्ति अने छेवटे मोक्ष याय छे ए रीते
 उपदेशके 'मध्यमबुद्धि' वर्गने उपदेश आपवो

आ रीते गुर्वाधीनता जणावी छेवटमा 'मध्यम०' योग्य
 उपदेशनो उपसहार दर्शावी अइधी आर्याथी आचार्यश्री 'बुध'
 योग्य उपदेशविधिनी प्रस्तावनानो उल्लेख करे छे—

इत्यादि साधुवृत्त मध्यमबुद्धे

सदा समाख्येयम् ॥

आगमतत्त्वं तु पर बुधस्य,

भावप्रधानं तु ॥ २-११ ॥

मूलार्थ—पूर्व दर्शाव्या प्रमाणे साधुओनु सद्बर्तन—
 सुदर आचरण, क्रियाकृतलता उपदेशके निरतर 'मध्यमबुद्धि'
 वर्ग पासे कयन करवु, अने 'बुधवर्ग'ने तो रहस्यप्रधान
 आगमतत्त्वनो ज उपदेश आपवो

“ उपसहार ”

स्पष्टीकरण—अत्र ग्रयकर्त्ता पूर्वभागमा 'मध्यमबुद्धि'
 योग्य उपदेशविधिनी उपसहार दर्शावे छे ने उत्तरार्धधी
 'बुध' योग्य उपदेशनो प्रस्ताव करे छे. आ, श्लोकनो भाव

स्पष्ट ज छे एटले तेनो विस्तार करवो ए ग्रथना फलेवरने वधारवारूप ज थाय दुक्का आचार्यश्री कहे छे के—अमे पूर्वे जे ' मध्यमबुद्धि ' माटे ईर्ष्यासमिति आदि आठ प्रवचनपातानु स्वरूप दर्शावी तेनु पालन करवानु जणाव्यु, सिद्धान्त-तत्त्व ग्रहण करवानी योग्यता दर्शावी, गुराधीनता, गुरुआज्ञाग्राह्यता विगेर उपदेशविधिनो प्रकार दर्शाव्यो तेना पर उपदेशके वरावर ध्यान आपी तदनुकूलपणे तथाप्रकारनो उपदेश ' मध्यमबुद्धि ' ने हमेशा कयन करवो एटले सम्यगूरीत्या साधु-ओनु सव्वर्तन जणाव्यु, जेना श्रवणथी आ लोको धर्मकार्यमा अधिक श्रद्धालु वनी परिणामे बुझनी कोटीमा दाखल थाय अर्थात् उपदेशकनी उपदेशकशक्तता त्यारे ज प्रशस्यतर गणाय के उपारे श्रोता उपदेशबलथी स्थापित श्रद्धामा मजजृत रही अधिक धर्मरचिपणु अने तत्त्वज्ञमति प्राप्त करे, उस अर्ही ' म यम ' योग्य उपदेशविधि ग्रथकर्त्ता समाप्त करे छे

“ उपक्रम ”

एटले अम प्राप्त अने बुझनी कोटीमा आवेळ मध्यमजनो जेनी अभिलाषा करे एवा बुध योग्य उपदेशनी आचार्यश्री प्रस्तावना करे छे, ' आगमतत्त्वना प्रेमी अने हमेशा आगम-तत्त्वनी ज शोधमा, परीक्षवामा लीन होय ते बुध ' था लक्षण ग्रथकर्त्ता आगल जणावी गया छे अतएव आ लोकोंने उप-देशके आगमतत्त्वनो उपदेश आपवो एटले आगमनु खरु रहस्य

कथन करखु आगमतत्त्व “आत्माऽस्ति स च परिणामी०” ए ऋत्लोकधी अथकार प्रथम प्रकरणमा जणावी गया छे ते ज तत्त्व अर्ही ‘बुध’ वर्गने उपदेशबु, अने बघुमा प्रवचननु मौलिक रहस्य दर्शावबु जे हने पछी अथकर्ता जणावे छे. मूलमा जे ‘तु’ शब्द छे ते एवकार अर्थमा होवापी निश्चयेन पूर्वोक्त ज तत्त्व विगेरे कथन करखु.

“ दर्शित सपथवालो बुध योग्य उपदेशनो प्रकार आचार्यश्री दर्शावे छे ”

वचनाराधनया खलु

धर्मस्तद्वाधया त्वधर्म इति ॥

इदमत्र धर्मगुह्य

सर्वस्व चैतदेवास्य ॥ २-१२ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ प्रवचनोक्त वचन—आज्ञानु आराधन—आज्ञानु कूल वर्तन करखु ते ज सत्यधर्म अने तेनी विराधना—प्रतिकूल वर्तन आचरखु तेज अधर्म जाणवो अत्र सर्वज्ञागममा ए ज धर्मनु गूढ रहस्य छे ने ए ज धर्मनु मुरय सर्वस्व सार छे, आ सिवाय धर्मनु अन्य काइ तत्त्व नथी.

“ बुध-देशना ”

स्पष्टीकरण—अर्ही ‘वचन-आगम’ वचन एटले आगम सिद्धान्त-प्रवचन, अने बुध एटले पढित-तत्त्व ए अर

खास लक्ष्यमा राखवा. बुध तेज जाणवो के-जे उपरनी बनावट
 अथवा तथाप्रकारनी विशिष्ट क्रियाना वेशना आढंवरधी न
 रगाय, किन्तु साचा झवेरीनी माफक पाणीदार हीरा-मोतीनी
 परीक्षा करे-स्वीकारे अतः बुधजन उपरनो पेश देखी राजी
 न थाय, ते तो यशविडम्बकोमा पण छे एव उत्कृष्ट त्याग,
 वैराग्य के क्रियाओ देखीने पण सुश न थाय, ते सर्व
 जमाली, गोशालो के निहवोमा पण हती, होय छे, किन्तु
 क्रिया अने वेश साथे प्रभुना वचननो आदर, प्रेम तथा भक्ति
 केटली छे ? ते ज तपासे छे ने तेनाथी ज मुग्न बने छे, कारण
 के पूर्वे कदा ममारो विधि-निषेधनु प्रतिपादन करनार जे
 सर्वज्ञ भगवतनु आगमरूप वचन तेनी आराधना करवी ते ज
 मौलिक धर्म क्यो छे भावार्थ एटलो के-आगमानुसारी
 आगमन्शित मार्गमा प्रवृत्ति करवी, आगमना एरु वाक्यने पण
 बाध न आतै तैम हेयनो हेयरीत्या जाणी परित्याग करवो अने
 उपादेयनो उपादेय जाणी आदर करवो ते ज परमार्थ धर्म
 जाणवो अर्थात् उत्कृष्ट क्रियानी आराधना अने उत्कृष्ट तप
 के चारित्रनु पालन आत्मा सर्वज्ञना एरु वचनधी पण उलटो
 चाली कर, तो ते पलालपुज घरावर निर्माल्य जः समजतु.
 निदान के-भगवानना वचननु पालन करवाजमा ज सम्यक्त्व,
 श्रुत अने चारित्र ए त्रणोनी साफल्यता समजवी अतएव
 भगवाने "कडेमाणे कडे" ए सूत्रनी नहीं श्रद्धा करनार
 उत्कृष्ट चारित्री जमालीने पण निहव क्यो वळी आ वचनधी
 चलटी गति करवी, स्वपतिने आगल करी वचननो लोप करवो

अथवा वचननो दुरुपयोग के अनर्थ करवो, पोताना आग्रहने, धारणाने पोषवा माटे सर्वज्ञवचननो उपयोग करवो ए सर्व प्रभु आज्ञानु स्वरूप चेष्टा होवाची अर्धमज जाणवो निदान के-तेथी आत्मा ससारना दु खनु पात्र ज वने छे

“ वचनाराधकतामा आराधकता ”

भगवान् हरिमद्रसूरिजी महाराज जणावे छे के-उपदेशके युध श्रोताने खुल्लु जणावतु के-प्रभुना वचननु पालन करवु ते ज धर्म अने तेनो अनादर-अपालन करवु ते अर्धम, ए ज अहीं जैन प्रवचनमा धर्मनु नितान्त सत्य-गूढतत्त्व कथु छे, अने ए ज सपूर्ण द्वादशांगीनु परमतत्त्व-मर्वमारभूत प्रधान तत्त्व कथु छे निष्कर्ष ए के-प्रवचनज्ञाननु फल ए ज के शक्ति छता तदनुकूल क्रिया-वर्तन करवु अने वधु माटे पूर्ण आदर साये अपेक्षा मानबुद्धि धारवी, श्रोता समीपे सत्य तत्त्वनु ध्यान करवु अने पोतानी अशक्ति जाहेर करवी; कारण के अर्थाधी पहेला आत्मानो उद्धार कदापि थतो नयी पण क्रिया-पतितनो तो उद्धार थइ जाय छे. पटले प्रभु आज्ञानु पालन करवु ए ज सत्य धर्म अहीं दर्शाव्यो प्रभु हेमचद्रसूरिजी पण ए ज दर्शाव छे के-“ आजारान्द्रा विरान्द्रा च, शिवाय च भवाय च । इतीयमार्हती मुष्टि-मन्यदस्याः प्रपचन ” ॥ १ ॥ आ माटे ज भगवतो आगम प्रमाणे वर्तनारने आराधक कहे छे ने एक अक्षरने पण नहीं माननारने अनत ससारी जणाने छे, तेनु कारण ए ज के-जेणो आगमाज्ञा मानी

तेणै सर्वे आगमोक्त वातो मान्य करी, अने जेणे एक अक्षर लोप्यो तेणे प्रभुनो पण अनादर कर्यो अत प्रभु आज्ञानुपालन करवु ए ज धर्मनु परमतत्त्व छे, ए रीते ' बुद्धजन ' पासे उपदेशके कथन करतु, निदान के-आगमाज्ञानी प्राधान्यता-श्रेष्ठता-सर्वकर्तव्यता दर्शाववी.

“ विचित्र दलीलो ”

“ अर ! आ प्रकारना उपदेश आपवाधी तो बाह्य अने आभ्यतर आचारोनी अप्रधानता वल्के अमारता ज प्रतिभासमान थाय छे. अथवा आ उपदेशधी आ लोकोनी आचार परत्वेनी रुचिनो नाश ज केम न थाय ? जो आम ज होय तो पछी बालजनने बाह्य आचार सगरी उपदेश, मध्यमजनने आभ्यतर आचार सबधी उपदेश आपवो नमामो ज मानवो लोइये; पाटे सर्व अनुष्ठानोने गौण करी वचनाराधनमा ज धर्म केम न कथो ? आ वधी शकाषोने दूर करवा समय अनुष्ठानोनु मूल प्रभु आज्ञा ज छे ए बात दर्शाववा आचार्यधी परमार्थ उपदेश देखाडे छे ”—

यस्मात्प्रवर्त्तकं भुवि,

निवर्त्तक चातरात्मनो वचन ॥

धर्मश्चैतत्संस्थो,

मौर्नीद्र चैतदिह परम ॥ २-१३ ॥

મૂલાર્થ—અતરાત્માને વિષેયકાર્યમા પ્રવર્તક અને નિ-
પિદ્ધ કાર્યોથી નિવૃત્તિકારકુ આ મૂમહલમા કેવલ સર્વજ્ઞોક્ત
પ્રવચન જ ઉત્કૃષ્ટતો છે, અને પરમાર્થતયા ધર્મ પણ આ
મૌર્નીદ્રના પ્રવચન સિવાય અન્યત્ર નથી

“ મનની સ્થિતિ ”

સ્પષ્ટીકરણ—વિશિષ્ટ પવિત્ર અથવા અપવિત્ર કાર્યોમાં
આત્મા મનની પ્રેરણા વિના ગતિ કરવાને ઘણા અશે અસમર્થ
જ વને છે, એટલે પ્રથમ મન ઇચ્છે છે ને પશ્ચાત્ આત્માને પ્રેરે છે,
યદ્યપિ અસદ્ગી દ્વિંદ્રિયાદિ જીવો મનહીન હોવા છતા પ્રત્યેક
ક્રિયાઓ શરીરદ્વારા જ કરે છે, એ સદ્ગી આત્માઓ પણ ઘણી
વાર મન વિના ક્રિયાઓ કરતા અનુભવાય છે; તયાપિ અહીં
ભાવરૂપ મન કાયમ હોવાથી મનપૂર્વક જ ક્રિયા-પ્રવૃત્તિ થાય
છે એમ સમજવું નિદાન કે-પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિમા મુખ્યતયા
મન જ કારણભૂત છે—“ અને એ મનુષ્યાણા કારણ
યઘમોક્તયોઃ ” આચારાગસૂત્રમા પણ કહ્યું છે કે—“ જે
આસવા તે પરિસવા, જે પરિસવા તે આસવા ”,
“ જે આશ્રવો તે જ નિર્જરાના કારણો થાય છે, અને જે નિર્જ-
રાના કારણો છે તે જ આશ્રવના હતુઓ થાય છે ” આ કયનમા
પણ મનની જ મુખ્યતા દર્શાવી છે. વત્રી સાતમી નારકી યોગ્ય
કર્મો અને સ્વ દેવત્વ યોગ્ય કર્મો પણ આત્મા મનની સહાયતાથી
જ વાધી શકે છે એટલે મન વિના આત્મા જે કાઈ પ્રવૃત્તિ કરે
તે માત્ર સામાન્ય જ જાણવી, પરતુ વિશિષ્ટ પ્રવૃત્તિ તો આત્મા

मनद्वारा ज करे छे शुभाशुभ कार्योंमा मन मुख्य मान्यु छे, माटे मन कदाचित् अशुभने शुभतया अने शुभने अशुभतया परिणामावी शके ए सहज छे आथी मनने जे संस्कार मले तेवी रीते ते परिणामे छे ने प्रवृत्ति-निवृत्तिमा साधक घने छे. अतः आत्मानि ऐच्छिक इष्टसिद्धि माटे प्रयत्न मनने ज सुशिक्षित अने पवित्र सकल्यी बनाववु उचित छे. जेम यया पछी मन तप, सयम, स्वाध्याय, शील आदिने आदेय मानी तेमा प्रवृत्ति, अने हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदिने हेय मानी तेनी निवृत्ति करे छे परतु आ प्रकारनी विवेकशाली प्रवृत्ति-निवृत्ति करवानु चल मनने सुसंस्कारो अथवा ज्ञानप्राप्ति यया विना प्राप्त यवु दुःसाध्य छे—वरापर मन समजदार यया पछी ज कर छे.

“ सर्वज्ञवचन ”

आथी प्रवक्तृता जणाने छे के—‘चस्मात्’ आ भूमडलमा शुभ कार्योंमा मनने प्रवर्तानार अने अशुभकार्योंथी निवृत्ति करावनार केवल सर्वज्ञरुचित सिद्धान्त-प्रवचन सिवाय अन्य कोइ पण साधन नथी; कारण के सर्वज्ञ प्रवचनमा ज प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गो दर्शावी हेय, उपादेय पदार्थो अच्छी रीते दर्शाया छे. सिवाय एक पण एवु प्रवचन जगतमा नथी के जेमा विरोधी, स्वार्थनु अने स्वलित कयन न होय. सर्वज्ञवचननो बोध यया पछी आत्मा हेयनो त्याग अने उपादेयनु उपादान करे छे एटले मनने सर्वज्ञागमना अभ्यासथी संस्कारित बनाववु जोइए. कारण के—सर्वज्ञागमनु परिशीलन करवु ते ज वास्तविक धर्म छे; हिंसादिथी निवर्तवु अने तप, स्वाध्यायादिमा प्रवृत्ति करवी ते

तो धर्मो वाच व्यापारमात्र छे निदान के-मन तयाप्रकारे
 आगमधी सस्कारी यया पछी सहजतया शुभाशुभमा प्रवृत्ति-
 निवृत्ति करे छे, अतएव आगमोक्ततत्त्वनी आराधना करवी तेमा
 तरो धर्म जणाव्यो. आतु मन धरावर अचलपणे प्रवृत्ति-निवृत्ति
 कर छे, पटले सुदर चारित्र, तप, स्वाध्याय, ध्यान, क्रिया-
 कुशलता आदि धर्मना प्रधान अगो पण आत्माने सहजतया
 उपलब्ध याय छे अर्थात् आ मन कदापि आ व्यापारोनी
 उपेक्षा करतु नथी बल्के परमशुद्धापूर्वक सुविशुद्धपणे आचरे
 छे-कदापि भग धवा देतु नथी माटे ज अर्ही प्रयत्नार्ता कहे छे
 के-“ धर्मश्चैतत्सस्थो ” धर्म आ भगवतकथित प्रवचननी
 सेवामा अवाधपणे रखो छे अने जैनशासनमा आ सर्वज्ञवचन
 ज परमतत्त्व-उत्कृष्ट धर्म छे दुःखमा सर्व अनुष्ठानोनु मुरय
 जीवन-प्रधान आधार सर्वज्ञवचन ज जाणतु

“ शकानो उद्धार ”

देहना प्रत्येक अवयवो अने इन्द्रियोनो व्यापार-स्थम
 मुरय प्राणो ज छे प्राणनो नाश यया पछी सर्व व्यापारोनी
 लोप आपोआप ज यइ जाय छे, एव सर्व अनुष्ठानोनी आराध्यता
 सर्वज्ञवचननी आराध्यताथी बने छे, अने सर्वज्ञवचननी
 विराधना करवाथी सर्व अनुष्ठानो निर्जीव तुल्य समजवा, माटे
 बुध योग्य उपदेशविधिमा सर्वज्ञवचननी प्राधान्यता जणावी परतु
 आ कयनथी अन्य अनुष्ठानो गौण अथवा नकामा नथी सम-
 जवाना; धन्के सर्वज्ञवचननी प्रधानता दर्शाववाथी तेनाथी अभिन्न

एवा आगमोक्त सर्व अनुष्ठानो पण मुख्य ज जणाव्या, एटले नितान्त आदेय अने अनुष्ठेय जाणवा. अन्यथा आगमदर्शित अनुष्ठानोनु अवहुमान के अश्रद्धा करवाची फरी आगम-वचननु ज अवहुमान कर्तुं जाणवु, तथा तेम करवाची अघर्म ज गणाय. आटला कयनयी प्रयपनी सर्व शकाओनु पण निरसन थड गयु. उपाध्यायजी कहे छे के-धर्म अहीं व्यापार-रूप ज्ञापकता सबधयी जाणवो, एटले आगम ए धर्मनु ज्ञापक छे; ज्यारे धर्म अत्रे ज्ञेय जाणवो छे तटे टीकाकार जणावे छे के—सर्वज्ञोक्तेन शास्त्रेण, विदित्वा योऽत्र तन्वत । न्यायतः क्रियते धर्मः, स धर्मः स च सिद्धये ॥ १ ॥ “ सर्वज्ञभाषित शास्त्रोमा कहेल तत्त्वनु भान-बोध करी न्यायरूपे जे काइ ररवाभा आवे तेनु ज नाम अत्रे जैन-सिद्धान्तमा धर्म ऋयो छे अने आ ज धर्मसिद्धि आपे छे; वाकी कोई पण धर्म मोक्षदायी मान्यो नथी. ” आ वात पर वहु बहु विचारवु अने तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश आपवो

“ सर्वज्ञवचननी मुख्यता अहीं शा शाटे जणावी ? तेनो हेतु अथकर्त्ता स्पष्ट करे छे ”

अस्मिन् हृदयस्थे सति,

हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र' इति ॥

हृदयस्थिते च तस्मिन्नि

यमात्सर्वार्थससिद्धि. ॥ २-१४. ॥

मूलार्थ-सर्वज्ञवचन-सिद्धान्तने हृदयाकित करवायी एटले चिचमा स्थापन कर्या पछी परमार्थथी सिद्धान्तद्वारा मुर्नाद्रि-सर्वज्ञ भगवाननी ज हृदयमा स्थापना कराय छे, अतः भगवान हृदयमा वीराजवायी आत्मा पोतानी सर्व अभीष्ट सिद्धियोने नियमेन विनाविलवे प्राप्त करे छे.

“ प्रभुप्राप्तिनो मार्ग ”

स्पष्टीकरण—अभीष्ट अर्थोनी सिद्धि परमात्पानी प्रसन्नता सिवाय न ज याय ए तो सर्वसाधारण बात छे परमात्पानी प्रसन्नता खाली तेनी विविध पूजाओ करवायी अने मदिरो बधाववायी ज न मले, किन्तु परमात्माने प्रसन्न करी तेने पोताना हृदयमदिममा स्थापन करवानो मार्ग अलौकिक अने घणो सरल छे, तै ज बात अत्र आचार्यश्री स्पष्ट करे छे जनता परमात्माने खुशी करवानो अने तेने मेळववानो मार्ग बारवार पूछे छे, तेना माटे आचार्यश्री कहे छे—“ अस्मिन् हृदयस्थे ” आ विधि, प्रतिषेध, उत्सर्ग, अपवाद आदि मार्ग-दर्शक लौकिक-लोकोत्तर कल्याणमार्गप्ररूपक स्याद्वाद-शैलीमय एवु पूर्वोक्त आगमवचन-सिद्धान्तरूधित आज्ञाओ हृदयमा धारवायी, अर्थात् आत्मा सामान्य के विशेष जे काइ प्रवृत्ति-निवृत्ति आचरे ते सर्व सिद्धान्तनी आज्ञा अनुकूलपणे ज यदि आचरे तो “ तत्त्वतो० ” परमार्थथी आत्मा परमेश्वरनु ज नितान्त बहुमान करे छे, कारण के-परमेश्वर उपर ज्यारे अनन्य भक्ति-बहुमान होय त्यारे ज भव्य आत्मा तदुक्त प्रत्येक

“ अभीष्ट सिद्धियो ”

अतएव भगवान् हृदयमा विराजवाथो नियमेन आत्माने सर्वे अर्थो-अभिष्टोनी सम्यक्तया सिद्धिं याय छे निदान क-भगवान् मल्या पल्ली कयो पदार्थे जगतमा एवो छे के आत्मा सहजतया (सहेलाइथी) न मेळवी शके ? दुकमा तप, जपादिनी सिद्धि, अष्टमिद्धिनी प्राप्ति, शरीर सवधी दु खोनो हास, इद्र चक्रवर्च्यादिनी रिद्धियो अने छेवटे ससारनो नाश यइ परमात्मा साथे एकाकारपणु इस्तगत थवु आत्माने काइ दुःसाध्य नथी अल्पकालेन अभिलपित स्थानोनी प्राप्ति थाय छे, केवल परमेश्वरनी हृदयमा अद्भूत रीते स्थापना थवी जोइये; माटे ज चुचजनने उपदेशके भगवाननी आज्ञा आराधनानो प्रधानतर उपदेश आपवो अने तेनो मभाव आ रीते जणाववो

“ भगवाननी प्रसन्नताथी सर्वे कार्योनी सिद्धिं याय छे, एवु जणावी भगवानना माहात्म्यनी अथरुर्त्ताए आटली स्तुति शा माटे करी ? शु भगवान सर्वे कार्यो करी आपे छे ररा ? आ गरानु समाधान अथरुर्त्ता दृष्टातनी घटना साथे कर छे ”

चिंतामणि. परोऽसौ

तेनैव भवति समरसापत्ति. ॥

सैवैह योगिमाता,

निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता ॥ २-१५ ॥

मूलार्थ—आ भगवान्—जिनेश्वरदेव चिंतामणिरत्न

करता पण उत्कृष्ट स्तनरूप छे, कारण के आ वीतरागदेवधी ज आत्माने एकान्त उपशम-शान्तरसनी प्राप्ति थाय छे, अने महर्षियोए आ उपशमरसनी प्राप्तिने ज योगियोनी माता तथा निर्वाण-मोक्षफलदायी कही छे

“ चिंतामणिनी उपमा ”

सष्टीकरण—अत्र भगवाननी उत्कृष्टता दर्शाववा आचार्यधी सर्वतो सुदृष्ट दृष्टात आपी तेमनी आरायता बराबर सिद्ध करे छे भगवान सरतोश्रेष्ठ होवायी अद्भूत आश्चर्योत्पादक दृष्टात साये ज तेमनी काइक साम्यता दर्शाववी ए पाठको माटे सरलता गणाय भूतल पर चिंतामणि सर्वात्म पदार्थ मनायो छे आ रत्न जड छता तेनी मेवा करनारने अभिष्ट फलो तेना मालिक (अधिष्ठायक) देवता अर्पण करे छे एव आ भगवान पण पोताना बहुमान, भक्ति, श्रद्धा, आज्ञापालन करनारने एण आ लोक तथा परलोक सखी सर्व इष्ट पदार्थो पूरण करे छे. यत्रपि भगवान वीतराग होवार्थी अभक्त, अपूजक, अश्रद्धालु सामे क्रोध अने आराधक-पूजक सामे प्रेम दर्शावता नथी तैओ तो सर्व जगत्ने समदृष्टिए ज निहाळे छे, अन्यथा भगवत्तमा वीतरागपणु ज न कहेवाय, तथापि चिंतामणिनी भक्तियी आर्पणियेल तेना मालिक देवता सेवनी कामनाओ पूरे छे एटले आ अभिष्ट सिद्धियो चिंतामणिना आलबनधी ज प्राप्त थइ परंतु परमार्थ रीते तो चिंतामणि ज अर्पण करे छे एवो व्यवहार जगतमा प्रवर्त्यो छे, तथाप्रकारे जिनम-

णित आगमानुसार उपादेय-हेयाटिमा प्रवृत्ति-निवृत्ति करनार आत्माने अलौकिक लोकलोकोत्तर सिधियो तत्काल सहजतया उपलब्ध थाय छे एटले-“ व्यवहारमा जेम अमुक माणसनी सलाहथी अमुक माणस कोइ जातनु कार्य अगर व्यापार करे एव मार्गमा गमन करे अने तेमा ज्यारे पोते फतेह मेळवे त्यारे ते माणस एमज समजे छे के अमुकनी सलाहथी-वचनथी हु चाल्यो माटे ते माणसे ज मने सुखी कर्यो ” अत्र माणसना वचनथी जे सिद्धि यइ ते माणसे ज सिद्धियो अर्पी एवु उच्चारता, मानता अने व्यवहार करता जनताने आपणे सामान्य दृष्टिथी जोइये छीये, तो पछी अर्ही भगवानना वचनाधारे प्रवृत्ति करनार आत्मा इष्ट सिद्धि मेळने ते भगवाने ज अर्पण करी ए व्यवहार सामाटे अनुचित मानवो ? अर्थात् भगवान ज अर्पण करे छे ए उक्तिमा काइ अनौचित्यपणु समजातु नथी. अत भगवानने चिंतामणिनी उपमा वरावर चरितार्थ यइ शके छे.

“ अनौपम्य भगवान ”

वधुमा भगवान तो चिंतामणिनी अपेक्षाए अधिक फल अर्पणकर्ता होवाथी भगवाननी आगल चिंतामणी पण सामान्य पत्थरवत् समजवो, कारण के चिंतामणि तो मात्र इहलोक सवधी ज तुच्छ पदार्थो अर्पण करे छे पण जन्मातरना सुखो आपवाने समर्थ नथी थतो, ज्यार भगवान तो लोक लोकोत्तरना दिव्य सुखो अर्पण करी अखड आत्मानदने

अर्पण करे छे, जेधी आत्माने आ ससारना भयानक स्वप्नाने
जोवानो समय फरीने आवतो नयी

“ प्रसुधी समरस लाभ ”

आ ज वातनो उद्देश ग्रथकर्ता जणावे छे के-“ तेनैव
भवति समरसापत्तिः ” भगवद् वचनाधारे प्रवृत्ति कर-
वानु, भगवाननु बहुमान के पूजा करवानु खरु फल ए छे के
आत्मा भगवत जेवो उपशमभाव प्राप्त करे-एटले कपायोनी
सीणता थइ जाय हेतु ए के-कपायोनी सीणता विना साक्षात्
भगवद् प्राप्ति यती नयी अने आत्मानो वास्तव धर्म उपशमभाव-
स्वस्वभावमा रमणता करवानो ज छे. आ स्वरूप खरी रीते
भगवानना वचनोधी आत्माने उपलब्ध थाय छे, माटे अही
जणाव्यु के भगवान पासेधी ज आ समरस-उपशमरसनी प्राप्ति
याय छे, कारण के प्रभुकीयत वचनरूपी अमृत पबु छे के
आत्मा तथाप्रकारे वर्ते तो जरुर अमृतभावमय ज थइ जाय

“ समापत्तिनु स्वरूप ”

अथवा टीकाकार “ तेनैव भवति समरसापत्तिः ”
ए चरणानो अन्यार्थ निकाले छे. “ ते भगवानधी ज आत्मा
समरसनी प्राप्ति करे छे ” अत्र ‘रस’ शब्द भाव अयनो
वाचक छे एटले समभावनो लाभ पामे छे. जिनभगवतोए
स्वप्नधी जेम जगतना कल्याण माटे
छे तेम परमेश्वरनु पण ययार्थ

સકોને પ્રકારયુ છે, જેથી આગમના શ્રમ્યાસી અને આગ
 નુમાર પ્રવૃત્તિકારકો પોતાનુ કલ્યાણ નિરાપાધપણે સાધી શ
 ણ્યાંત્ આગમોક્ત માર્ગમા ચાલી જે સાધનોદ્વારા પરમેશ્વ
 પ્રાપ્તિ બનાવી છે તે સાધનો ઉપલબ્ધ કરી, પરમેશ્વર
 હૃદયમા ઘરાવર સ્થાપન કરી સર્વ વૃત્તિયો-વિકલ્પો
 કેવલ પરમેશ્વરના જ ધ્યાન-વિચારમા તન્મય બને
 આ સમયે તે વિશિષ્ટાન્યા અને પરમેશ્વરનો જાણે શ્રમે
 યયો હોય તેવો આ આગમોક્તકારી આત્માને અનુભવ
 આનુ નામ આચાર્યશ્રી 'સમાપત્તિ' ધ્યાન કહે છે

“ ધ્યાના, ધ્યેય અને ધ્યાન ”

આ વિષયને સમજાવવા ટીકાકાર યોગશાસ્ત્રને
 છે. 'ક્ષીણવૃત્તેરભિજાત્યસ્યેવ મણેર્ગ્રાહ્ય
 તત્ સ્થતદનુગતા સમાપત્તિઃ" વ્યાતા, ધ્યેય
 ત્રિકોટીની જ્યાર એકપતા યાય ત્યારે તે 'સમા
 પ્રાપ્તિ કરી છે જેમ સુદર અને સ્વચ્ચ જા

स्थानमा विराजमान छे एम दृष्टाने (जोनारने) प्रत्यक्ष मालुम याय छे. एटले ग्राह्यवर्ण, ग्रहीतृपणि अने वर्णने स्वीकारी तन्मय यवानो मणिनो स्वभाव ते ग्रहण-आरण्ये भाववर्ण अने मणिमा साक्षात् अनुभवाता होवार्थी स्वच्छ अने निर्दोष सुदर मणि लाल, पीलु, आस्मानी, कृष्ण वर्णगच्छ आपणे सौ साधारण दृष्टियी जोइ शकीए छीए परमार्थ के-मणि कपडाना सबध पात्रयी तथाप्रकारना वर्णमय थइ जाय छे ए ज रीते अर्ही आत्मा अने परमेश्वरमा आ दृष्टानती वगरर साम्यता-घटना समजवी आत्मा ज्यारे आगमोक्त परमेश्वरनु स्वरूप समजी-विचारी तदीय ध्यानमा तन्मय वनी परमात्मा साथे एकाकार बने छेत्यारे आत्मा पण सर्वज्ञरूप-परमात्परूपपणानो परमार्थयी अनुभव करे छे एटले ध्येय परमात्मा, ध्याता-विचारकर्ता आत्मा अने ध्यान ते परमात्माना स्वरूपनो विचार-आरण्येनो समागम ते ' समापत्ति ' परमात्मा सर्वने ध्येयस्वरूप प्राप्तव्य होवार्थी परमात्मा ध्येय अने तेमना स्वरूपनो-गुणोनो अभ्यास, गिरीशीलन, विचार ते ध्यान, तथा विवेकी आत्मा आ स्वरूपनो विचार-अभ्यासकर्ता होवार्थी ते ध्याता आरण्येनो ज्यारे समागम-ऐक्यता याय त्यारे विवेकी आत्मा सर्वज्ञना ध्यानरूप गह्य आलवनद्वाराए सर्वज्ञरूपनो अनुभव कर छे एटले ते मात्मा पण सर्वज्ञरूप कहेवाय, कारण के-आ समये ते आत्मा मयि तद्रूप स एवाहं ' मारामा भगवाननु रूप छे, अने भगवद्रूप छु ' ए ज भाव विज्ञानद्वाराए अनुभवे छे. माटे

अर्ही ग्रयकर्त्ताए उल्लेख कयों के—आ पूर्वोक्त ' समापत्ति ' रूप
भावावस्था आत्माने परमात्मारूप वाद्य आलयनद्वारा ज
उपलब्ध थाय छे; सिवाय ते अवस्था अप्राप्य ज जाखवी.

“ योग तथा योगि अने योगिमाता ”

आटलो निर्देश करी फरी ग्रयकर्ता आ ' समापत्ति ' नी
प्राप्तन्यता, आरायतानी अलोकिकता सिद्ध करवा उचरार्थी
प्रकाड प्ररूपणा करे छे. ' सैवेह योगिमाता ' दर्शित
' समापत्ति ' ज अर्ही—जनदर्शनमा अथवा सर्वदर्शनमा योगि-
योनी माता कही छे ' मोक्षेण योजनात् योग ' जेथी
आत्मानो मोक्ष साथे बराबर सबध थाय ते योग. आ योगने
जेथो पाम्या तेओ योगि कहेवाय योग तथा योगि शब्दनो
अत्र आ अर्थ होवायी सम्यक्त्व, ज्ञान, सयम, कपायविजय,
इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, शौच, ब्रह्मचर्य, निर्ममत्व—आ सर्व योग-
मार्गो छे अने ते मार्गमा चालनार सर्व योगि जाणवा. खाली
बागधी जटा बधारी, कौपीन बल्कल के व्याघ्र के मृगचर्म धारी,
भस्म चीळी बेश करवो ते काइ योगियणु न कहेवाय. जेमा
मोक्षनो सबध आत्मा साथे न थाय तेनु नाम योग नथी कह्यो.
आ योगियोने उपरोक्त योग धारवानु मुख्य फल परमात्म-
प्राप्ति सिवाय अन्य अभीष्ट नथी कह्यु, अर्थात् आ सर्व
योगियो पण योगमार्गना पथमा विचरी परमात्माना ध्यान-
रूप ' समापत्ति ' अवस्थानो लाभ करी ते द्वाराए अनुक्रमे
परमात्मा अने पोते ब्रह्म तुल्यस्थान स्थित बने छे एटले

પરમાર્થ એ કે—યોગિયો ‘સમાપત્તિ’ ધ્યાનની સિદ્ધિ માટે જ આ સમ્યક્ત્વ આદિ યોગો ધારે છે જ્યાં સુધી આ ધ્યાન-સિદ્ધિ ન થાય ત્યાં સુધી યોગિયોનો યોગપ્રયત્ન અર્થહીન જેવો માન્યો છે, માટે યોગિયોની સર્વ કાર્યસિદ્ધિ આ ‘સમાપત્તિ’ ધ્યાનથી જ થાય છે. અતઃ આ ‘સમાપત્તિ’ ને નિતાન્ત યોગિયોની માતા અર્હી જનાવી

“ નિર્વાણફલદર્શન ”

એ જ વાત અન્યત્ર કહી છે—“ સમ્યક્ત્વજ્ઞાનચારિત્ર-યોગ સધ્યોગ ઉચ્યતે । એતદ્યોગાદિ યોગી સ્યાત્ પરમદ્રહ્મસાધકઃ ” ॥ ૧ ॥ અન્તમા ગ્રથકર્તા આ ‘સમાપત્તિ’ ને ‘નિર્વાણફલપ્રદા પ્રોક્તા’ નિર્વાણ—મોક્ષફલ દાત્રી મહર્ષિયોએ કહી છે. એવો નિર્દેશ કર છે નિષ્કર્ષ એ કે—આ ‘સમાપત્તિ’ પ્રાપ્ત થયા પછી મોક્ષફલ અવશ્યમેવ આત્માને સુલભ્ય થાય છે. “ ઇલિકા અમરીં ધ્યાયન્ અમરિત્વ-મુપતિષ્ઠતે ” ‘ઇતલ અમરીનુ ધ્યાન કરવાથી છેવટે અમરી-પણાને પામે છે’ તથાપ્રકારે યોગિયો પણ પરમાત્માનુ ‘સમાપત્તિ’ રૂપ ધ્યાન પામી પરમાત્માવસ્થાને—મોક્ષભાવને પામે છે, આમ અનુભવવેદી સર્વદર્શી મહાપુરુષો અને પૂર્વધર આચાર્યો કહે છે. ડુક્ષમા આગમ્માનુમારી પ્રવર્તરુ સ્વહૃદયમા પૂર્વોક્ત ન્યાય્યે આગમદ્વારાં પરમાત્માને સ્થાપન કરી તે પરમાત્મરૂપ આલ-ચનથી ‘સમાપત્તિ’ રૂપ સ્વરૂ ધ્યાન પામી છેવટે મોક્ષસ્થાનમા વિરાજે છે. અતઃ આગમવચનની આરાધના તે જ વાસ્તવ ધર્મ

अर्ही 'बुध' वर्ग माटे दर्शाव्यो अतः उपदेशके पण आ स्वरूप बराबर ध्यानमा राखी तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश करवो.

“ आ अधिकारना प्रारभमा ग्रयकर्त्ताए घाल, मध्यम, बुध माटे उपदेशविधिना प्रकार तच्छ्लोए जे प्रमाणे कथो छे तथाप्रकार जणाववानु कथु दत्तु ” तो अर्ही सुधी उपर दर्शाव्या प्रमाणे सिद्धान्तानुसारी उपदेशविधिना प्रकारो कहा, एखे आचार्यश्रीए ‘ यथोद्देशः तथा निर्देशः ’ ए महर्षियोनु कथन चरितार्थ कर्यु हने आ ‘ विधि ’ नो उपमहार करी तथाप्रकारे उपदेशदाननु अपूर्व फल दर्शावी उपदेशकोने ए दिशायां ज गमन करवानी सूचना आपी आ अधिकारने पूर्य करे छे ”

इति च. कथयति धर्मं,

विज्ञायौचित्ययोगमनघमति ॥

जनयति स एनमतुल,

श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम् ॥२-१६॥

मूलार्थ.—अनघमति-शुद्धमतिमान् एवा जे धर्मगुरु बाल, मध्यम आदिनी योग्यता बराबर परीक्षी योग्यता प्रमाणे धर्मोपदेश करे छे, तो तेओ श्रोताना हृदयमा मोक्षफलने अर्पण करनार एवा अनन्य-असाधारण धर्मभावनी श्रद्धा स्थापन-उत्पन्न करे छे.

“ उपसहार ”

स्पर्ष्टीकरण—उपदेशविधिना प्रकारो दर्शाव्या अत्र तो तेनु फल प्रकाशु छै प्रथम तो उपदेश आपवानो अधिकार आगल दर्शाव्या प्रमाणे “ घम्भो जिण पणत्तो पकप्प जयिणा क्कहेघच्चो ” जिनकथित धर्म कवळ प्रकल्पति (गीतार्थमुनि) ज प्ररूपवो, अर्थात्—त्यागी, मोक्षमार्गस्थित अने गुरुकुलवासमा रहीं योगादि क्रिया आराधी जघन्यधी पण आचारागादि पाच सूत्रोमा निपुण एवा गीतार्थमुनि ज धर्मव्याख्या करवी, मिवाय अन्यन तो ज्ञोलवानो पण अधिकार नथी तो पछी धर्मदेशनानी बात ज क्या रहीं ? आ मुनि पण ‘ अनघमत्तिः ’ पापबुद्धि रहित एटले केवल पवित्राशयवान् होय तै ज इतु ए क—म्वार्या के आग्रही कदापि शुद्ध उपदेश आर्षी शक्ता नथी तै पण माल, मन्यम आदि वर्गनी प्रथम चेष्टा, क्रिया, अभिरुचि, बुद्धि, विचार आदि साधनद्वारा योग्यतानो बरारर ख्याल करी, तपास क्या पछी तै लोकोने धर्मनो बोध घाय, श्रद्धा अने अभिरुचीमा वधारो घाय, उत्तरोत्तर उत्तम उत्तम अवस्थाओ प्राप्त कर तथाप्रकारे पूर्वोक्त उपदेशके तेओना अधिकार प्रमाणे उपदेश आपवो उपदेश आपती बखते एटलु तो खास भ्यान राखवु के उपदेशमा भगवत तथा पूर्वाचार्योना ब्हाने स्वमतिरूपना के आग्रहनु मिश्रण करी श्रोताओने उपदेश न अपाय, कारण के एयी उपदेशक अनतससारनी बुद्धि करी श्रोताने पण कल्याणना बदलामा अरुल्याण प्रति घसडी जाय छे एव आशाभाव तथा-

मान-प्रतिष्ठानो लोभ छोड़ी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार
 कर्या विना मात्र श्रोतानु कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा
 पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो

“ उपदेशनु ग्वरु फल ”

आ रीते उत्तम उपदेश आपवायी वक्ता आचार्य स्वतुं
 (पोतानु) कल्याण साधनापूर्वक श्रोताने उदात्त धर्म ज पमाडे छे
 आचार्यश्री कहे छे के-‘ जनघति स एनमतुल श्रोतृषु
 निर्वाणफलदमलम् ’ आ रीते धर्मोपदेश आपवायी उप-
 देशक सारी रीते श्रोताश्रोना चित्तमा असाधारण एवो धर्म-
 प्रेम उत्पन्न करे छे, जेथी श्रोताने एवो दृढ धर्मप्रेम जागृत थाय
 छे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण-मोक्षरूप फल अर्पण
 करवा समर्थ वने छे निदान के-श्रोता छेवटे मोक्ष पामी स्वात्माने
 कृतकृत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पामे
 छे दुकमा-आचार्यना उपदेशमा एवो तो अदृभूत चमत्कार
 तथा आकर्षण होय के श्रोताने कटाळो के अभाव कदापि
 उत्पन्न न थाय, किंतु मोरलीना नादथी आकर्षणिला नामनी
 माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित थइ अधिकाधिक श्रवण
 करवामा दत्तचित्त वने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उप-
 देशना बलथी उत्तम पंथानुयायी थाय आयी श्रोता अने वक्ता
 उभयनु परिणामे कल्याण ज थाय छे बहुमा उमास्वाती
 महाराज कहे छे के-“ वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ”
 आवो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे काइ नहीं तो पोताना
 निर्जरा-ज्ञान नि सदेहपणो करे छे.

(३) धर्मलक्षणषोडशकम् ।

“ शका अने सबध ”

गत अधिकारना प्रारम्भमा 'बाल' आदि वर्गने सद्धर्मनी देशना आपवानु जणान्यु हतु अने अतमा “ तयाप्रकारे उपदेश आपवाथी उपदेशरु श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम पेदा करे छे ” एटले बच्चे स्थलमा धर्म ए शब्द आवे छे तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनु लक्षण शु ? ए आशकानो उत्तर जणाववा द्वाराए पूर्वाधिकार साये सुसवयतया स्थित आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शन तृतीयाधिकारनो आरम्भ करे छे, उपदेशवलथी आत्माने जे धर्म प्राप्त याय अथवा धर्म उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए शस्य अशांसयपणे उत्पन्न याय, अत वीजा अधिकार पत्री उपरोक्त शकाने दूर करवाना सबधवाजे आ त्रीजो अधिकार दर्शावे छे, एटले आ अधिकार सबधशून्य छे ए शकाने अर्ही अवकाश मळतो नथी.

अस्य स्वलक्षणमिदं

धर्मस्य बुधे सदैव विज्ञेय ।

सर्वागमपरिशुद्धं

यदादिमर्ष्यांतकल्याणम् ॥ ३-१ ॥

मान-प्रतिष्ठानो लोम छोटी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार कर्या बिना मात्र श्रोतानु कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो

“ उपदेशनु स्वरु फल ”

आ रीते उत्तम उपदेश आपवायी वक्ता आचार्य स्वनु (पोतानु) कल्याण साधनापूर्वक श्रोताने उद्दाम धर्म ज पमाडे छे आचार्यश्री कहे छे के-‘ जनयति स एनमतुल श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम् ’ आ रीते धर्मोपदेश आपवायी उपदेशक सारी रीते श्रोताश्रोना चित्तमा असाधारण एवो धर्म-प्रेम उत्पन्न करे छे, जेथी श्रोताने एवो दृढ धर्मप्रेम जागृत थाय छे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण-मोक्षरूप फल अर्पण करवा समर्थ बने छे निदान के-श्रोता छेवटे मोक्ष पामी स्वात्माने कृतकृत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पामे छे दुकमा-आचार्यना उपदेशमा एवो तो अद्भूत चमत्कार तथा आकर्षण होय के श्रोताने कटाळो के अभाव कदापि उत्पन्न न थाय, किंतु मोरलीना नादयी आरुपायेला नागनी माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित यह अधिकाधिक श्रवण करवामा दत्तचित्त बने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उपदेशना बलधी उत्तम पयानुयायी थाय. आयी श्रोता अने वक्ता उभयनु परिणामे कल्याण ज थाय छे वधुमा उमास्वाती महाराज कहे छे के-“ वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ” आवो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे काइ नहीं तो पोताना अनतपापकर्मोनी निर्जरा-क्षय नि सदेहपण्ये करे छे.

(३) धर्मलक्षणषोडशकम् ।

“ शका अने सवध ”

गत अधिकारना प्रारम्भमा 'वाल' आदि वर्गने सद्धर्मनी देशना आपवानु जणाच्यु इतु अने अतमा “ तथाप्रकारे उपदेश आपवाथी उपदेशक श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम पेदा करे छे ” एतले वक्त्रे स्थलमा धर्म ए शब्द आवे उे तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनु लक्षण शु ? ए आशकानो उत्तर जणाववा द्वाराए पूर्वाधिकार साये सुभवधतया स्थित आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शन तृतीयाधिकारनो आरम्भ करे छे, उपदेशवलयी आत्माने जे धर्म प्राप्त थाय अथवा धर्म उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए शसय अशसयपणे उत्पन्न थाय अत बीजा अधिकार पट्टी उपरोक्त शकाने दूर करवाना सवधवाळो आ ग्रीजो अधिकार दर्शावे छे एतले आ अधिकार सवधशून्य छे ए शकाने अही अवकाश मळतो नथी.

अस्य स्वलक्षणमिदं

धर्मस्य बुधैः सदैव विज्ञेय ।

सर्वागमपरिशुद्धं

यदादिमध्यांतकल्याणम् ॥ ३-१ ॥

मूलार्थः—धमनी परीक्षामा निपुण एवा बुधजनोऽथ प्रथम धर्मनु लक्षणं हम्मेशा आ प्रमाणे जाणवु के जे सर्व शास्त्रोवडे अतिशुद्ध होय अने फरी आदि, म'य तथा अतमा कल्याण फलने ज अर्पण करे

“ बुधने सूचना ”

स्पष्टीकरण—पदार्थनु स्वरूप विचारवा पूर्वे प्रथम विद्वानो पदार्थना लक्षणो विचार कर छे, कारण के लक्षणो करीने अव्यवस्थित पदार्थ स्वरूपमा पण अव्यवस्थित ज होय छे, एव लक्षणाद्वारा पदार्थनु सामान्यत स्वरूप पण समनवामा आवी जवाची पश्चात् विशेष स्वरूप समनवाने सरलता पण थाय छे. अतएव प्रथमा उद्दिश्य पदार्थोनु स्वरूप वर्णन करवा पूर्वे समर्थ विद्वानो पदार्थनु लक्षण पहेलाची ज प्रकाशतया कथन करे छे आ नियमनो बाध न थाय ते पाटे प्रयत्ना आ प्रकरणानी आदिमा ज प्रथपरीक्षक विद्वानो प्रति स्पष्ट विद्वन् प्रणालिकानु दर्शन करावे छे के—अत्र धर्मस्वरूप—निरूपणमा बुधजनोऽथ हम्मेशा धर्मनु लक्षण आगलना आर्यामा जणावदो तथाप्रकारे जाणवु, धर्मपरीक्षणोऽथ तथा धर्मइप्सु (धर्म इच्छनारा) महानुभावोऽथ धर्म ग्रहण करवा पूर्वे अर्ही जे धर्मनु लक्षण नहु छे तथाप्रकारनु लक्षण स्वीकृत, स्वीकार्यमाण धर्ममा अविरोधपणे सुघटित छे के नहीं ? एवो विचार प्राज्ञहृदययी अवश्य करवो, जेथी मुग्धहृदयने पदार्थ स्वीकार्या पछी पश्चात्ताप के रोदनो प्रसंग न आने; कारण के घणी बार धर्मधृदाळ विद्वानोनु पण मन आतुरतामा

अथवा विचाराभाव के अन्य कोई विचित्र कारणोधी धर्माभाव-स्थलमा धर्मनी मान्यता करवाने ललचाय-मुग्ध थाय छे.

“ लक्षण'नु लक्षण ”

अत्रे लक्षण ते ज जाणतु के जेनायी उद्दिष्ट पदार्थयी इतर पदार्थनो निषेध थाय अने अमीष्ट पदार्थनु बराबर पूर्णाशे ज्ञान थाय जेवु के—‘ उष्णस्पर्शवत्तेजः ’ ‘ उष्ण एवो स्पर्श जेमा होय ते अग्नि ’ अत्रे अग्निनु लक्षण “ उष्ण-स्पर्शपणु ” कह्यु आथा अग्नि सिवाय जेटला पदार्थो तपा-साए ते दरेरूमा भिन्न भिन्न स्पर्शो कोइमा थडो, कोइमा काठीप्यता, कोइमा कोमलता विगेरे छे खरा पण उष्ण एवो स्पर्श तो अग्निमा ज छे, अ-य पदार्थमा नथी देखातो गरम जल गरम लोडु विगेरेमा जे जणाय छे ते पण अग्निनो ज गुण छे, कारण के ते पदार्थो तो जाते थंडा, मुद्दु अने कठीण छे. सूर्यनो ताप अने विजलीने पण नैयायिको अग्नि तत्त्व ज माने छे, एटले आ लक्षणथी अन्य पदार्थनो निषेध यवाची अग्निपदार्थनु स्पष्ट स्वरूप समजाय छे. फरी आ लक्षण अतिव्याप्ति, अव्याप्ति,

१ “ तदेव हि लक्षण यद्व्याप्त्यतिव्याप्त्यसमबहुरूपद्रोप-शून्यम् ” २—“ अतिव्याप्तिनाम अजक्षये लक्षणसत्त्वम् ” निषिद्ध पदार्थमा लक्षणनी प्रवृत्ति ते अतिव्याप्ति, जेमक ‘गो’ नु लक्षण ‘महिषि’ मा जागु थाय ते ३—“ अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदशावृ-त्तित्वम् ” लक्ष्यना एक ज देशमा लक्षण जागु थाय ते अव्याप्ति, यथा ‘गो’ नु लक्षण अमुक ज ‘गो’ मा जागु थाय ते.

असमव दोषत्रयशून्य होय तो ज समिचीन वहु छे

“स्वलक्षण”

अत्र धर्मनु स्वलक्षण जणाववा पूर्वे अयकर्त्ता कहे छे के-
इच्छित धर्मनु स्वलक्षण केवळ सामान्य न जाणवु, किन्तु आ
लक्षण “सर्वागमपरिशुद्ध” छे दर्शनना जे जे शास्त्रो ते ते
शास्त्रोनी कसोटीद्वारा सर्वतोप्रकारे शुद्ध-निर्दोष होवु जोइए.
अर्थात् धर्मनु स्वलक्षण एवु दर्शाववु-दर्शाव्यु छे के छए दर्श-
नोना विद्वानो पोताना शास्त्ररूपी इथोटावढे घणुये कूटे तो पण
जे खडित न थाय, परंतु सत्य सुवर्णनी माफक निर्दोष अने
स्वीकार्यरूपे जाहेर थाय एव खाली निर्दोष अने स्वीकार्य
होय आटलु ज नहीं किन्तु आचार्यश्री वधु भार दइने
कहे छे के-“ यदादिमध्यातकल्याणम् ” जे धर्मनु
स्वलक्षण आदिमा, मध्यमा अने अतमा कणस्वरूप कल्याण
फलप्रदात होय एटले नितान्त लक्षण ज एवु छे के-
ज्यारे तयाप्रकारना धर्मनो आदर करे ते समये, आदर
कर्या पछी, एव धर्मना अतमा ज्या देखो त्या मोदक के
साकरनी माफक सुदर फलने ज अर्पण करे छे अर्थात् तेनो
कोइ पण अश एवो नथी के ज्या कल्याण ज न होय. डुकमा

४-“असमवो नाम जक्ष्यमात्रे क्षुत्रापि लक्षणासत्त्वम्”
जक्ष्यमा लक्षण सर्वथा क्षात्रु न थाय ते असमव, यथा ‘गो’ नु
लक्षण ‘गो’ मा क्षात्रु ज न थाय ते

सर्व शास्त्रोने मान्य अने सर्वया कल्याणफलप्रदाता एवा
आ धर्मना स्वलक्षणानी परीक्षा विद्वानोए प्रथम तथासवी.

आटलो उदेश कर्या पछी धर्मनु स्वलक्षण क्यु छे ? ए
प्रश्नना उत्तरमा आचार्यश्री हवे बीजी आर्यामा धर्मनु स्वलक्षण
प्रकाशे छे

धर्मश्चित्तप्रभवो यत

क्रियाधिकरणाश्रय कार्यं ॥

मलविगमेनैतत्त्वलु

पुष्ट्यादिमदेष विज्ञेयः ॥ ३-२ ॥

मूलार्थः—चित्त-मनयी जे उत्पन्न याय ते धर्म कारण
के विधि, प्रतिपेयरूप क्रिया मनयी ज प्रवर्ते छे अने आ क्रिया
ते तो कार्यरूप छे, तथा क्रियारूपी कार्यनु अधिकरण—स्थान
शरीर ज छे एव क्रियाप्रेरक मन शरीराश्रयी छे, एटले पुष्टि
अने शुद्धिए करी अलंकृत एउ जे मन तेनी जे प्रवृत्ति ते ज
निश्चयेन धर्म जाणवो

“ धर्मलक्षण ” (यशोभद्रसूरिजी)

स्पष्टीकरणः—आ आर्यानी व्याख्या ‘ यशोभद्र-
सूरिजी ’ यी उपाध्यायजी, सर्वया मित्र रीते करे छे.
एटले उपाध्यायजी यशोभद्रसूरिजीनी टीकाने हस्त-
स्पर्श सरखो पण करता नथी एटलु ज नहीं किन्तु जे

वाचतमा यशोभद्रसूरिजी दोष जाहर कर छे ते वाचने पोते पहैला स्वीकार छे, माटे अही उभय टीकाकारोनो आशय समजवा वाचको पासे उभयया नीकलतु स्पष्टीकरण अमे पण अलग अलग धर्यु छे एके टीकाकारना आशयनी लघुता करवा अमे साहस नहीं करी शकता परमार्थ तो विद्वानोए ज विचारवो

अथरुर्त्ता धर्मनु लक्षण दर्शन छे लक्षणनु लक्षण गत आर्याना स्पष्टीकरणमा तपासी गया तथाप्रकारे अही पण घटना पाठकोए करी लेवी. " चित्तप्रभवो धर्मः " "चित्त-मननी उत्पत्तितेजधर्म" चारित्र-वर्तनमात्र, क्रियारूप प्रवृत्तिमात्र मनपूर्वक ज थाय छे, एटले हृदयना सकल्यो ते ज अही धर्म जाणवो, कारण के श्लोकात्गत ' चित्तप्रभवो ' ए वाक्यनो विशेषणसमाम अत्र स्वीकारवो " चित्त स चासौ प्रभवश्च चित्तप्रभवः " " चित्त-मन तेनो ज प्रभव-ज-म-आविर्भाव तेज चित्तप्रभव " एटले आनु नाम धर्म. अत्रस्य यत् शब्दथी चित्तनु ग्रहण करवु. परमार्थ ए के-कोरुपण विधेय या निषिद्ध क्रियामां आत्मानी गति थाय छे ते मननी प्रेरणा विना तो नहीं ज, एटले मननी इच्छाद्वाराए क्रियाकाड बने छे; माटे चित्त ए क्रियोत्पादक होवाथी कारण जाणवु अने क्रिया ए निष्पन्नमान होवाथी तेने कार्य कस्यु छे हवे जे क्रियाओने जन्म आपनार मन छे ते काइ निराधारपण स्वतंत्र रही शकतु नहीं, तेमज क्रियाओ पण मनना

आधार उपजती नहीं, किन्तु—“ अधिकरणश्रय कार्य ”
 अत्र अधिकरणश्रय शब्द सामान्येन आधारवाचक है तो पण
 प्रकरणवशात् मनसु जे अधिकरण—आश्रयस्यान शरीर ते ज
 लेवु. हेतु ए वै—शरीरना आधारे ज मननी अत्रस्थिति होय छे
 अने क्रियाओी सर्व शरीरद्वाराए ज वने छे. तत्त्व पटलो के—
 मनयी इच्छाओी थाय, पश्चात् शरीरद्वारा आत्मा चेष्टाओी—नया
 नवा व्यापारो करे छे अत जे चित्त इच्छाओी करे छे ते ज
 चित्तनु नाम अही धर्म जाणवो पटले के—शरीरद्वारा जे जे
 कार्यो थाय छे ते धर्म न समजवो, किन्तु ते तो चित्तरूप
 धर्मना व्यापारकार्यो जाणवा आ परयी जेओो शरीरनी
 यथेष्ट अमुक जातनी क्रियाप्रवृत्तिने धर्मपणे निर्देश करे छे
 तेओो भ्रान्त छे—धर्मलक्षणधी अनभिज्ञ छे पटलो निर्णय
 समजवो. दुःकृमा टीकाकारना मतधी दान, पूजा, सांपायिक
 आदि ए बहुये धर्मनो व्यापार छे धर्म तो आतरनु जे तथा-
 प्रकारनु मन ते जाणवो छता आ क्रियाओीने धर्मतया माहपुर्यो
 व्यवहार करे छे ते तो धर्मनो क्रियाया कारणनो उपचार करीने ज,
 पटले कारण कार्यने जरूर पेदा करे जे कारण कार्यने पेदा
 न करे ते कारण ज न कहेवाप आधी जेओो क्रियाप्रवृत्ति विना
 अथवा क्रिया अथ छे एम कही क्रिया नकामी जणावी स्वा-
 त्माने मननी पवित्रता माप्रयी धर्मी माने छे तेओो पण नितान्त
 भ्रान्त छे एम समजवु, कारण अही तो टीकाकार, क्रियो-
 त्यादक एवु जे मन तेने ज धर्म जणावे छे. प्रथम कहा प्रमाणे
 अही विशेषणसपास स्वीकारवाधी ‘चित्त’ ए विशेषपदार्थ

अने ' धर्म ' ए विशेषण पदार्थपणे स्थिर
 याय छे एटले अर्ही जे जे विशेषणो आप्या छे ते
 सर्वने ' चित्त ' नी साथे घटाववा अर्थात् आ विशेषणो
 चित्तने सम्यक्तया लागु यइ शके छे यदि आ प्रमाणे समास
 न स्वीकारता " चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः "
 " चित्तधी-मनधी जे पेदा थाय ते चित्तप्रभव " धर्म जाणवो.
 ए रीते कर्मकारय समास स्वीकारीए तो ' धर्म ' विशेष्य अने
 चित्त विशेषण थाय आप यवार्था श्लोकोक्त सर्व विशेषणो
 ' धर्म ' ने ज लागु करवा जोइए फरी यत् शब्दधी पण ' धर्म '
 पदनु ग्रहण करवु घटे आ स्थितिमा श्लोकनो भाव दुगम्य
 यइ जाय छे एटले एके विशेषण ' धर्म ' पत्नी साथे बधवेसतु
 नधी-बधुमा द्विष्टता प्राप्त थाय छे आ दोषो उपजता
 होवार्थी प्रारभोक्त समास स्वाकारी ध्यारया समजाववी अनुकूल
 यइ शके छे

“ लक्षणमा बधारो ”

उपर कथित लक्षणवाळो धर्म स्वीकारवार्थी चोरी, झूठ,
 व्यभिचार, हिंसा आदि क्रियाने पण धर्मतया व्यवहार करवो
 जोइए, कारण के ते ते व्यवहारो पण मनधी ज पेदा थाय
 छे, मन विना एक पण विशिष्ट शुभाशुभ कार्य यतु नयी
 अत ए आपत्तिने दूर करवा ग्रथरुत्ता उपरोक्त लक्षणमा बधारो
 करवानु जणाव छे “ मलविगमेनैतत्स्वल्नु पुष्टयादि-
 मदेप विज्ञेयः ” अत्र ' स्वल्नु ' शब्द निश्चयार्थवाचक जाणवो.

एतले ' निश्चयेन राग, द्वेष, मोह आदि रहित मळो अने पुष्टि तथा शुद्धिमय एवु जे चित्त ते ज धर्म विद्वानोए जाणवो ' जे चित्तभाषी राग, द्वेष, मोहना भावो-विकारो वगरनी इच्छाओ जन्मे अने ते पण आगल जेनु स्वरूप कहेवाशे तेज प्रकारनी पुष्टि तथा शुद्धिमय होय ते ज ' चित्त ' ने अही धर्म मान्यो छे. अतएव धर्मनुं अव्याहत लक्षण भा प्रमाणे छेवटे सिद्ध ययु " मलविगमेन पुष्ट्यादिवत् चित्तप्रभवो धर्मः " " मळ रहित अने पुष्ट्यादिमय एवा चित्तनो जे आविर्भाव ते धर्म " आयी चोरी विगेरे विकारवाळु मन मलरहित न होवायी तेने धर्म न ज कहेवाय निदान के-पवित्र चित्तनी वासनाओ, अध्यवसायो अने तज्जन्य पवित्र क्रियाओने ज वास्तव धर्म कही शक्याय.

“ धर्मलक्षण ” (उपाध्यायजी)

“ धर्मश्चित्तप्रभव ” ‘ चित्तयी उत्पन्न याय ते धर्म ’ चित्त-मनयी जे जे कार्यों प्रवर्ते तेनु नाम अत्र धर्म जानवो एतले के-“ चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभव ” ए श्रुतु कर्मकारय समाप्त स्वीकारवायी उपरोक्त अर्थ अविन्दनो प्राप्त थाय छे परमार्थ ए के-खाली आश्रय वगरनी संसृष्टिम जेयी क्रिया ते अही धर्मतया अभीष्ट नयां मर्सां, मर्सां शून्य क्रिया ते तो अही एक व्यवहार तुल्य स्वाहारां द्वे आ परयी अही आठलु जाणवु के मनना 'सकलपूर्वक आन्वाना द्वे प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यापार तेनु नाम धर्म.

केवल सकल्पमात्रने उपाध्यायजी धर्मतया स्वीकारता नथी आ व्याख्यामा 'यत्' शब्दो 'धर्म' साधे संबध करी उपाध्यायजी कह छे के 'यतः धर्मात्' जे माटे धर्मधी, विहित क्रियानु आचरण अने निषिद्ध क्रियानो त्याग तद्रूप क्रियानी प्राप्ति थाय छे. फरी मूलस्थ अधिकरण शब्द अधिकारवाचक छे एटले क्रियारूप जे अधिकार तेना निमित्तयो-आश्रयधी भवि आत्माने ससाग्नी उदामीनता, विषयधी विमुखभावरूप कार्यो निष्पन्न थाय छे मनधी धर्म, धर्मधी क्रिया, तथा क्रियाना आधारधी भवनिर्वेदरूपकार्योनो जन्म थाय छे; माटे अत्र 'चित्तप्रभवो धर्मः' ए रीते धर्मनु लक्षण जाणवु.

“ विशेष कथन ”

आ व्याख्यामा “ यत्, अधिकरण, क्रिया, कार्य ” आ शब्दोना संबध माटे, तेना अर्थ माटे अन्यान्य कल्पनाओ के अधिक विचारो करवानी सुरकेलीओ नहती नथी. अही मार्गानुसारीनी जे प्रवृत्ति ते धर्म जाणवो आ लक्षणवाळो धर्म मार्गानुसारीमा सभने, परतु अमव्य के दुर्भव्यमा आ धर्म न होय कारण क त्या तो मनना धर्मोय सकल्पपूर्वक विहिताचरण अने निषिद्ध त्यागरूप क्रियानो समब ज न होय

“ लक्षणवृद्धि ”

आ ' धर्म ' पण रागादि मलविकारो रहित अने शुष्टि शुद्धिवाळो ज जाणवो. एटले रागादि विकारवान्

चित्तना अभिप्रायपूर्वक जे क्रियाव्यवहार ते अर्ही धर्मपणे स्वीकार्ये नथी. निदान के-अत्र ' धर्म ' पद विशेष्य होवार्थी ' मलविगमेन पुष्ट्यादिमत् ' ए शब्दो धर्म-पदना विशेषणपणे जाणवा अतः आ व्याख्यापक्षमा " चित्तप्रभवः मलविगमेन पुष्ट्यादिमान् धर्म. " ए प्रकारे धर्मनु अव्याहत लक्षण जाणवु

“ तारवण ”

सारास के-उभय पक्षमा ' धर्म ' ना लक्षणमा अने तेना परमार्थमा भेद नथी मान्यो, मात्र श्लोकोक्त पदोनो भाव क्यो निकालवो ? समास क्यो लेवो ? अने विशेष्य विशेषणपणे कया पदो स्वीकारवा ? अमुक शब्दो कोना साथे सवध जोडवो ? आटलो ज भेद पाड्यो छे मूल वस्तुने बाधा न थाय तेवी रीते अन्यान्य युक्तियो व्याख्याओ करवी तेमा शास्त्रीय विरोध आचार्योए मान्यो नथी. मथप व्याख्यामा मनने धर्म मान्यो छे अने मनोविचारजन्य क्रियाने उपचारथी धर्म क्यो छे, प्यारे उपाध्यायजी मनोविचारजन्य अध्यवसायपूर्विका क्रियाने विना उपचारे सीधी रीते धर्म कहे छे, आटलो भेद उभय पक्षमा छे खरो वच्चे पक्षमा जे लक्षण धर्मनु दर्शाव्यु छे ते एवु छे के सर्वदर्शनमान्य थाय, कोइ पण दर्शनवाला गमे तैटली युक्तियोथी अत्रोक्त धर्मलक्षणानु खडन करवा समर्थ नथी, एव आ लक्षण सर्वतो फल्यमानप्रवृत्तता एव

अवश्यमेव छे अत धर्म परीक्षक बुधजनोए धर्म स्वीकारवा पहला आ लक्षण ध्यानमा राखी तथाप्रकारनो धर्म स्वीकारवा प्रयत्न करवो एटले ज्यारे आ लक्षण अव्याहत रीते समन्वित थाय त्यार ज ते सत्य अकर्तृम धर्म छे एवु समजबु. परमार्थ ए के-आवो 'धर्म' सर्वज्ञप्रवचन सिवाय अन्यत्र पामवो अशक्य ज छे ।

“धर्म’ नालक्षणमा “मलविगमेन पुण्ड्यादिमद्” ए जणाव्यु तो अर्ही मलो क्या ? अने चित्त अथवा धर्मनी पुष्टि-शुद्धि ते केवी रीते ? आ भाव दर्शाववा श्रोताप्रति आचार्यश्री कयन करे छे ”

रागादयो मला

खल्वागतसद्योगतो विगम एषां ।

तदय क्रियात एव हि

पुष्टि शुद्धिश्च चित्तस्य ॥ ३-३ ॥

मूलार्थ—राग, द्वेष, मोह आदि मनना मेलो छे, आ मलोनो निश्चयेन आगम-सर्वज्ञप्रवचनना सद्बुद्ध्यापारथी नाश थाय छे; माटे सत्क्रियाथी ज आ मननी पुष्टि-पुण्यवृद्धि तथा चितनी शुद्धि-निर्मळता सुदर रीते वने छे

“ मनना मेलो ”

स्पष्टीकरण—“रागादयो मलाः” शुद्ध पदार्थने जे

अशुद्ध-अपवित्र करे ते मल पवित्र बहने मटी, काजल आदि मलिन करे छे, मणि अने काचनने माटी अशुद्ध कर छे माटे ते तेना मलो कहेवाय छे. एव शुद्धभावम्य आत्मा तथा मनने रागादिको मलीन-अपवित्र बनावे छे, अतः ते तेना मलो कया. “ रजन राग, द्वेषण-कोपन द्वेषः कोपः, मोहन मोह. ” जेनाथी आत्मा-चित्त रगाय-सुशी थाय-प्रेमी बने ते, जेनाथी आत्मा-चित्त द्वेषी-क्रोधी अने-तपी जाय-अग्निस्वरूप धारण करे ते अने जेनाथी आत्मा-चित्त व्याकुलता पामे-लिपटाय जाय-सुग्य बना आसक्तिपूर्वक मूर्च्छा धारण करे ते अनुक्रमे राग, द्वेष तथा मोह आदि मलो विकार-कारको जाणवा

“ मलिनो प्रभाव ”

जेम माटी आदि मलना सयोगथी मणि, काचननु असल स्वरूप बहार आवतु नयी अने तेम थवायी मणि अने काचन माटी जेट्या ज आदरणीय अने निर्मूल्य धरावर गणाय छे तथाप्रकारे अर्ही आत्मा या चित्त ज्या सुधी आ मलोनी सगतीमा रही रागी, द्वेषी, मोहीपणु धारण करे त्यासुधी आत्मा पोताना अमल स्वरूपयी दूरतर ज रहे छे अने आत्मा आदरभाअने रुदापि पामतो नयी. ए तो अपारे माटी आदिना सगयी निर्मुक्त थाय तपारे ज मणि अने काचन मूल्य पदार्थनी आने छे तथाप्रकारे हण्डे मकटवो - - - - - रोगभाव, अनिष्ट

भाव अने विषयो, लक्ष्मी, स्वजनो, शरीर आदिनो मोहभाव
 दूर करे—अल्प करे तो ज आत्मा आदर पामे—अमूल्य पदार्थनी
 पक्तिमा आवे परमार्थ ए के—आत्मा असळयी सर्व पदार्थनो
 साक्षात् मफटकर्ता, सर्वनो दृष्टा, अनंत अनिरूपम सुखनो भोक्ता,
 अनंत उपमातीत बल धारणाकर्ता, केवल सत्-चित्-आनंद
 ए त्रिपुटीनो मालिक, दुःख, क्लेश, विषयविकार रहित एक
 अलौकिक ज्योतिरूप पदार्थ छे रागी, क्रोधी, मोही आदि
 भावो आत्माना नथी परतु अनादिथी आ सर्व विकारो—मलो
 आत्मापर घेरो नाखीने पढ्या छे, जेथी—“ जेम सिंहनु वच्चु
 माता मरी जवा पछी शियालना समूहमा उछरी मोडु थवा
 पछी पण शियालना समागमथी पोते सिंह—शृगालशत्रु छता
 स्वात्माने शियालपणो ज मानवा लाग्यु ” तेम आ आत्मा पण
 ते ते मलोना ससर्ग—एकाकार सबधयी पोताने तथामकारे
 रागी, द्वेषी, मोही, विषयीपणो माने छे अतएव—आ विकारो
 आत्माने मलीन—अपवित्र आन्तकर्ता होवायी शास्त्रकर्त्ता मह-
 र्षियो तेओने मलतया व्यवहरे छे. आ मलोनु विस्तृत स्वरूप
 शास्त्रोपा अनेरु स्थळे वर्णव्यु छे अर्ही तो मात्र श्लोकनो
 भाव देखाडवा पूरतो ज अमारो प्रयास छे. एटले कथायोना
 विस्तृत विचारमा उत्तरनु ते अथनु कलेवर बधारवा जेबु होवाथी
 अमे नथी उत्तर्या अथवा ज्या जेटला विवरणनी जरु छे त्या
 तेटलो विचार अवसरे आपवा अमे प्रयत्न साचवीशु—

“ मलो घोवानो भार्ग ”

मणि तथा काचने लागेल माटीरूप मल शास्त्र-अग्नि
आदिनी क्रियाद्वाराए दूर थाय छे, एव आत्मा-चित्तने लागेल
पूर्वोक्त मलोनी दूर करवानो उपाय अयकर्ता जयावे छें
“ आंगमसद्योगतो विगम एषा ” ‘ जिनप्रणीत जे
आंगम तेना सदबोध-सम्यग्ज्ञानथी आ मलोनी विगम-नार्ग
याय छें. ’ “ शियोंल्लिभूत सिंहने ज्यारे अन्य सिंहनी समागम
ययो अने तेणो क्यु के-भाइ ! तु पण मारा जेवो ज छे आ
दोजापा तुं क्यायी भळ्यो ? आ लोको तो आपणो खोराक छे
तने विश्वास न आवतो होय तो तु विचारी जो के तारु शरीर,
वर्ण, आकृति, शब्द अने क्रियाओ आ लोकोथी केटला जुदा
छे ? आ वेचन श्रवण कर्या पछी ज्यारे तेणो विचार्यु अने वरा-
धर समजायु त्यारे सिहनाद कर्यो एटले पोताना, स्वरूपने
तेणो ओळखी लीधु ” ए ज रीते थर्ही पण आत्मानु अनादि
शुद्धरूप अने रागादि भावोनी विकार आ पञ्चेनी मिन्नता,
कर्मोनी लीला अने स्वरूप, पुद्गल अने पोतानो भेद, ज्ञानादि
गुणोनी चमत्कार, समति तथा दुर्मतिना कारणो, उपादेय
क्रियाओनुं आचरण, हेय भावानी त्याग-आ सर्व पदार्थने
प्रकाडतया जणावनार एवु जिनभगवतना आंगमनु ज्ञान आत्माने
प्राप्त यवाथी पोतानु कर्तव्य तेने समजाय छे. एटले आत्मा
विदिताचरण अने निषिद्धना त्यागरूप क्रियाया प्रवर्तन कर छे,
जेथी उपरोक्त मलोनी अवश्यमेव नार्थी ज याय छे निदान के-

आत्मा पीताना असल स्वरूपने समजी मलस्वरूपयी अलग
 यवा प्रयत्न कर छे अतएव—‘तदय क्रियात एव हि’
 आ क्रियाद्वाराए ज मलो नाश यवायी ‘पुष्टि’ शुद्धिअ
 चित्तस्य’ चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि वने छे अत्र पुष्टि अने,
 शुद्धिनु स्वरूप उत्तर श्लोकमा दर्शावशे ते अहीं जाणवु
 अर्थात् पूर्व श्लोकमा ‘पुष्ट्यादिमत्’ ए प्रकारे चित्तनु
 विशेषण कछु हतु तेमा पुष्टि-शुद्धि चित्तनी क्या प्रकारे
 थाय ? ए शकानो प्रत्युत्तर आ श्लोकना स्पष्टीकरणयी
 समजाइ जाय छे

“मलोनो विगम यवायी चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि प्रगटे छे
 ए भाव गत आर्यामा दर्शाव्यो अहीं पुष्टि तथा शुद्धिनु स्वरूप
 शु ? आ शसयने दूर करवा पाटे अत्र आचार्ययी पुष्टि अने
 शुद्धिनु लक्षण दर्शावे छे.”—

पुष्टिः पुण्योपचय

शुद्धि पापक्षयेण निर्मलता ॥

अनुबंधिनि द्वयेऽस्मिन्

क्रमेण मुक्तिः परा ज्ञेया ॥ ३-४ ॥

मूलार्थ—पुण्य-शुभकर्मनो उपचय-वृद्धि ते अत्रे
 पुष्टि, तथा पाप-अशुभकर्मनो क्षय-नाश यवायी चित्तनी जे
 निर्मलता-स्वच्छता ते अहीं शुद्धि जाणवी आ उभयना अनु-

बध-परपराधी अनुक्रमे आत्मानि उत्कृष्ट मुक्ति धाय छे ए तत्त्व जाणतु.

“ पुष्टि-शुद्धि लक्षण ”

स्पष्टीकरण—“ उपचीयमानपुण्यता पुष्टिः ” अनुक्रमे पुण्य-सुखरूप फलप्रदाता कर्मनी शुद्धि तेनु नाम अत्रे पुष्टि अभिहित छे, अत्रे पूर्ववद्ध ज्ञानावरणीयादि सम्यग्ज्ञानादि गुणघातक कर्मनो अनुक्रमे क्षय धवाधी आत्मानि स्वच्छता ते अर्हां शुद्धि मानी छे तत्त्व ए के-पूर्व श्लोकमा दर्शाव्या प्रमाणे आत्मा सिद्धान्तज्ञानना सयोगधी पवित्र एवी दान, तप, शील, पूजा, इन्द्रियदमन, कषायविजय, सामायक आदि क्रियाश्रोनु आचरण तथा हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन आदि पापक्रियानो त्याग करे एटले आ क्रियाद्वाराए आत्मा अत्रे तदाधारभूत चित्त बन्ने पवित्रतर धवाधी शुभ-पुण्यकर्मनो ज बध करे छे, भविष्यमा जेधी सुख मळे तेवा ज कर्मो बाधे छे अत्रे सम्यग्ज्ञानादि गुणोनो नाश करनार एवा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अनराय, मोहनीय ए चार घातीकर्मनो अनुक्रमे नाश करे छे. आधी आत्मा तथा तत्सवधी चित्त उभय स्वच्छ-निर्मल धाय छे अत्रे दर्शित चारे कर्म आत्माना मुख्य एवा ज्ञान, दर्शन, एकान्त शुद्ध स्वरूप तथा वीर्य गुणोनो नाशकर्ता होवाधी ते घातीकर्म कक्षा छे. अत्र क्रियाद्वारा पापकर्मनो नाश सर्वथा अथवा देशधी धाय ते उभयथा निर्मळता समजवी आ-स्थळूमा, मूळकर्ताए जे ‘ चित्त ’नी निर्मळता-

ज्याही 'चित्त' शब्दनु ग्रहण कर्युं छे आधी अत्रे चित्त शब्दधी भावमनरूप आत्मा ज जाणवो. 'चित्त' द्रव्य अने भाव एम वे प्रकारनु कह्युं छे आत्मा औदारिक आदि स्थूल देहना मयत्नधी विविध विक्ल्पो-विचारो करवा माटे मनो-वर्गणाना द्रव्योने ग्रहण कर छे जे द्रव्योवटे आत्मा अनेकधा विचारो करे छे आ द्रव्यनु नाम जैनशास्त्रकारो द्रव्यमन कहे अने विचाररूप अथवा विचारकर्ता आत्मा ते अर्ही भावमन मान्यु छे, तेमा द्रव्यमन पुद्गलस्वरूपी होवायी तेनी पुष्टि-शुद्धि दर्शावामा कइ तत्त्व नथी मात्र विचाररूप जे भावमन तेनी ज पुष्टि अने शुद्धि कर्मनाशद्वारा यवायी अर्ही आ विचार-रूप भावमननु ज ग्रहण कर्युं छे, परंतु द्रव्यमन लीधु नथी. हे आ पुष्टि तथा शुद्धिनु फल उत्तरार्थधी आचार्यश्रीं जणां छे

“ पुष्टि शुद्धिनु फल ”

उपरोक्त पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबंध-परपरा चालवायी अर्थात् प्रथम दर्शवेल क्रियाओमा निरंतर प्रवृत्ति करवाधी, कदापि क्रियामा तुटीयो न आववायी, क्रियाधी भ्रष्ट मनने पण अनुसंधान करी पुन क्रियामा दाखल करी अस्खलित क्रियाओ करवायी आत्मा शुभकर्मनो बंध अने अशुभ-पाप-कर्मनो क्षय अधिकाधिक कर्ये जाय छे. आधी परिणामे आ जन्ममा के परजन्ममा अधिक शक्ति विस्तारी ते ज क्रियाना अभ्यासबलधी शुभाशुभ उभय कर्मनो सर्वथा नाश करी

मुक्तिस्थान आत्मा पामे छे, निदान के-आ जन्ममा यदि आ आत्माणी मुक्ति न थाय तो पण अभ्यास करेल ते ते क्रियाओधी उत्तर (पर) जन्ममा उच्च स्थान पामी त्या तेने ते ज क्रियाना सस्कारो उदयमा आवे छे, अने फरी आ सस्कारनु पटलु उच्छृष्ट बल आत्मा पामे छे के जेथी पोते सर्व कर्मनो क्षय करवाने समर्थ बने छे पटले आत्मा तात्त्विकी मुक्ति जवर पामे छे. आ ज परमार्थ दशवैकालिम्ना चतुर्थ अध्ययनमा शय्यभवभूरिजी मानकमुनिजीना कल्याण माटे बहु सुदर रीते जणावे छे, जेनो दुक भावार्थ पाठकोने उपयोगी धारी अमे अर्ही आप्यो छे.

“ क्रियानो अनुषध ”

“ जो आत्मा जीवादिकनु स्वरूप बराबर समजे तो पछी
 “ विषयमोगादिकर्था अवश्य विरक्त थाय, पटले गमे तेजा
 “ सुदर पण भोगीनो बाह्य-आभ्यतर उभय रीते त्याग करे,
 “ अने आ त्याग-परिणाम प्राप्त यवाधी आत्मा अवश्यमेव गृह-
 “ संसारधी विमुख यइ अनगार-साधुपणु स्वीकारे साधुपणु
 “ स्वीकार्या पछी स्वात्पाना पूर्ण कल्याण माटे उच्छृष्ट संसर-
 “ मार्ग (जेथी नवा कर्मन आवे)मा आरूढ यइ असाधारण
 “ धर्ममा स्थिर थाय छे आधी मिथ्यात्वभावधी पूर्वोपार्जित
 “ कर्मरूपी रजनो नाश करे छे, कर्मरजनो नाश करवाधी
 “ आत्मा सर्व पदार्थने प्रकाश करनारु पबु केवलज्ञान पामे छे,
 “ लोकालोकनु स्वरूप जाणनार केवलज्ञानी जिनभावत बने
 “ छे, केवलज्ञानी यथा वाद अवशेष कर्मनो सर्वथा नाश करवा

“ माटे मन, वचन, कायाना योगीनो निरोध करी शैतेशि
 “ भाव पामे छे एटले समग्र कर्मयी छूटी सिद्धिस्यानमा चौद
 “ राजलोकना मस्तक भाग पर बीराजी शाश्वत एतु सिद्धस्व
 “ रूप प्राप्त करे छे.” ए रीते उत्तरोत्तर पवित्र त्रियामा आगळ
 “ वधवाधी आत्मा आत्मानु पूर्ण कल्याण करे छे ए ज वात
 “ सत्तेपमा भ्रमे आगळ जखावी गया छीए जेओ चारित्र-
 “ पतित थया होय तेना माटे पण कष्टु छे के-पच्छावि ते
 “ पयाया, खिप्प गच्छति अमर भवणाइ । जोसि
 “ पिओ तवो, सजमो अ स्वती अ य भचेर च ” ॥ १ ॥
 “ जे आत्माओ प्रथम चारित्रभ्रष्ट थया होय परतु पाळळधी
 “ समार्गमा आरूढ थइ आराधना पामे छे तेओ मत्यु पामी देव-
 “ विमानोमा उपजे छे क जेओने तप, मयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य
 “ आदि गुणो पर प्रेम होय छे ” परमार्थ ए के-उपरोक्त
 क्रियाधी छेवटे देवलोकमा पण आत्मा जाय छे.

जेओ आ उपरोक्त पुष्टि-शुद्धिनो अनुबध पामे तेओ मुक्ति
 पामे छे ए भाव गत श्लोकना अतमा कह्यो, तो आ ‘ अनुबध ’
 कोण न पामी शके ? तेनो खुलासो ग्रथकर्ता अत्रे जखावे छे.

न प्रणिधानाद्याशय-

सविद्व्यतिरेकतोऽनुबधि तत् ॥

भिक्षग्रथेर्निर्मल-

बोधवत्. स्यादिय च परा ॥ ३-५ ॥

मूलार्थः—प्रणिधान आदि पाच धर्पना अध्यवसाय स्थानो
 आगल दर्शने छे, आ अध्यवसायनो जेने बोध न होय तेओने आ
 पुष्टि-शुद्धिनो अनुबध पण न होय, तेपज जेओप ग्रंथीभेद कर्यो
 छे अने उचम एवो शास्त्रनो बोध प्राप्त कर्यो छे तेओने तो आ
 पुष्टि-शुद्धिनो अनुबध उत्कृष्टतया होय ज

“ अनुबध साधनो ”

स्पष्टीकरण —‘ पुष्टि तथा शुद्धि ’ ना अनुबधमा
 सिन्तु मुख्य साधन ‘ प्रणिधान ’ सिंगेर पाच आशयन्तु ज्ञान
 अने अनुभव अर्ही मयकर्ता दर्शने छे. आ ‘ प्रणिधान ’ आदि
 पाच अध्यवसायन्तु स्वरूप अने तेना नामो शास्त्रकर्ता आगलना
 श्लोकोधी जणावशे यत्रपि अतःकरणधी उबूमवता
 विचारो अनेक प्रकारना कथा छे तो पण धर्मक्रियाना
 पोषक अने वर्धक एवा सर्व अध्यवसायो पाच अध्यव-
 सायनी अतर्गत होवाधी विशिष्टपणो पाचज अध्यवसायो
 जाणना अर्ही आचार्यधी जणावे छे के—आ प्रणिधान
 आदि अध्यवसायन्तु प्रथम धरावर ज्ञान याय अने
 त्वारपछी तेनो जेने योग्य रीते अनुभव ययो होय तेने ज
 आ दर्शित ‘ अनुबध ’ नो लाभ याय पटले के-जेने
 आ अनुभव नयी मल्यो तेने ते ‘ अनुबध ’ नो लाभ न ज
 याय अतः टीकाकार पण मूलस्य ‘ सवित् ’ पदनी व्या-
 ख्यामा “ सवित् संचित्तिः सवेदनमनुभवः ” सवित्

एतले ज्ञान, सवेदन-अनुभव-आ उभयनो ज्या ' व्यतिरक्त ' अभाव होय त्या पुष्टि-शुद्धिना अनुबधनो पण अभाव जाणवो एवो भाव देखाव्यो छे परमार्थ ए कै-मयम हृदयनी फाईक स्वच्छता थाय तयारपछी ज पवित्र एवा आ अध्यवसायोनी आविर्भाव थाय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीत्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावो ज्या सुधी घर करीने वेठा होय त्या सुधी तो न ज थाय, माटे शास्त्रकर्ता आ ' अनुबध ' कोण पामी शके ? एनो सुलासो उत्तरार्थयी जणावे छे

“ ग्रथीभेद ”

“ भिन्नग्रथेर्निर्मलबोधवत्तः ” ग्रथीनो भेद जेणो कर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने “ स्यादियं च परा ” आ उत्कर्षवती ' अनुबधश्रेणी ' नी प्राप्ति थाय अत्र ग्रथीभेदनु स्वरूप आरीते जाणवु समकित-शुद्ध मान्यता प्रति जेणो बळ्या होय अथवा बळवा तैयार होय-थशे तेणो ज आ ग्रथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे आत्मा अनादिथी मिथ्यावासनाथी आकठ घेरायेल होवार्थी सत्य पदार्थनु ज्ञान अने मान्यता करी शकतो नथी, अतएव जे आत्मा प्रथम तो आ ससारमा रुलतो रुलतो अने अनंत कष्टो भोगवतो थको जेम पर्वतथी उतरती नदीना जलप्रवाहमा तणाता अथडाता-
स्वयमेव चोखूणा, त्रिखूणा, गोळ यइ जाय छे

तयाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व
 वीर्यबलधी आयुष्य सिवायना सात कर्मोनी बृहत् स्थितिनो नाश
 करी मात्र पल्योपमना असख्यात भागन्यून एरु कोटाकोटी
 सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मूके अर्हीथी आगळ
 बधवा जेटलु बल जेओमा नधी होतु, तेओ तो अर्हीथी ज पाछा
 पढी जाय छे अने घणाओ अर्ही ज उभा रहे छे, कारण के
 आ स्थलमा दुर्भेद्य वशनी गाठ जेवी रठोर रागद्वेष
 परिणतियो उपस्थित याय छे जेथी आत्मा पाछो पढी जाय
 छे आने ज महर्षियो ग्रथी कहे छे. अभवि आत्माओ अर्ही
 सुधी अनतीवार आवी आवीने पाछा बळी गया छे, एव
 अर्ही भवि अभवि असरयकाल यावत् स्थिर पण याय छे
 यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व
 पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छता तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान
 कष्टु दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकित्तीने ज होय.
 “ अउदस दस य अभिन्ने नियमा सम्म तु सेसए
 भयणा तु ” हवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्व-
 करण-अद्भुत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रथीने
 मेदी नाखी मिथ्यात्वस्थितिना उदयकाल सर्वथा अतर्मुहूर्त्त
 काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भयियमा
 उदय आवनार एवा अतर्मुहूर्त्तकाळ जेटला ज मिथ्यात्व-
 कर्मना प्रदेशोने नाश करी शके एवु ‘ अन्तरकरण ’
 नामे कोइ सर्वोत्तम बलवडे रचे छे अर्ही

एतले ज्ञान, सनेदन-अनुभव-आ उभयनो ज्या ' व्यतिरेक ' अभाव होय त्या पुष्टि-शुद्धिना अनुभवनो पण अभाव जाणवो एवो भाव देखाळ्यो छे परमार्थ ए के-प्रथम हृदयनी काइक स्वच्छता याय तयारपळी ज पवित्र एवा आ अभ्यवसायोनी आविर्भाव याय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीव्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावां ज्या सुधी घर करीने वेठा होय त्या सुधी तो न ज याय, माटे शास्त्रकर्ता आ ' अनुभव ' कोण पामी शके ? एनो खुलासो उत्तरार्थधी जणावे छे

“ ग्रथीभेद ”

“ भिन्नग्रंथोर्निर्मलबोधवत्तः ” ग्रथीनो भेद जेणे फर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने “ स्यादिय च परा ” आ उत्कर्षवती ' अनुभवश्रेणी ' नी प्राप्ति याय अत्र ग्रथीभेदनु स्वरूप आरीते जाणवु समकित-शुद्ध मान्यता प्रति जेओ वळया होय अथवा वळवा तयार होय-थशे तेओ ज आ ग्रथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे आत्मा अनादिधी मिथ्यावासनाधी आकठ घेरायेल होवाधी सत्य पदार्थनु ज्ञान अने मान्यता करी शक्तो नयी, अतएव जे आत्मा प्रथम ते आ ससारमा रुलतो रुळतो अने अनंत कष्टो भोगवतो थको जेप पर्वतधी उतरती नदीना जलप्रवाहमा तणाता अथडाता अथडाता पथ्यरो स्वयमेव चोखूणा, त्रिखूणा, गोळ यइ जाय छे

तथाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व
 वीर्यवलयी आयुष्य सिवायना सात कर्मोनी वृहत् स्थितिना नाश
 करी मात्र पत्योपमना असख्यात भागन्यून एक कोटाकोटी
 सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मुके अर्हीथी आगळ
 वधवा जेटलु बल जेयोमा नथी होतु, तेओ तो अर्हीथी ज पाछा
 पडा जाय छे अने घणाओ अर्ही ज उभा रहे छे, कारण के
 आ स्थलमा दुर्मेय वशनी गाढ जेवी कठोर रागद्वेष
 परिणतियो उपस्थित थाय छे जेथी आत्मा पाछो पडी जाय
 छे आने ज महर्षियो ग्रथी कहे छे. अभवि आत्माओ अर्ही
 सुर्षा अनतीवार आवी आधीने पाछा वळी गया छे, पव
 अर्ही भवि अभवि असख्यकाल यावत् स्थिर पण थाय छे
 यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व
 पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छता तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान
 कष्टु दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकितीने ज होय.
 “ चउदस दस य अभिन्ने नियमा सम्म तु सेसए
 भयणा तु ” हवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्व-
 करण-अवृष्टत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रथीने
 मेदीनासी मिथ्यात्वस्थितिना चदयकाल सवधी, अतर्मुहूर्त्त
 काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भविष्यमा
 चदय-आवनार एवा अतर्मुहूर्त्तकाल जेटला ज मिथ्यात्व-
 कर्मना प्रदेशोने नाश करी शके एवु ‘ अन्तरकरण ’
 आत्मा अनिवृत्ति नामे कोइ सर्वोत्तम बलवडे रचे छे अर्ही

‘अन्तरकरण’ एटले अतर्मुहूर्त्त यावत् मिथ्यात्वकर्मने सर्वया दवावी राखवा ते. आ अन्तरकरणना पहेलाना टाइपमा मिथ्यात्वनो उदय होवार्थी आत्मा मिथ्यात्वी जाणवो अने अन्तरकरणना प्रथम समयथी ज मिथ्यात्वनो उदय न होवार्थी आ समये आत्मा ‘उपशम’ नामे कषाय अने मिथ्यात्वकर्मना उदयाभावरूप समकितने पामे छे, एटले आत्मा साची मान्यता-वीतराग धर्मनो बराबर आदर करे छे.

“ वे-पक्षी ”

आ स्यानमा वे पतो छे-एक तो आगमपत्त अने बीजो कर्मग्रथनो पद. कर्मग्रथकार जणावे छे के-यदि अनादि मिथ्यात्वी आत्मा समकित नवेसरथी पामतो होय तो ते अन्तरकरणे करी दवावेला कर्मोनों शुद्ध, अर्थशुद्ध, अशुद्ध एवा त्रण पुज करा उपशम समकित पाम्या विना ज ‘चायोपशमिक’ समकित पामे छे, शिवाय अन्य जीव एटले जे पहेला समकित पाम्यो हतो अने पक्षी पढी गयो छे ते जीव समकित पामतो होय तो पुनत्रयनी रचना कर्या विना ज प्रथम तो उपशम समकित पामे छे, माटे आ जीव उपशम समकितथी पढीने नियमा मिथ्यात्वे जाय छे आगमिरू पक्षमा तो पूर्वोक्त रीते उपशम समकित पाम्या पक्षी आत्मा नियमेन मेषमय कोद्रवाने साफ करवथी कोद्रवा शुद्ध, अर्थशुद्ध अने अशुद्ध एम त्रण प्रकारे विभक्त थाय तथाप्रकारे अन्यवसाय चढथी मिथ्यात्वना प्रदेशोने साफ करतो शुद्ध, अर्थशुद्ध,

छे एम शास्त्रमा खुल्लु जगाव्यु छे आटलो अत्रे अधिक खुलासो जायवो हेतु ए के-निर्मलबोधनु मुख्य फल अध्यवसायो अर्ही कायम होवाथी ते विपलबोध ज कहेवाय. आवा आत्मा माटे ग्रयकर्ता जगावे छे के-‘ स्यादियं च परा ’ ‘प्रणिधान’ आदि आशय समधी अनुभव प्राप्ति आ आत्माने उत्कृष्ट-माधायतावाली होय, अतः आ आत्माने ज पुष्टि-शुद्धिनो खास अनुबध लाभ याय

“ आटलु जगावी हवे ‘ प्रणिधान ’ आदि आशयोनी नामग्रहणपूर्वक सख्या ग्रयकर्ता जगावे छे. ”—

प्रणिधिप्रवृत्तिविघ्न—

जयसिद्धिविनियोगभेदत. प्राय. ।

धर्मज्ञैराख्यात.

शुभाशुय. पञ्चधाऽत्र विधौ ॥ ३-६ ॥

मूलार्थ—पुष्टि-शुद्धिनी अनुबधविधिमा मुख्य हेतु अने पवित्र एवा पाच आशयो-आत्माना विशिष्टाध्यवसायो धर्मज्ञ महापुरुषोए आ प्रमाणे कहा छे प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि अने विनियोग ए पाच शुभ आशयो जाणावा

“ स्पष्टीकरण ”

आ आर्यानो माव स्पष्टज छे. पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबध पवित्र एवा शुभ परिणामोने आधारे ज याय एम दर्शाव्यु हतु. अतः आ परिणामो माटे अर्ही ग्रयकर्ता

वहे हे के धर्मज्ञ-धर्मना सत्य मर्मने जाणनार एवा पूर्व महा-
 पुरुषोए शास्त्रोमा पाच प्रकारना शुभ परिणामो जगाव्या छे
 यद्यपि शुभ परिणामो असंख्य प्रकारना कथा छे, तो पण
 अही जे पाच परिणामो दर्शाव्या छे तेमा ते सर्व परिणामोनी
 समावेश यइ जवाधी पाचधी अधिक परिणामो विशेष-
 रीत्या गण्या नथी. एव ' पुष्टि-शुद्धि ' नो अनुबध पण आ
 पाच आशय सिवाय अन्य आशयोधी यतो नथी एवो धर्मज्ञ
 पुरुषोनी अनुभव होवाधी मूलमा मूलकर्ताए ' प्रायः ' पद
 आप्युं बहोळताये मणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि,
 चिनिधोग-आ पाच आशयो ज अत्र अनुबधविधिमा मुख्य
 कारणो जाणवा परमार्थ ए के-जेने आ पाच आशयोनी काम
 पाय तेने ज पुष्टि-शुद्धिनो अनुबध भवते, एटले
 पुष्टि-शुद्धिनो अनुबध प्राप्त करवा आ पांच आशयोनुं
 ज्ञान करी तेने मेळववा प्रयत्न करवो वियेकीनु कर्तव्य गणाय
 अही जे पाच आशयोना नामो दर्शाव्या तेमा तथाप्रकारना
 गुणो अने स्वरूप होवाधी तेमज अन्याशयोमा तथाप्रकारनी
 विशिष्टता न होवाधी पण अत्रे ए ज पाच आशयो दर्शाव्या
 आटलो विशेष सुलासो जाणवो

" गत आर्यामा नाममात्रयी दर्शावेल पाचे आशयोनु
 क्रमशः स्वरूप दर्शावता प्रयकर्ता प्रथम ' मणिधान ' नामे
 आशयनु स्वरूप एक आर्याधी वहु सुंदर अने स्पष्ट रीते
 दर्शावे छे. "

प्रणिधान तत्समये

स्थितिमत्तदध कृपानुगं चैव ॥

निरवद्यवस्तुविषयं

परार्थनिष्पत्तिसारं च ॥ ३-७ ॥

मूलार्थ—धर्म सबधी जे जे मर्यादा-प्रतिज्ञा स्वीकारी होय तेभा जे अविचलपणु अने पोतायी नीची स्थितिना-धर्मप्रतिज्ञाहीन मनुष्यो उपर अनुकृपा करवी, एव जे कार्योधी अन्यनो उपकार थाय अने विशेष पाप न होय, तथा अगी-कृत धर्ममर्यादाने अनुकूल ज वस्तुनु ध्यान बन्या रहे, एवा परिणामने ' प्रणिधान ' नामे आशय कह्यो छे

“ प्रणिधान ”

स्पष्टीकरण—' प्रणिधान प्रणिधिः ' प्रणिधान ते जे प्रणिधि अर्ही प्रणिधाननो सामान्य अर्थ एटलो जे के अतःकरणनी मकमता, एटले पवित्र हृदयनी खास दृढता आ दृढता पण अनेक प्रकारनी छे तो ते दृढता केवी ? अने क्या क्या प्रकारनी ? अर्ही समजवी, एव आ आर्यामा ' प्रणिधान ' ए विशेष्य पद अने ते सिवायना अन्य तेना विशेषण पदो छे अतः आ ' प्रणिधान ' पदना विशेषणपणे अन्य पदोनी व्याख्या करवावु खास ध्यान राखवु, एटले प्रणिधान नामे आशय कोने समजवो ? ते विशेषणद्वारा अयकर्ता समजावे छे.

‘ तत्समये स्थितिमत् ’ समय-अधिकृत धर्मस्थान सबधी जे प्रतिज्ञा अर्थात् जेनाथी आत्माने धर्मलाभ याय तेवा प्रकारनी धर्म सबधी जे प्रतिज्ञा तेमा, जेम ‘ मास अमुक काल या जीदगीपर्यंत न खावु ’ एवो धर्म जाणी आत्मा प्रतिज्ञा-पद्यख्खाण-सोगन-नियम करे तो आ सोगन धर्मकारक होवाथी धर्म सबधी प्रतिज्ञा कहेवाय एटले आ अने तैवी ज अन्य धर्म्य प्रतिज्ञाओ स्वीकार्या पछी ते ते प्रतिज्ञाओ पालवामा अनुकूल एवा जे विचारो, अथवा स्वीकृत प्रतिज्ञाथी आत्मा गमे तेवा सयोगमा पण चलायपान न ज थाय उपा ध्यायजी महाराज कहे छे के-जे विषय सबधी प्रतिज्ञा करी तत्विषयनी सिद्धि न थाय त्या सुधी जेमके-‘ हु आजथी चार मास सुधी जिनपूजा कर्वा विना भोजन नहीं करीश ’ बस आ प्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी एवा प्रबल सयोगो आबी लागे छे के पूजा करवानो समय न ज मले, छता आत्मा पूजाना संस्कारोथी एवो तो देवाइ जाय के गमे तेटलो टाड्प थइ गयो होय अने भूरुत्या मरवानो समय आबी लागे तथापि भूग्व्या मरवु ए स्वीकारी ले परन्तु प्रतिज्ञानो भग न ज करे प्रतिज्ञा पूरी न थाय त्या सुधी आबी दृढता सर्वांशे कायम राखवाना जे शोभन विचारो ते अतःकरणी मकमता.

“ तदधः कृपानुग चैव ”—‘ प्रतिपन्न धर्मस्थानथी वंचित जनो पर अनुकृपा तत्पूर्वक. ’ उपर दर्शाव्या प्रमाणे जे जे धर्मविषयक प्रतिज्ञाओ आपणे स्वीकारी होय

धवाने तेवा तेवा अनुकूल विचारो ज आपणो ! विचारी आत्माने
 दृढ वनावी तथाप्रकारे धर्म्य प्रतिज्ञामा निश्चलता पामीए. आ
 पणी आ स्थितिना मुकाबले आपणाधी अन्य जनता उतरती
 देखाय त्यारे ते गुणहीन नीची कोटीना छे एम घारी तेना
 पर यदि द्वेषबुद्धि अथवा घृणा के निन्दकपणु जो
 उद्भवे तो ते ' मणिघान ' नामक आशय न कहेवाय
 हेतु ए क--धर्म्य प्रतिज्ञा स्वीकार्या छता जे आत्मा पोताने ते
 धर्म्यस्थानना बहाना नीचे गर्वी, द्वेषी वनावी अधिक पाप पेदा
 करे छे ते धर्मस्थाननी साध्यता चूकी जाय छे. अत आ 'मणि-
 घान ' आशय सबधी विशेष खुलासो करवा ग्रथकर्ता अन्य
 विशेषण दशावे छे. आपणाधी धर्मस्थानवचित या पतित एवी
 अन्य जनताने देखी तेना पर अनुकपा धारवी. जेमके--' हु
 पूजा कर्या विना भोजन करतो नथी अने तेवी प्रतिज्ञा में लीधी
 छे. तमे शु करवाना ? तमारामा क्या तेवी शक्ति छे ?
 तमारो तेवो पुण्योदय क्याधी होय ? तमे अधर्मी पापी छो.
 तमाराधी थोडो पणु धर्म यतो नथी धिक्कार छे तमारा जन्मने !'
 ए रीते गर्व के द्वेष न करवो किन्तु ' अहो आ लोको मनुष्य
 जन्म, बुद्धि, बल, आरोग्यता विगेरे पापवा छता काइ पण धर्म-
 साधन करता नथी. आ लोकोनी शी दशा थशे ? आ लोकोनो
 काइ दोष नथी तेओ तो कर्माधीन छे ' आ प्रमाणे तेओना पर
 अनुकपा ज भाववी आवी अनुकपा सहित धर्मविषयक प्रतिज्ञामा
 हृदयनी जे दृढता-परिणती ते ज अत्र ' मणिघान ' आशय
 कसो छे

। आ आशयनी प्राप्ति जेओ अतिपापकारी आरभोमा सर्वदा भवर्तनशील होय अने पोतानो ज स्वार्थ मुख्य रीते साधवाया जेओनी प्रधान द्रष्टि होय तेओने तो न जयाय, कारण के आवी द्रष्टिवाळाया बहोलताये अनुरुपाबुद्धिनो सर्वथा लोप ज यो होय छे, अने ज्या अनुकपा न होय त्या धर्म ए खाली नाममात्र ज समजओ अने अही अनुकपा तो खास मुख्य पानी छे अतः अयकर्ता उत्तरार्धधी अधिक खुलासो कर छे के—‘निरवधवस्तुविषय, परार्थनिष्पत्तिसारं च ’ ‘परोपकारसिद्धि प्रधान अने निर्दोष पदार्थ सबधी जे विचार ’ जे कार्यो करवायी पोते अंगीकृत धर्मपर्यादानु पोषण घाय एटले नित्य एवा ज पदार्थनु ध्यान रहे के स्वीकृत धर्म सबधी प्रतिज्ञानो कदापि भग न याय तथा प्रत्येक कार्यो अने तत्सबधी विचारो द्वारा अन्यनो मुख्यतः उपकार ज याय किन्तु पोतानो स्वार्थ मुख्य न सघाय एवी रीते पापनो परिहार करी प्रधान कार्यो करवाने हमेशा ध्यान करवु—विचारो करवा आवा; विचारोने दुःखमा धर्म सबधी स्वीकृत प्रतिज्ञामा दृढता अने गुणहीन जनो पर अनुरुपाबुद्धिपूर्वक परोपकारप्रधान पापनिर्मुक्त वस्तुओनु हमेशा चिंतन-ध्यान-आने ज शास्त्रकर्ता ‘प्रणिधान’ नामक आशय जणावे छे.

“ ‘प्रणिधान’ नामे पहेला आशयमा केवल मानसिक तथाप्रकारनी सुंदर बुद्धि दर्शावी. हवे आवी बुद्धिनो जन्म यया पक्षी तेना फलरूप अने प्रथम आशय पक्षी जेधी सुंदर

आचरण प्रकटे के जेने मत्यन्त व्यवहारमा देखी शक्या एवो
‘ प्रवृत्ति ’ नामे बीजो आशय दर्शावे छे. ”

तत्रैव तु प्रवृत्ति.

शुभसारोपायसगतात्यन्तम् ॥

अधिकृतयत्नाति—

शयादौत्सुक्यविवर्जिता चैव ॥३—८॥

मूलार्थः—स्वीकृत धर्म समधी प्रतिज्ञामा पवित्र अने
उत्कृष्ट एवा उपायो—साधनो योजवामा अतिशयेन निपुण एवो
जोरदार प्रयन्त—उद्यम करवो, तथा मानसिक उत्सुकता अथवा
अकाले त धर्म समधी फलप्राप्तिना वाच्छा रहित एवो जे
प्रयन्त करवो तेने अर्ही ‘ प्रवृत्ति ’ जाणवा

“ प्रवृत्ति ”

स्पष्टीकरण—शोभन—अशोभन प्रवृत्तिनु मूल शो-
भन—अशोभन विचारश्रेणी सिवाय अन्य नधी. अतः प्रवृत्ति
उत्पादक ‘ प्रणिधान ’ नामे पहेलो आशय जणाव्या पछी
आ आर्यामा ‘ प्रवृत्ति ’ नु स्वरूप दर्शावे छे अर्ही पण ‘ प्रवृत्ति ’
ए विशेष्य अने अय तेना विशेषण पदो जाणरा दुनियाना मर्व
व्यवहारने लोको प्रवृत्ति ज कहे छे अत अत्र क्या प्रकारनी
प्रवृत्ति समजवी ? आनो खुलामो आचार्य जणावे छे ‘ तत्रैव
तु ’ पूर्वे प्रणिधान नामे आशयना अधिकारमा जे धर्मविष-

यक प्रतिज्ञानी दृढता अने तत्सबधी विशेष आशयनी शुद्धि
 दर्शाती ते ज, आशयशुद्धिपूर्वक धर्म सबधी प्रतिज्ञामा 'प्रवृत्ति.'
 गमन करवु परमार्थ ए के-अर्धी प्रवृत्ति मात्र शून्यचित्तवाली
 क्रियारूप न लेवी, किन्तु अभिमायपूर्वक बाह्यक्रियारूप आ-
 त्मानी विशिष्ट चेष्टा तद्रूप प्रवृत्ति अत्र जाणवी पूर्वे कथा
 प्रमाणे " हु आजधी इमेशा पूजन करीश " आ प्रमाणे
 प्रतिज्ञा गुरुसमक्ष स्वीकार्या वाद ज्यासुधी आ प्रतिज्ञानो समय
 पुरो न थाय त्यासुधी ते प्रमाणे वर्तन कर्या ज करवु, परतु
 अंतरमा मात्र प्रतिज्ञा लेवानी इच्छा उद्भवी ते इच्छारूपे ज
 धन्या रहे तेम नर्ही अथवा तो लीधा पछी तेना पालन प्रति
 वेदगकारी या तो एक वेदरूपे पूरा थाय तेवी नर्ही परतु
 "शुभसारोपायसगतात्पतम्" 'शुभ-सुदर, भार-उत्कृष्ट
 एवा उपायोवडे अत्यत युक्त ' स्वीकृत धर्म सबंधी प्रतिज्ञाना
 पालन माटे इमेशा जेम बने तेम शोभन अने उन्कृष्ट
 एवा उपायो शुद्धिबळपडे योजी योजीने आदरपूर्वक अत्यत
 क्रियासु आचरण करवु एटले जे जे प्रतिज्ञाओ स्वीकारी
 होय तेना पालननी वृद्धि माटे क्या क्या साधनोनी अपेक्षा रहे
 छे ? तेमा केवा विवेकनी जरूर रहे छे ? आवा आवा विचारो
 करी, धर्मज्ञ पुरुषोने पूछी पूछी तथाप्रकारे सुदर आचरण
 करवु. ' गतानुगतिम् ' न्याये अथवा पहेलाथी ओघमुद्धिए
 जेम क्रिया करीए तथाप्रकारे कर्या करवी. अगर तो कोइ
 सुधारवानु कहे तो पण न सुधारता पोतानु ज धार्यु करवु

आवी प्रवृत्ति अत्र अपेक्षित नहीं; कारण के आवी क्रिया तो समूर्द्धम जेवी अथ अने मूढ क्रिया ज कही छे. अतएव उपाध्यायजी स्वकृत टीकामा विशेष खुलासो करे छे—‘उपायः प्रेक्षोत्प्रेक्षादिः’ अत्र उपाय ते प्रेक्षा—सामान्यधी धर्मप्रतिज्ञा माटे विचारो करवा, आलोचन करवु, दृष्टिद्वारा जीवोनी तपास करवी. उत्प्रेक्षा—विशेषपण्ये विचारो करवा, रजोहरण आदि साधनोवडे पढिलेहण्यो करवी

फरीं—‘अधिभूतयत्नातिशयात्’ अगीकृत धर्मपर्यादानु पालन करवा माटे प्रयत्न—उद्यम एटलो होय के जेमा लेशमात्र प्रमादने अवकाश न पले अर्थात् प्रमादने दूर करी विशिष्ट रीते प्रतिज्ञा—पालन माटे उद्यम करवो जेमके—अमुक प्रकारनी धर्म सबधी प्रतिज्ञा लीधा पछी आनु पालन करवामा बिल्कुल प्रमाद न करवो, किन्तु दिवसे दिवसे उद्यम अधिक ज जेमा कराय आयी ज ‘औत्सुक्यचिर्वर्जिता चैव’ जे प्रवृत्ति—क्रियामा शीघ्रता—मननी उतावळ न होय अथवा इच्छानो वेग न होय तेवी, एव बीजा अर्थमा आ क्रिया कर्पा पछी अनवसरे आ क्रियाना फलनी इच्छा करवी तेण्ये करीने जे वर्जित होय आवी प्रवृत्ति ते अत्र ‘प्रणिधान’ नामे आशयना फलरूप सत्य प्रवृत्ति जाणवी अनवसरे फलनी इच्छा करवी ते पण एक आर्चध्यान कह्यु छे—‘विपरीत मनोज्ञानाम्’ ‘इष्ट पदार्थोनी इच्छा ते आर्चध्यान’ ‘निदान च’ विषयसुख माटे जे प्रार्थना ते पण आर्चध्यान,

अतएव अर्हो फलनी इच्छा रहित एवो प्रवृत्ति जगामी परमार्य ए के-कोइ पण धर्मसाधनमा फलनी इच्छा कर्या विना अने मन तथा कायानी उत्सुकताने छोडाने प्रवृत्ति करवी, तो ज ते प्रवृत्ति नामे पवित्र एवो धर्म सवधी बीजो शुभ आशय कहेवाय, अन्यथा ते धर्म नहीं किन्तु एक जातनी घमाल ज कहेवाय अत्रे आ सर्व प्रवृत्ति क्रियारूप छता तेमां आशयनी मुख्यता होवायी अर्हो तेने आशय कसो छे

“ प्रवृत्ति नामक आशयपूर्वक क्रियामा प्रवर्तनारने विघ्नो कदाचित् आये खरा, अत. प्रवृत्तिरूप आशय साये सबध राखनार ‘ विघ्नजय ’ नामे बीजा आशयनुं स्वरूप प्रयकर्ता दर्शाये छे. ”

विघ्नजयस्त्रिविधः

खलु विज्ञेयो हीनमध्यमोत्कृष्टः ॥

मार्ग इह कंटक—

ज्वरमोहजयसम प्रवृत्तिफल ॥३-९॥

मूलार्थ.—प्रवृत्तिरूप आशयना फलने अर्पनार एवो, मार्गमा कंटक, ज्वर तथा मोहजयनी माफक जयन्य, मध्यम अने उत्कृष्ट एम ग्रण प्रकारनो निश्चययी विघ्नजय अत्रे जाणवो.

“ विघ्नोनुं बल ”

स्पष्टीकरण—पापक्रियामा प्रवर्तनारने कदाचित् विघ्नो न

आने ज्यारे धर्मक्रियामा गपन करनारने बहुधा जरूर विघ्नो नडे छे
 खरा " श्रेयासि बहुविघ्नानि भवति महतामपि ।
 अश्रेयसि प्रवृत्ताना कापि यांति विनायका " ॥१॥
 एदले जो प्रवर्तनार निर्मल मननो होय तो ते क्रियाथी पाछो
 पडी जाय, अत पोताना साध्यपर्यंत ते पहोंची शकतो नथी,
 माटे प्रवर्तनारे हिम्मतपूर्वक एवी रीते प्रवर्तवु जोइए के गमे
 तेवा विघ्नो आववा छता ते सर्वनो विजय करी पोताना साध्य
 प्रति वरावर पहोंची शकाय. ' प्रवृत्ति ' रूप आशयनु फल
 विघ्ननो विजय करवाथी ज प्राप्त याय. अन्यथा ' प्रवृत्ति '
 ते अप्रवृत्तिभूत ज गणाय अत अर्ही प्रवृत्ति नामे आशय
 कछा पछी विघ्नजय नामे आशयनु स्वरूप दर्शाव्यु छे आ
 विघ्नजय नामे आशयनु बल ज्यासुधी आत्मा प्राप्त न करे
 त्यासुधी उपर कहेला बन्ने आशयो नकामा जाणवा. अर्ही
 क्रियामा प्रवर्तनार जघन्य, मध्यम, तथा उत्तम एम त्रण प्रका-
 रना मनुष्यो होय छे तेमा ' विन आवशे तो ? ' एना भयथी
 जेभो क्रिया न करे ते जघन्य, प्रवर्तवा छता विघ्न आववा
 पछी बचमा ज अटकी जाय ते मध्यम अने अनेक विघ्नो
 आववा छता अचल रही सर्वनो विजय करी कार्य साधे
 ते उत्तम " प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै, प्रारभ्य
 विघ्नविहता विरमति मध्या. । विघ्नैः पुनः पुनरपि
 प्रतिहन्यमाना, प्रारभ्यमुत्तमजना न परित्यजन्ति"
 ॥२॥ एवी ज रीते धर्मकार्योमा गति करनारने जे विघ्नो आववा

आये छे तेने, अर्ही ग्रयकार अणु विभागोमा वहेची दृष्टातो साधे घटना करी समजावे छे ' विघ्नजयस्त्रिविधः ' विघ्ननो जय ण प्रकारनो ' विघ्नेप. ' जाणवो ' हीन मध्यमोत्कृष्ट. ' हीन, मध्यम अने उत्कृष्ट. अत्र आर्याना पूर्वार्थमा ' खलु ' ए वाक्यनी शोभा अर्थे आप्यो छे अथवा तेनो निश्चय एवो अर्थ करीए तो अर्ही विघ्नो अणु प्रकारना ज छे. ए प्रमाणे भावार्थ जाणवो आटलु कदा पछी आ भावने समजाववा इव ग्रयकर्ता दृष्टात कह छे

“ विघ्न प्रकारो ”

‘ मार्ग इह ’ इष्ट अर्थमाटे घणा मनुष्यो ग्रामांतरे जवा निकळ्या होय त्या मार्गमा ज काटाओ, बुखार, आधी विगेरे कष्टो आवी पडे छे, छता मजल मनुष्य आ सर्वनो विजय करी जेम ए अर्थनी अवश्य सिद्धि करे छे तथाप्रकारे अर्ही पण ‘ कटकज्वरमोहजयसम ’ कटक समान हीनविघ्न, ज्वर समान मध्यमविघ्न अने आधी समान उत्कृष्टविघ्ननो विजय करे ते ज स्वसाध्य स्थळे पडोची शक

“ कटकविघ्न ”

परमार्थ ए के-मार्गे जवा नीकळेळ मनुष्यने कदाचित् मार्गमा काटाओ, काकराओ, पत्यराओ पगमारुचे-लागे छता कोइक हिम्मती अने समर्थ मनुष्य आ सर्वने अलग करी, सावचेती राखी, जोइ जोइने पग मूक्तो जराये खेद न करतो पाताना स्थाने पडोचे

छे, एव अर्ही पण स्वीकृत धर्मप्रतिज्ञाना पालन करवामा प्रवर्तनारने कदाचित् काटा आदि समान ठडी, गरमी, चुधा, पिपासा, ढास-मच्छर, याचना आदि परीसहो प्राप्त थाय, जे परीसहो आववायी आत्मा त्रास पामे, कटाळी जाय, चलितपरिणामी थाय, मेघकुमार मुनिनी माफक आर्चध्यान करे अतएव धर्मस्थानथी आत्माने आ परीसहो यत्किंचित् खसेडनार होवाथी आ परीसहो हीनविघ्न कटक तुल्य कथा. हीनता पटला माटे के आ परीसहोनो आत्मा रहजे विजय करी शके छे काइ स्वार्थ के लालचथी पण लोको आवा दुःखोने गणता नथी. जे लोको आ विघ्नोनी विजय करी आगळ वधे पटले पोतानी धर्मविषयक प्रतिज्ञानु रक्षण करे, विघ्नोथी कदापि न ढरे, किन्तु बहु आनंद साये तेनी सामे खडा रहे ते ज योग्य छे.

“ ज्वरविघ्न

तथा तेज मनुष्य काटा आदिथी नर्ही ढरतो आगळ वयता मार्गमा यदि तेने बुखार आवी जाय तो ते आगळ वधवामा हिम्मत हारी जाय छे. पटले आगळ जवानी इच्छा छता बुखारना कारणथी जइ शकतो नथी, छता जवाने थोडुघणु साहस करे तो पण तेना पग बराबर चालता नथी. पटले कटकविघ्न जीतवा पूरतु जे बल होय तेना करता पण तीव्र अधिक बल ज्यारे होय त्यारे ज ते आगळ वधी शके एव अर्ही पण धर्मप्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी कदापि शरीर सवधी अनेक

व्याधियो आबी पडे आधी धर्म आराधवानी इच्छा छता ते रोगोना कारणे धर्मने पढतो मूके माटे आ विघ्नो विशिष्ट अतरायभूत होवाथी मध्यम विघ्नो शुवार तुल्य कथा; किन्तु जे पुरुष गमे तेवा व्याधिना समयमा' पण पोतानी धर्ममति-ज्ञात्रो अचल राखी नित्य कर्त्तव्य नियमोमा खामी आववा न दे अने विशिष्ट उत्साहथी शुभ धर्मना आराधना करे। तो ज दर्शाव्या प्रमाणे कटकतुल्य हीनविनजय अने ज्वरतुल्य मध्यमविनजय नामे शुभ आशयनो आविर्भाव थयो छे तेवु जाणी शक्य आवु अद्भूत बल प्राप्त थवार्थी ज मयम कथा प्रमाणे ' प्रभृति ' नापक आशयनी सफलता याय छे

“ मोहजयविघ्न ”

फरी मार्गमा आन्धी, रजोट्टि, जलट्टि अने धूमस विगेरे होय तो तो उपरना चने प्रकारना विघ्नो जीतवानु सामर्थ्य छता घणा माणसो पूर्व-पश्चिम विगेर दिशाओ भूली जवार्थी मार्गमा ज इधरउधर आयड्या करे छे, चलटा मार्ग पर चढी जाय छे अगर तो नाहिम्मत थइ बेसी जाय छे पाछा फरी जाय छे; किन्तु त्रिवेकी पुरुष आवा सयोगोमा पण विशिष्ट विचारो करी पोतानी निश्चल बुद्धिर्ना परीक्षाथी निडरपणे आगळ वध्यो जाय छे अथवा बीजाओधी मार्गनु ज्ञान करी तेनापर विश्वास राखी तीव्र उत्साहनु, अवलंबन करी मार्ग स-मुख चाल्यो जाय छे तथाप्रकारे अर्धी पण धर्ममार्गमा

चालता थका कदाचित् मिथ्यात्वभावना उदययी घणा धर्मोपा
 वयो धर्म सत्य इशे ? जैनधर्मना प्रवर्तको सर्वज्ञ हुता के नहीं ?
 धर्मनु फल परजन्ममा मन्त्रशे के नहीं ? निगोद विगोरे भावो
 कदा छे ते शु सत्य छे ? आवा आवा मनना विभ्रमो—मशयो
 पेदा याय पटले आत्मा तेनायी व्याकुल यइ धर्ममा अस्थिर
 परिणामी थइ जाय, सम्पकृतया धर्माराधन करी शके नहीं पटले
 मिथ्यात्वभावना कारणयी आत्मा धर्मपयने छोडी अधर्मना
 मार्गे चडी जाय छे. माटे आ विन अनर्थकारी जाणी तेनो
 सर्वथा विजय ते ज करी शके के जे सम्यक् धर्ममार्गनी पोतानी
 अपूर्व शुद्ध—बुद्धियी परीक्षा करी चलितपरिणामी न याय
 या तो अन्य गुर्वादिको जे धर्ममार्ग दर्शांरे तेना पर बराबर
 श्रद्धा—विश्वास राखे अने मनना खोटा असद्भूत सशयोने
 आधीन न थाय आ प्रणे प्रकारना विघ्नो आत्माने धर्मयी
 भ्रष्ट करे छे, तो आत्मानी निश्चल परिणति स्थिर करी,
 मनना विभ्रमोनो नाश करी जे धर्माराधन करवानु अद्भूत
 बल धारण करे, कोइ पण विघ्नोयी पराभूत न ज याय ते ज
 आत्मा धर्ममार्गना इष्ट स्थान प्रति पहुँची शके छे आवा
 आशयनु नाम अत्र 'विघ्नजय' नामे त्रीजो आशय कदा छे.

“ परामर्श ”

अने आ प्रण प्रकारना विघ्नो पैकी कटक तुल्य शीत,
 उष्ण आदि परीसहरूप हीनविघ्नो मात्र धर्माराधनामा
 आत्माने कायर मयादी बनावे छे, अने ज्वर तुल्य रोगादिरूप

मध्यम विघ्नो धर्ममा प्रवृत्ति करवानी आत्मानि इच्छाओने मद करे छे, किन्तु आत्माने सर्वया धर्मभ्रष्ट करी मिथ्यात्वना मार्गे घसर्ही शकता नथी एटले ते विघ्नो अर्ही सामान्य कोटीना जणाव्या वयारे मोहजय नामे उत्कृष्ट विघ्न तो आत्माने अवटा मार्गमा उतारी नावे छे, एटले आ किन्ने नाश करवानु सामर्थ्य जेमा होय ते आत्मा कदापि प्रथमना ते प्रकारना विघ्नोथी पराभूत यतो नथी; अने उपरना वञ्चे विघ्नोथी जे पराभव पामे ते तो निश्चयेन त्रीजा नवरना विघ्नथी पराभूत थाय ज अनएव आ विघ्न जीतवानी शक्ति प्राप्त करवी अधिक आवश्यक गणाय, कारण के प्रथम कदा प्रमाणे धर्ममा गति करनारने विघ्न तो जरूर आव, माटे विघ्नोथी डरी धर्ममा गति न करवी या तो धर्म छोडी देवो तेनु नाम धर्मापणु न ज कहेवाय किन्तु खरी रीते विघ्नोनी सामा यइ धर्मापणु करयु ते ज सत्य धर्मापणु कहेवाय अने तो ज 'प्रवृत्ति' नामक आशयनु फल प्राप्त ययु बराबर गणाय. अर्थात् आ 'विघ्नजय' करवो ए अर्ही 'प्रवृत्ति' आशयनु प्रधान फल गण्यु छे आथी ज मूलकर्ताए कथु 'प्रवृत्तिफल' मक्षेपमा-उपर कदा प्रमाणे जेओ विघ्नोनी विजय करा धर्ममा 'प्रवृत्ति' करे तेओमा मुख्य रीते 'प्रणिधान, प्रवृत्ति' अने 'विघ्नजय' आ आशयोनी आविर्भाव थयो छे एम प्रवृत्तिद्वारा जाखी शकाय

“ ए रीते विघ्ननो जय कर्या पछी अवश्य प्रस्तुत धर्मनी सिद्धि थाय, अत 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशयनु स्वरूप प्रयकर्ता अत्रे दर्शवै छे. ”

सिद्धिस्तत्तद्धर्मस्थाना-

वाप्तिरिह तात्त्रिकी ज्ञेया ।

अधिके विनयादियुता

हीने च दयादिगुणसारा ॥ ३-१० ॥

सूत्रार्थः—पोते अगीकृत तत् तत् धर्मपर्यादाभोनी माप्ति ते ज अत्र परमार्थभूत ' सिद्धि ' नामे आशय जाणवो. आ आशय त्वारे ज ययो जाणवो के ज्यारे पोतायी अधिक गुणी जनो पर विनय आदि गुणयुक्त होय अने गुणहीन जनो पर अनुकपादि गुणप्रधान होय

“ सिद्धि-भेदो ”

स्पष्टीकरण—आशयो-परिणामोना भेदो पैकी 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशय छे ए बात आगल जणावी गया छीए. ' सिद्धिः '—निष्पत्ति सिद्धि एटले निष्पत्ति तैयार यवु प्रथम तो क्रियामा प्रवर्तवु, बचमा उद्भवता विघ्नोना विजय करवो, एटले पछी बराबर क्रियानी सिद्धि-निष्पत्ति थाय आ रीते आ आशयनो पूर्वोक्त आशयो साथे अनंतर सगध सुसगतया बने छे, एटले आशय अधिकारमा आनी 'विघ्नजय' पछी स्थापना बराबर योग्य रीते थाय छे 'सिद्धि' के प्रका-रनी करी, एक तो परमार्थभूता तात्त्रिकी अने बीज्जी अपर-पार्थभूता अतात्त्रिकी, अथवा व्यवहारिक, कार्यो सबधी अने

आत्मिक अधिकार संबंधी. जेथी आत्मानुं आलोक तथा पर-
लोक उभय लोकमा कल्याण थाय ते तो तात्त्विकी अने जेथी
आत्मानु रुद्राचित् आ लोक संबंधी ज हित सधाय ते अता-
त्त्विकी व्यवहार संबंधी. प्रस्तुत अधिकारमा जे सिद्धि नामे
चतुर्थ आशय कह्यो छे ते केवल तात्त्विक-आत्मिक कल्याण
संबंधी ज आशयवाळो जाणवो, परंतु व्यवहारिक कार्योंनी सि-
द्धिरूप आशय अर्ही न लेवो अतएव ग्रंथकर्ताए आ सिद्धिनु
'तात्त्विकी' ए व्यवच्छेदक विशेषण आप्यु, तथा आ सिद्धिनो
सत्य अर्थ आचार्यश्री पोते ज दर्शावे छे.—

“ सिद्धि-स्वरूप ”

‘सिद्धिः-तत्तद्धर्मस्थानावाप्ति’ सिद्धि एतले ते ते
धर्मस्थानकोनी प्राप्ति, अर्थात् पूर्वे आत्माए जे जे धर्म संबंधी
पर्यादाओ-प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेनी अखंड रीते बराबर
समाप्ति यत्री, आत्माने ते ते धर्मप्रतिज्ञाना सस्कारोधी बराबर
धामित करी उत्तम परिणतीवान् बनाववो जेमणे-सामायिक,
पूजा आदिना नियमो लीधा पछी निर्विप्रणणे अखंडतया दोष
रहितपणे पूरा पाळवा टीकाकार अर्ही सुलासो कर छे के-
“ विवक्षितस्य-धर्मस्थानस्यार्हिंसादेरवाप्तिः प्राप्तिः
सिद्धिरुच्यते ” विवक्षित-स्वीकृत धर्मस्थान जे अर्हिंसा
आदि तेनी प्राप्ति-लाभ ते सिद्धि म्हैवाय छे. एतले आत्मा
अर्हिंसा आदि प्रतीनी बराबर निष्पत्ति जे आशयना बलधी

पर ते आशयनु नाम ' सिद्धि ' जाणवु नितान्त आ' आशयना जोरर्था आत्मा परमार्थभूत धर्ममा कूगलता प्राप्त करे छे. मात्र लोकराष्ट्र धर्ममा निपुणता करवी ते काइ सिद्धि न कहेवाय कारण क बाजा प्रकारनी निपुणताधी काइ आत्मानु कल्याण थतु नयी, किंतु तेनाधी तो मात्र यत्किंचित् सुख के मानप्रतिष्ठा मले छे, माटे ज आ सिद्धिने अताचिवकी दर्शावी, ज्यार पहती सिद्धिधी निश्चयेन आत्मानु अद्भुत कल्याण थाय छे. अतएव आने ताचिकी ए विशेषण आप्यु वधुमा परमार्थ तथा धर्ममार्गमा निपुणता प्राप्त यगधी आत्मा आकरा प्रबल कपायोधी निर्मुक्त थाय छे. इतु ए के-प्रबल कपायोदयवान् आत्मा कडापि उत्तम धर्ममार्गमा पवित्र आशय साथे प्रवृत्ति करी शकतो नयी, किंतु जेना कपायो नरम हीन बली थया होय ते ज प्रवृत्ति करी शक, अत आ आशयना प्रबल प्रतापधी आत्मा जेना साथे नित्यना वैरो होय तेनो पण नाश करे छे. एतले अमुक अशे मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओना संस्कारमालो वने छे. माटे पण आ आशयने ताचिक आशय कथो छे.

“ प्रधान सिद्धि ”

फरी अयमर्था आ आशयनी प्राधान्यता देखाडवा उचरार्थमा बीजा वे विशेषणो आपी अधिक पुष्टि करे छे “ अधिके विनयादियुता ” एतले स्वात्माधी अधिक गुणवान् जे सज्जनो, बर्डीलो, महापुरुषो पर उहुमान, विनय आदि करवा, अथवा तेवा श्रेष्ठ पुरुषो के

जेमणो मूत्र-अर्चनो अभ्यास कर्षो होय, महाप्रतोनी भावनाओ-
नो अभ्यास जेओए कर्षो होय एवा तथा साक्षात् तीर्थ समान
गुरुमहाराज आदिनी भक्ति, सेवा, वैयावध, विनय आदि
करवा भावार्थ ए के-धर्ममार्गनी सिद्धि आ गुणो सिवाय अपूर्ण
ज कहेवाय, एटले सिद्धिनी सिद्धि करवा आ गुणो तो अव-
श्यमेव आत्माए प्राप्त करवा जोइए, जे आत्मा गुणीजनोनी स-
त्कार विनय आदि करे छे ते ज आत्मा धर्ममार्गनी सिद्धि पामे
छे, अतः विद्वानोए स्वात्माने गुणी बनाववा माटे प्रधानमार्ग
ए ज दर्शाव्यो छे के-तीर्थभूत गुरु आदिनो विनय विगरे करवो.
अत्र महाप्रतो तथा दर्शनादिनी भावनानु स्वरूप आचाराग
तथा तत्त्वार्थसूत्रमा कथु छे ते विचारवु.

“ व्रत-मानना ”

१ “ तत्स्वैर्यार्थं भावना पच पच ” त० अ०७
सू० ३ । जिनभगवतोए प्रत्येक महाप्रतोनी स्थिरता माटे
पाच पाच भावनाओ दर्शावी छे ‘ प्राणातिपातविरमण ’ नामक
पहेला महाप्रतनी रक्षा माटे-इयासामिति-साहाय्य हाथ जेटली
जमीनमा बराबर चोइने चालवु मनोरुग्नि-अशुभ विचारोने
बध करवा, एणसामिति-४२ दोष रहित आहार ग्रहण
करवो, आदानभद्रमर्चनिक्षेपणासमिति-बख-पात्र आदि तपासी-
पडिलेही पछी ग्रहण करवा के मूरुवा, आहारोदि तपासीने
त्यावा ‘ मृषामादविरमणव्रत ’ नामे बीना व्रतनी रक्षा माटे-
हितमित वचन बोलवु, ओर्धनो त्याग, लोभनो त्याग, आकस्मिक

आम छत्ता यदि स्वात्मा अनुरुपाहीन होय, दुःखीओनो
 बेली परोपकारी न होय तो ते धर्मनी सिद्धि करी शकतो नयी;
 माटे अर्ही ग्रंथकर्ता वधु विशेषण आपी खुलासो करे छे के—'हीने
 दयादिगुणसारा' पोतानी अपेचाए न्यूनगुणी जनो पर
 अनुरुपा-दयाभाव राखवो, अर्थात् गुणहीन मनुष्योनी प्रवृ
 त्तिओ देखी तेना पर द्वेष न करवो किन्तु तेओना पर दयाना
 विचारो करवा एटले ते लोको पण गुणवान घने तेवी भावना

तयो मरणभयधी निडरता, हास्ये आदिनो त्याग करवो
 'अदत्तादानविरमण' व्रतना रक्षण माटे-विचारपूर्वक शुद्ध
 स्थाननी याचना, लैरुर होय त्यारे अवग्रहनी याचना करवी
 पण पहेलाथी समग्र न करवो, सानोपेत वस्तुनी याचना करवी,
 एक गच्छना मुनिओ पासे ज्ञानी याचना करवी, बौरु
 आशार्थी पान भोजन लेवा, 'मैथुनविरमणव्रत' माटे-ज्या
 स्त्रीओ, पशुओ, नपुसको रहेता होय एवा स्थानतो त्याग करवो,
 स्त्रीयो साथे प्रेमालाप न करवो, कामिनीयानु रूप इद्रियोनु
 अवलोकन न करवु, प्रथम सेवेल भोगादिनु स्मरण न करवु,
 स्तिग्धे पदार्थोतो त्याग करवो 'परिव्रहविरमण' व्रत माटे
 पांचे इद्रियोना इष्ट विषयो पर मोह अने अनिष्ट विषयो पर
 द्वेष न करवो आ प्रमाणे नित्य भावनाओनो अभ्यास कर-
 वायी आत्मा महाव्रतोने अधिचलपणे पाली शके छे ने लेश
 पण विप्रो उद्भवता नथी माटे ज आने महाव्रतोनी भावनाओ
 कही पुनः पुन अभ्यास करवो, विचारवु, ध्यान करवु तेनु नाम

राखी, आंखें ज नहीं परतुं आपत्तिग्रस्तनो उद्धार करवा
 मयत्न करवो, दुःखीयोने दान आपतु, तेश्रोनु दुःख दूर करवु
 विगेरे चेष्टा करवायी आत्मा योग्य रीते धर्मनी सिद्धि करी
 शकै छे. अहीं अधिष्ठगुणी तथा हीनगुणानु ग्रहण कम्वाधी
 मध्यमगुणीजनोनु पण ग्रहण यह जाय छे, अतः मध्यमगुणी
 जनो पर पण अनुकृपा, उपकार विगेर करवा, आ. रीते अधि-

भावना आनु विशेष स्वरूप तस्वापेटीका अने आचारागना
 भावनाप्ययनमा बहु सारी रीते दर्शाव्यु छे, तथा प्रशस्त अने
 अप्रशस्त ए रीते भावना के प्रकारती पण कही छे दर्शन, ज्ञान,
 धारित्र, तप, वैराग्य सबधी जे बारवार अभ्यास करवो ते
 प्रशस्त भावना अने क्रोध, लोभ, मोह आदि पापोगो बारवार
 अभ्यास करवो ते अप्रशस्त भावना

“ दर्शन-भावना ”

दर्शन आदि भावनानु स्वरूप खास विचारवा योग्य होवायी
 अगे अहीं टिप्पणीमा आपतु उचित धारुं छे—“ तीर्थगराण
 भगवन्तो पवयणपावयणिअहसइष्टीण । अभिगमणमण-
 दरिसखकित्तणसपूअणाघूणया ॥ १ ॥ जम्माभिसेपनिक्कम
 णचरणानुप्पया य निष्वाणे । दिवल्लोअमवणमदरनदी-
 सरभांमनगेरत्तु ॥ २ ॥ अट्ठावयमुज्जिते गयग्गपयए य धम्म-
 चके य । पात्तरहत्तिनग वमरुप्पाय च वदामि ॥ ३ ॥ ”

“ तीर्थंकर भगवतो, द्वादशांगपादे आचार्यों, केवलज्ञानी,
 मन पर्याप्तज्ञानी, सबधिज्ञानी, बौद्धपूर्वधरो, धामोपधी

कगुणीनो विनय विगेरे, मध्यमगुणी तथा हीनगुणी पर दया
भाव करवायी आत्मा धर्ममार्गनी बराबर सिद्धि करवाने समर्थ
बने छे आवी चेष्टाओद्वारा धर्मी आत्मामा सिद्धि नामनो
चतुर्थ आशयनो जन्म थयो छे एम जाणी शकाय दुकमा-

आदि लब्धिघरो आदिनी सामा जनु, तेओना दर्शन, गुणानु
वाव, शुभद्रव्योधी पूजा-नमस्कार आदि करवा आम करवायी
नितान्त स्वसम्यक्त्वनी शुद्धि थाय छे, तथा जिनेश्वरोना
जन्म, दीक्षा, केवल, निर्वाणभूमिना देवलोक, मेरुपर्वत, नदी
श्वरद्वीप, पातालभुवन, आदिना शाश्वत चैत्योना, अष्टापद,
रैवताचल, गजाप्रपद, तक्षशिला बाहुवलीजीनी राजधानी,
घरणेन्द्र महाराजे ज्या पार्श्वनाथजीनो महिमा क्यो हतो ते
स्थानमा, रथावर्तपर्वत, जे स्थलेथी वीरभगवाननु शरण लइ
धमरेन्द्रे उत्पात क्यो हतो, आ सर्व स्थानोना दर्शन, स्पर्शन,
पूजा, नमस्कार करवायी पण समकित निर्मल थाय छे ”
पुनः “ गणिय निमित्त जुत्ती सदिट्टी अवित्तह हम नाण ।
इय एगतमुवगया गुणपच्चइया इमे अत्या ॥ १ ॥ गुणमा
हप्पा इतिनामकित्तण सुरनरिंदपूया य । पोरणचेइयाणि य
इय एमा दमणे होइ ” ॥ २ ॥ “ पवित्र बुद्धिमान् आत्मा
आ आचार्यमगवत बीजगणित तथा निमत्तशास्त्रोना पारगत छे
दृष्टिवादमा उक्त नानाप्रकारना द्रव्यसयोगो-चूर्णो यह सरस
रीते जाणे छे अथल समकित अने अविसवादि निर्दोष ज्ञानना
भरनार छे इत्यादि रीते आचार्योनी गुणप्रशसा करवायी, तथा

द्वारे आ प्रकारनो सिद्धि नामनो आशय प्राप्त थाय त्यारे ज पूर्वना त्रणे आशयो सफल थाय, अन्यथा ते नकमा जेवा गणाय, पाटे उपरोक्त त्रण आशय पाम्या पछी आ आशयने पामवा प्रयत्न सेधवो उचित गणाय. तथा सिद्धिना अगना जे जे गुणो आर्यामा आचार्यधोप दर्शाव्या ते ते गुणोनी प्राप्ति थाय त्यारे ज सिद्धि नामना आशयनी सिद्धि यइ जाणवी.

पूर्व महात्माओतु नामस्मरण, देवेंद्र नरेंद्रोप करेल पूजा आदिनी स्तुति, प्राचीन मशिरोनी पूजा विगेरे करवायी पोतानु समाकित धराधर निर्मलतर करे छे ”

“ ज्ञान-भावना ”

तत्त जीवाजीवा नायव्या जाणया इह दिट्टा । इह फज-करणकारगसि कारगसिद्धी इह बधगुक्खो य ॥१॥ पद्धो य यधहेउ यधण यधप्फन सुकहिय तु । समारपवचोवि य इह य कहिधो जिणपरेहिं ॥ २ ॥ नाण भविस्सई एवमाइया वायणाइयाओ य । सज्झाए आउत्तो गुरुकुलवासो य इय नाणे ॥३॥ ” आ भूतलमा सत्य पदार्थनु स्वरूप प्रतिपादन करनार केवल जिनप्रवचन ज छे, तेम ज साची भद्धा तेनार्थी ज आ-त्माने मले छे कारण के जीव अजीव आदि पदार्थनु परमार्थ स्वरूप तेमां दर्शाव्यु छै, तथा मौक्षरूपी कार्य अने तेने साधनार सम्यक्त्व ज्ञान-धारिस्वरूपी कारण, पुन तेमा प्रवर्तनार साधु ए रीते कार्य, कारण तथा कारकनु स्वरूप पण आर्हत प्रव-चनमा ज देखाइयु छै कर्मनो बध, कर्मनो नाश, आत्मा आठ

ए प्रमाणे सिद्धिनुं स्वरूप कथा पछी तेना फलभूतं
' विनियोग ' नु स्वरूप रुई छे —

कर्मधी बद्ध छे, मिथ्यात्व, अविरति, प्रगाद, कथाय, योगी
ए रीते कर्मबंधना हेतुणो, कर्मनुं स्वरूप, चार गतिरूप कर्मनु
फल, समारप्रपचनु स्वरूप अने आत्महितकारी पंथो एं सवै
अहीं जिनप्रयचनमा ज दर्शाव्यु छे, किन्तु बौद्ध, साख्य,
वेदान्त आदि कोइ पण मतमा दर्शाव्यु नर्या आवा आवा
विचारो करवाधी आत्माने जरुर तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति धाय छे,
तथा बारवार अभ्यास करवाधी पण ज्ञाननो लाभ धाय छे,
सूत्र-अर्थनो स्वाध्याय करवाधी अने गुरुकुलमा वास करवाधी
ज्ञाननी प्राप्ति धाय छे ”

“ चारित्र-भावना ”

“ साहुमहिंसा धम्मो सधमदत्तविरई य धम च ।
साहुपरिगहविरई साहु तवो चारसगो य ॥ १ ॥
धेग्गमप्पमाओ एग्गे भावणा य परिसग । इय चरणमणु-
गयाओ भणिया इचो तवो वुच्छ ” ॥ २ ॥ “ अहिंसा
मुख्य धर्म, सर्वथा शुद्ध सत्य, अदत्तनो एकान्त त्याग, नववाजे
शुद्ध ब्रह्मचर्य, मूर्च्छारूप अपरिग्रहनो त्याग चार भेदवाली
तपस्या-ए सर्वे अत्र जिनमतमा ज कह्यु छे वैराग्यनी भावना-
संसारसुखनी गहो, अप्रगाद मास-मदिरा विगेरे कर्मबंधना
कारणो कथा छे एकप्रभावना-ज्ञान दर्शनमेय मारो आत्मा

सिद्धेश्वोत्तरकार्यं

विनियोगोऽवन्व्यमेतदेतस्मिन् ।

सत्यद्वयसंपत्त्या

सुन्दरमिति तत्परं यावत् ॥ ३-११ ॥

शाश्वतो तथा एकलो ज छे अने सिवाय अन्य पाह्य पदार्थो
अशाश्वत-विनाशी होये छे-आवा आवा विचारो करवायी
आत्मा चारित्र्यभावनी पुष्टि करी शके छे

“ तप-भावना ”

किह मे हविस्तपस्वज्ज्ञो ? किं वा पहू तव काउ । को इह
दध्वे जोगो खित्ते कास्ते समयभावे ॥ १ ॥ उच्छादपाल-
खाए इति तवे सजमे य मधयणे । वेरगोऽणिच्चाई होइ
चरित्ते इह पगय ” ॥ २ ॥ तपस्याबदे मारो विषय सफल
क्यारे यशे ? हु कह तपस्या करी शकीरा ? क्यु क्षेत्र अने
द्रव्य आदिमा हु तपस्या करी शकु ? अत्र तप माटे द्रव्य,
क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी विचार करवो द्रव्य-वाल,
वणा विगेरे ज लेवा, क्षेत्र-ज्या स्निग्ध पदार्थो धधारे मत्ते,
काल-शीत अगर गरमीनो समय, भाव-अखेदपणे-ए रीतनो
विचार करी तपोशुद्धि धाय तेम तप सयधी भावनाधो विधा-
रवा करी अणुशणु माटे स्वात्माने उत्साहित करवो पूर्व
सीधेन नियमोनु धरावर पालन करवुं सयम-इन्द्रिय मने
आदिना निग्रहरूप महानत-अगीकृत नए आश्रितो निर्माक

મૂલાર્થ—સિદ્ધિનુ ઉત્તરકાર્ય ધ્યાત્ ફલ વિનિયોગ
 પત્ને જે ધર્મસ્થાનોની સિદ્ધિ યપા પત્રી અન્ય જનોને તે ધર્મ-
 સ્થાનો યોગ્યતયા વપાડવા આ વિનિયોગ નામક લક્ષણ પામ્યા
 પત્રી ' અર્હિસા, દાન ' આદિ ધર્મો કદાપિ નિષ્ફલ યતા નથી,
 કિન્તુ પરપરાઈ અર્હિસા આદિ ધર્મસ્થાનો સુન્દરતાને પામી ઉ
 લ્લષ્ટ રૂપન ધારણ કર છે ભાવાર્થ નિશ્ચયતયા મોક્ષને અર્પે છે
 સ્પષ્ટીકરણ—

પૂર્વના શ્લોકુપા ' સિદ્ધિ 'ના ઉપાયો વતાન્યા.
 અર્હિ મિદ્ધિ કર્યા પછા ' વિનિયોગ ' નામક
 ધર્મનુ પામુ લક્ષણ આચાર્ય ત્ગારિ છે. પ્રથમ તો
 આત્માને અમુક અમુક ધર્મોની યોગ્યતાગ્લો સપૂર્ણતયા
 વનાવગો તેમ યપા પછા અન્યન પાતાના સમાન કરવા
 પ્રાપ્તધર્મો અન્યમા વિનિયોગ-સ્થાપન કરી ધર્મસ્થાનોની અરિ
 ચ્છિન્નતા કરવી, જેથી સ્વાત્મા જ પાતરમા મુગપતયા તે જ
 ધર્મો પામી અલ્લક ફલયાગુનો અનુભવી વને એ જ ભાવ અર્હી
 આચાર્ય સ્પષ્ટ સમજાવ છે

કરનાર વસરુપમાનારાય આદિ, વૈરાગ્યમાવના-અનિત્ય આદિ
 દ્વાદશ માવના, આ સર્વ વિચારો તથા માવનાઓ આત્માની
 શુદ્ધિ અર્થે કહી છે સત્તેપમા આ સર્વ વિચારો જિનેશ્વરોપ
 કર્મનિર્જરા અને કલ્યાણ અર્થે જણાવ્યા છે માટે ઉપર કહ્યા
 પ્રમાણે અર્થી અને ધર્મી મનુષ્યે તેનો વારવાર અભ્યાસ કરવો
 જેથી મહાવ્રતોની અવલતા અને દશન-જ્ઞાન-ચારિત્રની નિતાન્ત
 પુષ્ટિ યાય

प्रथम पदार्थनी सिद्धि—उत्पत्ति अने पछी ज तेनो व्यापार कराय, अतएव सिद्धिनुं उत्तरकार्य-फलकार्य ' विनियोग ' व्यापार-स्थापन नामे पाचमो आशय सिद्धिना फलरूपे कथो पटले अहिंसा, सत्यवाक्, ब्रह्मचर्य, दान, पूजा विगरेनी पूर्ण कृशालता आख्या पछी ज अन्य आत्माने ते ते कार्योंमा जोडवा प्रयत्न करवो. भावार्थ ए के-स्वश्चात्माया प्रत्येक धर्मस्थानो प्राप्त थया पहेला, योग्यता आख्या पहेला, बराबर परिणाम्या पूर्ण, विधि ज्ञान अने स्वरूप समज्या विना अन्यने उपदेशवा प्रयत्न करवो ते विना रसवतीए भोजननो आग्रह करवा बरोबर रहेवाय. एव अपूर्ण धर्मस्थान अवस्थामा अन्यने उपदेश करवाधी स्र अने पर बन्नेने हानिकारक थाय छे आ विनियोग नामे आशय आख्या पछी अहिंसा आदि धर्मस्थानो कदापि निष्फल बनता नथी पटले अहिंसादि धर्मस्थाननु मुख्य फल निर्जरा करवा माथे आत्मा नितान्त धर्ममय बने छे, तेमज अन्यने उपदेशवाधी ते ते धर्मो अविच्छेदरूप कायम बन्या रहे-नाश न पामे भावार्थ ए के-विनियोगकर्ता जो कदाचित् धर्मभावधी खसी पण जाय तथापि कनककलशभग ए न्याये फरी धर्म सस्कारोनी जागृति थवाधी जमातरनी परपराए ते धर्मो कायम स्थिर रहे छे अने परिणामे ह्द धर्मस्थाननी सरहद भूमि पर आत्माने दोरी जइ चाबूद मोह-रूप उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करावे छे अतएव प्रथम धर्मो रक्षर प्राप्ति करवी अने त्यारवाद स्वपरना ह्दकर ह्दकर

जे कारणधी द्रव्यक्रियाने तुच्छ गणी भावनी प्राधान्यता कही ते कारण श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी वताये छे—

अस्माच्च सानुबन्धा-

च्छुद्ध्यन्तोऽवाप्यते द्रुत क्रमशः ।

एतदिह धर्मतत्त्व

परमो योगो विभुक्तिरसः ॥ ३-१३ ॥

सूत्रार्थ—उपरोक्त भावनी परपरायी ज क्रमे क्रमे शीघ्र अन्त करणनी शुद्धिनो वधारो प्राप्त थाय छे एटले अविच्छिन्न भावनी परपरा चाले छे, तेमज उपरोक्त भाव ए ज धर्मेनु खास तत्त्व छे अने भाव ए ज परम योग छे—भाव ए ज विशिष्ट मुक्तिनो रस छे

स्पष्टीकरण—

पूर्वे म्हेल पाउ आशयोनो वारवार अभ्यास करवायी भावनी दृढता ववे छे आत्मामा शुभ सस्फारो स्यापवा शुभक्रियानो वारवार अभ्यास करवो एम शास्त्रो उपदेशे छे अतएव 'प्रणिधान' आदि भावोनो अभ्यास करवायी तेनी दृढता थाय अने तेथी अनुबध प्राप्त थाय छे. पद्धी तेनी अविच्छिन्न परपरा चाले जेथी अत करणनी तीव्र-शुद्धि शीघ्र दीर्घकालना विलय वगर पमाय छे अन्तमा आ जन्म अथवा अय जन्ममा तीव्रशुद्धि यवाथी अधिरु कर्मक्षय आत्मा कर छे अर्ही आ भाव ज धर्मतत्त्व छे क अन्य काइ

धर्मतत्त्व छे ? एना उत्तरमा ' प्रयकर्ता ' एतदिह धर्मतत्त्व' ए पदथी पूर्वे कहल पाच आशयो-भावो ए ज सत्य रीते धर्मनु तत्त्व छे अर्थात् भाव वगर अन्य काई पण धर्मतत्त्व नयी, भाव विनानो धर्म उपरनी टापटीप ' ज कहवाय. ' योगश्चित्तवृत्तिनिरोध ' मनना ' विचारो-विकल्पनो रोध करवो ते ज ' योग ' ऋगो छे आ योगनी प्राप्ति शुभ अनुष्ठाननो व्यापार करवायी ज बने, एटले मनने शुभ-यान, अभ्यास, इश्वरगुणस्मरण आदिमा जोडवायी अन्य विकल्पो बच याय छे अने परिणामे निर्विकल्प दशासय मन बने छे अर्ही उपरना आशय-भावन पामवायी चित्तनी शुद्धि ने छेवटे सपूर्ण रुर्मक्षय यवार्था " मोक्षेण योजनात्योग " ' मोक्षनी साथे जे सबध करावी आपे ते ज वास्तविक योग कहवाय ' ए प्रमाणनो योग-शब्दार्थ आ भावोने लागु पड वायी आ पाच भावोने ज शास्त्रकार ' परमयोग ' पणो सबोधे छे, तथा आ भावमा ज विशिष्ट रुर्मक्षयरूप मुक्ति आपवानी शक्ति-प्रीतिरिशेष रस होवार्था भाव ए ज ' विमुक्तिरसः ' जाणवो परमार्थ ए ऋ-भाव ए ज धर्मतत्त्व, परमयोग अने विमुक्तिरस छे. आ इतुथी प्रथम तत्त्वज्ञोप उपरना आशयो प्राप्त करवा ए ज फलितार्थ अने धर्मतत्त्वनो मयितार्थ छे

उपर 'पाच आशयद्वारा मननी तीव्रशुद्धि थाय' एम कहु अने प्रथम ' शुद्धि पापना क्षयथी थाय ' ए प्रमाणे कहवायु हुने पाप तो अतीत-अनादि कालमा

अनेकधा आत्माए सेव्यु, तो पापस्वभावभूत आत्मा पापतो त्याग करी ' पाच भावनी ' ज अभिलाषा करे अने पापते बहुमान भावणी न माने ए कैप वने ? अर्थात् पूर्व कालयी जेनी साये गाढ मज्ज-तन्मयता छे एवा पापभावने मूकी शुभ आशयोनी प्राप्ति आमाने क्यायी थाय ? परमार्थ ए के न ज थाय, ए शकाना निरसन माटे आचार्य हरिभद्रसूरिजी रुढ छे—

अमृतरसास्वादज्ञ

कुभकरसलालितोऽपि बहुकालम् ।

त्यक्त्वा तत्क्षणमेव

वाञ्छत्युच्चैरमृतमेव ॥ ३-१४ ॥

मूलार्थ.—अमृतना भोजनतो स्वाद जाणनार लावा कालयी तुच्छ भोजनना रसयी पुष्ट थयेल होय तो पण अमृत जे वखते मले तें ज क्षणे तुच्छ भोजनने त्यजी दइ केवल अमृतना भोजननी ज इच्छा राखे छे

स्पष्टीकरण—

स्पष्टीकरण—जेम कोइ मनुष्य दरिद्र कुटुवमा जन्म पाव्यो तेने जन्मयी ज तुच्छ मक्काइ, जुवार आदिना भोजन मले, तेनायी ज ते मोगे ययो होय, परंतु अन्य स्वादिष्ट उत्तम भोजन देखा पण न होय तो पछी तेण देवताओनु भोज्य अमृतभोजन-तो क्यायी देख्यु होय ? आ मनुष्य पर कोइ

देवादि तृप्त धाय अने अमृतभोजननो स्वाद, तेना गुणो, तेनु स्वरूप अने तेनी दुर्लभता तेने उताये, एटले तुरत ज आ पेलो मनुष्य लावा कालनु पोतानु तुच्छ भोजन छोडी दइ ते ज उत्तम दुर्लभ देवमोज्य अमृत भोजननी इच्छा करे छे, पण दीर्घ कालना कुभोजननी चाहना करतो नथी

तथाप्रकारे—

एवं त्वपूर्वकरणात्—

सम्यक्त्वामृतरसज्ञ इह जीव ।

चिरकालसेवितमपि

न जातु बहुमन्यते पापम् ॥ ३-१५ ॥

मूलार्थ—एवी रीते अपूर्वकरण नामे उत्तम अध्यवसाययी सम्यक्त्वरूपी अमृतरसनो ज्ञाता आत्मा अर्ही दीर्घ कालधी अनुभवेला एवा पण पापोने कृतापि काले बहुमाननी दृष्टियी मानतो नथी-इच्छा करतो नथी.

“ स्पष्टीकरण ”

यथाप्रवृत्तिकरणना बलधी आत्मा शुद्ध परिणतिमय बनी ग्रथिभेदनी भूमिका पर आवीने उभो रहे छे, एटले विशुद्धतर परिणामना बरायी ग्रथिभेदनी क्रिया करे छे त्वारपछी अनादिधी अमाप्त अने अतएव अपूर्व-नवीन एवा अपूर्वकरण नामे अध्यवसायविशेषधी शुद्ध तत्त्वमार्गनी रुचिरूप सम्यक्त्वना

अपूर्व-लाभने पामे छे, जेथी अहाँ आत्मा हिंसा-अहिंसा, सत्य-असत्य, त्याज्य, आदेय, द्वेष, भोज्य-अभोज्य, आश-अआश, देव-कुदेव, गुरु-अगुरु, धर्म-अधर्म, तत्त्व-अतत्त्व, पापकारणो-पुण्यकारणो विगेर सर्वे पदार्थोने यथार्थतया निराक्षे छे, अन पछी विवेकने आत्मी अपूर्व आनदने अनु भवे छे एतलु ज नही किन्तु क्रोधादिनो उपशम, समार पर अप्रेम, विषयोर्था कटाळा, दान-हान-दुःखी पर दयालु, तत्त्वमा ज प्रेम अने अतत्त्व पर अश्रद्धा प्राप्त करी, ससारना कारणोनी अरुचि लाभ एकान्त नि श्रेयसभावना कारणो प्रति आत्मा आत्मान प्रेर छे एतले आ प्रकार अपूर्वकरण अध्ययसायना धरुथा सम्यक्त्वरूपा अमृतनु पान कर्या पछा, अथवा सम्यक्त्वनु वरावर स्वरूप जाण्या पछी दीर्घ कालथी आसेवल विपरांत मान्यता, ज्ञान, ज्ञानी, धर्म, देव आदिनी निन्दा, नाश, आशातनारूप पापोने बहुमानभावथी कटापि ते आत्मा मानतो नथी

अहाँ अमृतरस ते सम्यक्त्व अन पाप ते मिथ्या रचि अथवा प्रवचन-सद्य प्रथम गणधर, द्वादशागा विगेरे, तेनी निन्दा, उपघात, आशातना विगेरे पूर्णा श्लोकमा आ विषय समजवा माटे प्रथम प्रथम दृष्टात करी गया एतले आ दार्ष्टान्तिरुदु स्वरूप अहाँ जणाय्यु. पूर्वे दीर्घकालिक जेम कुभोजनने अमृतनो स्वाद जाणनार इच्छतो नथी तेम अहाँ कुभोजन समान दीर्घकालिक अभ्यस्त मिथ्यात्वानि पापोन अमृतभोजन तुल्य

सम्यक्त्वेना स्वरूपने जाणनार ' कदापि इष्टश्रेष्ठे मानतो नर्था परमार्थ ए के-मिध्यात्वादि पापोनी इच्छा ज्या सुधी समकि-
तनु स्वरूप ययार्थ जाण्यु नर्था त्या सुधी ज आत्मा करे छे,
अर्थात् समकितने ओळख्या पछी करतो नर्था.

' सम्यक्त्वरूपी अमृतरसने जाणनार आत्मा कदापि पापने इच्छतो नर्था ' एम श्रु, तो पछी जेन कोड प्रकारना सामान्य विशेष त्रतो-नियमो नर्था एवो सम्यक्त्वरारी जीव जगतमा पाप करे छे एम मत्यक्ष अनुभवाय छे तेनु शु १
था मश्नु समाधान कर्था पछी आचार्यश्री आ प्रकरणांना समाप्ति करे छे

यद्यपि कर्मनियोगात्

करोति तत्तदपि भावशून्यमलम् ।

अत एव धर्मयोगात्

क्षिप्रं तत् सिद्धिमाप्नोति ॥ ३-१६ ॥

मूलार्थ—जो के कर्मना सयोग्या ते ते पापशुद्धी सम-
किनधारी आत्मा करे छे, तो पछ ते आत्मा ते त पापा विना
भाधर्था करतो होवायी कालातर धर्मयोगना साधनो द्वारा
पूर्वना सर्व पापोनो अल्प कालमा नाश करी सिद्धि-मोक्षने
प्राप्त करे छे

“स्पष्टीकरण”

केवळ नितांत सम्यक्त्वधारा यदि निकाचित चारित्र्य

मोहनीय कर्मना उदयथी देशथी अथवा सर्वथी व्रतो स्वीकारी न शकवाथी आरम्भ, समारम्भ, परिग्रहादि पापोने सेवे छे, तो पर्य ते सर्व पापो अकर्तव्यबुद्धिण अशक्यपण्याथी ज करतो होवाथी तेने पापकार्योमा आसक्ति-तीव्रता-गाढ प्रेम न राख वाथी तेन विशिष्ट निश्चित पापवध यतो नथी, कारण के-पापना तीव्र शगर मत् वधनो मुख्य आधार अभ्यवसाय पर ज होय छे एतले आसक्तिपूर्वक करनारो तीव्र वध करे अने आसक्ति-भाषिना करनारो मद् वध करे छे करुं छे के-
 “सम्महिट्ठी जीवो जइ वि हु पाव समापरे किंचि । अप्पो सि होइ वधो जेण न निद्धघस कुणइ” ॥ १ ॥ इतु ए क-सम्यक्त्वधारीनी प्रवृत्ति ‘तप्त लोहपदन्यास’ ‘तपेला लोहापर जेम पग स्थापन कराय ए यायथी पापकार्योमा सभयपणे ज होय छे आ कारणथी ते आत्मा पापने उद्दामनथी मानता नथी, जेथी छेवटे धर्मना योगथी धर्ममा अति उत्साह धारणा करी तुरतज धर्मनी सपूर्ण सिद्धि पामे छे, अर्थात् समकिति जीव पापनो अल्प-वध करे छे ने धर्मना यथार्थ फलो पामे छे. एतले तीव्र वध न यवाथी ससारभ्रमण तेने दीर्घ कालपर्यंत करबु पडतु नथी

अर्ही ‘समकिति जीव पाप करे छे?’ ए मश्रुत समाधान करीने अथवर्ताए धर्मसिद्धि पामवानी योग्यता केम पमाय ए विषयनु विस्तृत कवन कर्या पछी ‘धर्मसिद्धि’ नामे आ अधिकारनी सपूर्णता जणावी.



(४) धर्मच्छुल्लिगषोडशकम् ।

गत प्रकरणात् “ अस्य स्वलक्षणानिदं सम्यग् ”
 ए श्लोकोर्था धर्मस्तु लक्षणं, धर्मस्तु स्वस्व इति हेतुं वाच्य
 आशयो तथा तेषु स्वरूपं, तेषु न धर्मसिद्धिना अविद्यया विगरे
 जगत्तया ह्ये ए रीति सिद्धं यथैव धर्म धर्मात्त इति हेतुं नदीं
 ते लिंग-चेष्टा, क्रिया, लक्षणो विना शोक्तव्यं शक्यं नदीं,
 तेषु न ‘ धर्मसिद्धि ’ कार्यद्वाराणं न जाणीं शक्यं हे
 अतएव ‘ धर्मसिद्धि ’ नामे अधिभार कथा पद्धी ते न धर्म-
 तत्त्वना विस्तारार्थं लिंग-चेष्टाश्चो, हेतुश्चो दर्शावना पाठ धीमान्
 हरिभद्रसूरिजी चतुर्थे षोडशकनामा प्रकरणे कथं हेतुः—

सिद्धस्य चास्य सम्यग्

लिंगान्येतानि धर्मतत्त्वस्य ।

विहितानि तत्त्वविद्भिः

सुखावबोधाय भव्यानाम् ॥ ४-१ ॥

मूलार्थ—कथा प्रपाण्य सिद्धं यथैव धर्मतत्त्वने जाण्यवा
 माटे योग्यं पुरुषो सुखार्थी मयजी नरु ते हेतुर्था आ

अविपरीत यथार्थ लिंगो-लक्षणो तत्त्वज्ञपुरूपोऽपि आ प्रमाणे
कदा हे

“स्पष्टीकरण”

गत प्रकरणमा जे कह्यु ते प्रमाणे वर्तवायी जहा
धर्मनु यथार्थ स्वरूप अने तेनी सिद्धि आत्मा पामी शके
ए सदेह गहित हे आ धर्मसिद्धिने योग्य पुरुषो-जेने धर्मनु
तत्त्व अने तेनी सिद्धि ररवाना अपेक्षा होय एवा जनो-अल्प
प्रयत्नर्था केम जाण्वा शके एवा उदेशर्था धर्मतत्त्वना लिंगो-ल-
क्षणा तत्त्वदर्शी जनोए म्हा हे, जे लिंगो अर्ही बतावासे
लक्षणोर्था ‘धर्मसिद्धि’ जाणी शकाय तेमज ‘धर्मसिद्धि’ना
अर्थीओ लक्षण जाण्या बिना धर्मसिद्धि पामी शके नर्ही
एतले आ अधिहारमा ते ज लक्षणा परमार्थज्ञाता पूर्वपुरुषोए
जे प्रमाण कदा हे ते ज लक्षणो आचार्य अर्ही दर्शावे हे

आ लक्षणो प्रथम अथकार स्वरूपमात्रर्था शरुआतमा
दर्शावे हे

औदार्यं दाक्षिण्यं

पापजुगुप्साथ निर्मलो बोध ।

लिंगानि धर्मसिद्धेः

प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ ४-२ ॥

मूलार्थ—उदारता १, दाक्षिण्यता २, पापनी निंदा ३,

सुदरबोध ४ अने बहुलताए लोकाप्रिय ५ ए प्रमाणे- आ पाच लक्षणो ' धर्मसिद्धि ' ना पूर्वपुरुषोए कहा छे

“स्पष्टीकरण”

श्रीगार्य-विजाल चित्तनी वृत्ति, द्वाक्षिण्य-सर्वने अनुकूल वर्तन, पापजुगुप्सा-पापनी त्याग, पापनी सेद निर्मलराध-यथार्थ, तत्त्वज्ञान, जनप्रियत्व-लोकोनो प्यार. आ पावे धर्मसिद्धिना विन्हो-लक्षणो जाणवा आया धर्मनी सिद्धि बराबर जाणी गकार छे. पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षणनु स्वल्प ग्रथमार पोते ज भागल दर्शाए छे एउके अहाँ तेनो विस्तार करबो अनुचित जणाय छे अहाँ नोछोनो प्यार गमे तेदला सुदर मद्बुवर्तनया सर्वथा प्राप्त करबो अन्तर छे, कारण के दुर्जनस्वभाव कोउथा जातय तेरो नयो प्यार सर्वज्ञो पणु सर्वना प्रेमने पापवा प्रसन्नय बन्या छे, तो मानन्ध सज्जनमकृति केम सर्वथा लोकाप्यार यामो अहे ? अन्तर ग्रथकर्ताए मूलमा ' प्रायेण ' ए वाक्ययो कहा लोकाप्रिय ए गुण दर्शाव्यो

“ औदार्य ' नामे प्रथम लक्षणनु विन्दारही मन्दा दर्शाए छे. ”

औदार्य कार्पण्यत्यागा-

द्विज्ञेयसाशयमहन्म ।

उदारताना कार्यो जाणवा परमार्थ ए के-मानयोग्य जनो, अने दीन, दुःखी, अपग, अघ, कृपण जनो साये उचित सद्भाव राखवो, हृदयनी विशाल भावना धारण करवी, कजुसाइने मूकी सर्वे धर्मकार्योणा प्रति उचित बुद्धि, गभीर अतःकरण धारवु आनु नाम ' आदर्य ' नामे धर्मनु प्रथम लक्षण शास्त्रकार कह्ते.

क्रम प्राप्त ' दक्षिण्य ' नामक गुणनु स्वरूप दर्शावे छे

दक्षिण्य परकृत्येष्वपि

योगपर शुभाशयो ज्ञेय ।

गाभीर्यधैर्यसचिवो

मात्सर्यविघातकृत्परमः ॥ ४-४ ॥

मूलार्थ—अन्य जन मवर्धी कोइ पण कार्य होय ते कार्य करी आपनामा अडग उत्साहयी सामेल थवु एवो जे शुभ अध्यवसाय, ते पण गाभीर्यता अने धैर्यतानी साये मत्सर-भावनो नाश करीने ज प्रवर्ते त्यारे परम उत्कृष्ट आ शुभ दक्षिण्य गुण आख्यो कहवाय.

“स्पष्टीकरण”

‘ दक्षिण्यता ’ नो दुक अर्थ एटलो, ज के-सर्वने अनुकूल पोतानु वर्तन राखवु, अर्थात् हीन, मध्यम अने उच्च एवा अणो वर्ग पैकीना कोइ पण मनुष्य साये एवु वर्तन राखवु

के जेथी स्वनिपिचे ते ते आत्माञ्चोने नकामो फतेग अथवा अघर्म न थाय, अथवा जे कार्यों अगर क्रियाञ्चो कग्वायी अन्यना कार्योंनी हानि थाय तेवा कार्यों बध करवा अर्ही. दीकाकार आ गुणनी विशिष्ट व्याख्या आपता बहु उदाण्णपा उतर्या छे प्रथम कथा प्रमाणे वर्तन राखनारो होय, अने विशेषतया ज्यारे अन्यजनोना कार्यों पोतानी दृष्टि दे-सयामा आप त्यार त्यार ते लोको पोतानी सहायता याचे अथवा न याचे तो पण पोतानी शक्तिने लोप्या वगर मनसा, वाचा अने काया ए त्रणे यागथी ते कार्यों सपूर्णतया विना जुकगाने सार्धा आपयामा उन्माहित दिल धारचु, आनु नाम तात्त्विक 'दाक्षिण्यता' रुही छे 'दाक्षिण्यता' नो केदलीकार लोको एरो अर्थ करे छे के-कोइने पण खोडु न लगाड्यु, कोइना दिलोने न दु.सववा आधी सर्वने राजी राखवा जूड, प्रपच अन खोटी गुशामतो करवी, आनु नाम 'दाक्षिण्यता' मानी तेतु वर्तन पोते राखे छे अने अन्यने राखवा तेरो उपदेश पण आपे छे. यदि बीजाञ्चो आ उपरनी मान्यता न कतूले अने न सेने तो तेने हलको गणवो, उतारी पाडवो, पोताना टोळ्याथी ते व्हार छे, दुर्गुणी अने आचारहीन छे, व्यवहान्न समजती नथी इत्यादि प्रकारे निंदे छे. आधी वस्तुतः खरी 'दाक्षिण्यता' जु स्वरूप मरी जवाथी अने आ गुणाने) लोको समजी जइ तेवा टोळामा सामेल बने छे 'मान्यतानो आशय मोटा जनसमूहमा

अने प्रतिष्ठित माधुसमुदायमा पण घर करी गयो छे, परतु वस्तुतः ए 'दाक्षिण्यता' नामक गुण नर्था कितु 'दाक्षिण्यता'ना बढाना नीचे मानलोलुपीपणु, पूजावानी लालसाओ आ पिना गुणो गुणीपणामा खपवानी प्रपची तृष्णाओन पोपन्नानो एक मार्ग छे एरु दाक्षिण्यपणु मूरिजीए जे रुहु ते ज कहेवाय अर्थात् जेशो अन्यना कार्योना हानि कर्था वगर पोताना प्रत्येक कार्योने साथे अने अन्यना कार्योनी बखते पोताना लाभोने पण मूकी दइ ते कार्या पेला पार पहाँ चाडवाने अहर्निश रुटिबद्ध रहे

अहीं डेटलीकवार केटलाको अन्यना कार्यो सारी आपे छे तेना माटे अपूर्ण पोताना भोगो पण आपे छे, परतु अमुक समये जनसमूहमा तेते कार्योने प्रकाशमा लावी कही बतावे छे के 'अमुक बखते अमुकनु कार्य में कर्तु इतु' इत्यादि अथवा तेते कार्यो करी आपी जींदगी सुधी सामानी जींदगीने पोताना गुलाम तरीके करवानो प्रयत्न करे छे केटलाको आ गुणना कार्य नीचे दवाइ जइ अति दु खने अनुभवे छे. अतएव प्रज्ञासिन्धु आचार्य—'गाभीर्यधैर्यसच्चियो' ए पदधी विशिष्टता जणाव छे के—दाक्षिण्यताप्रिय उपकारबुद्धिए अन्यना गमे तेवा कार्यो करी आपे अने गमे तेवा सामाना गुप्तमेदो जाखे तथापि कालातरे पोताना पर महान् विपत्तिनो समय आपे त्यार पण ते ते करेला उपकारो के कार्योनी गध सरस्वी अन्यना कर्तु पर न लावे एटले के आतरनो मेद

खाले नहीं आवा मकारनु जे वर्तन तेनु नाम ' गभीरता ' कहेवाय. आ गभीरतावाळो आशय उपरोक्त गुणवत्ता जो होय तो ज सत्य दाक्षिण्यपणु प्रकटयु कहेवाय अर्थात् गभीर आशय विशिष्ट दाक्षिण्यपणु राखनारना हस्ते उपर कहेला जुल्मो के अनर्थो यवा पामे नहीं. गभीर आशयनु वर्णन अन्यत्र आ मयाणु कशु छे—“ यस्य प्रभावादाकारा क्रोधहर्षभयाद्रिपु । विकारा नोपलभ्यन्ते तद्गुणांभीर्यमुदाहृतं ” ॥ १ ॥ “ जे गुणना प्रभावर्षी व्यक्तिगत चेष्टाओ अने हृदयना विकारो क्रोध, हर्ष अने भय आदिना अवसरे पण न जखाय तेनु नाम गामीर्यपणु कशु छे. ” गभीरप्रकृतिवाळो अने परना कार्यो करवामा दाक्षिण्यतावाळो कष्ट, दुःखो के लोकमय अथवा जनापवाद विगेरे आवी पडे तो अन्यना कार्यो करी आपवा माटे पोतानी पीठ घणी बखत फेरवी नारो अथवा तो वचमार्थी पढता मूके आवो अनुभव आपणने थाय छे अतएव मूलकर्ता भगवान् उपरोक्त गुणवाळो केवो होय तेना पाटे करीने ' धैर्यसचिव ' ए पदथी धैर्यतानी साये ज दाक्षिण्यता धारनारो अर्धी जणावे छे परमार्थ ए के-पेना हृदयनी अविचल वृत्ति एवी होय के-गमे तेवा उपद्रवो आवी पडे तो पण ' न्यायात्पथ ' प्रविचलन्ति पद न धीराः ' ए नियमानुसारे यायमार्गनु कदापि उल्लयन करे नहीं, तेपज आरमेल कार्यो वचमा पढता मूके पण नहीं. ए रीते गामीर्यता, धैर्यता ए बखे पवित्र आजयनी साये जेमा दाक्षिण्यपणु होय तो ज तेनु सत्य दाक्षिण्यपणु कहेवाय,

अथवा ते बन्ने आशय विनानु दाक्षिण्यपणु भद्रिकु ब्राह्मण
 मारुतारु कातिल शस्त्र जाणवु आटलु छता जो पोताधी
 अधिक गुणावतनी प्रशसा-कीर्ति आदिने सहन न करी शक
 तो, अथवा अन्य लोकोए करल पोतानी प्रशंसा-गुणास्तुति
 सहन न करी शके अने मदमा चढी जाय तो उपरोक्त गुण
 छता पण ते आत्माओ जगतने घर्णा बखत श्रापभूत थाय
 छे, आधा ज ग्रथकर्ता फरी- ' मात्सर्यविघातकृत्परम '
 ए चरणयो उपर स्थित गुणानी व्याख्यामां बगारो कर छे
 ' मात्सर्य ' एटले अधिङ्गु गुणानी प्रशसा अथवा स्वगुणानी
 प्रशसा श्रवण करीने जे अमङ्गिणुपणु अमर अभिमान उद्-
 भवे तो आ दोषन मूतामार्था ज उरोडी नाखी अधिक गुणी
 परनो प्रेम अथवा पक्षपातराली जेनी दृष्टि छे, तेमज स्वगुणनो
 जेने मद न होय एवो उत्कृष्ट पवित्र सुदाक्षिण्यस्वभाव जेनो
 होय तेनु नाम ' दाक्षिण्य ' नामे धीजो शुभाशय जाणवो.

उपरोक्त सुगुण यदि पापकार्यो प्रति घृणानी चुडि ने
 प्रगटे तो दर्मुणपणे परिणामे, अने जेन लोको छलप्रपच के
 माखणीयानालो आ गुण माने छे तेवा रूपमा ज आ गुणनी
 व्याख्या पर्यवसित थाय, तेम ज पापकार्यो प्रति तिरस्कारदृष्टि
 विनानो उपरोक्त गुण नरामो ज गण्यो छे, माटे त्रपप्राप्त
 "पापजुगुप्ता" नामे नीचा गुणनु वर्णन प्रथकार कर छे

पापजुगुप्ता तु तथा

सम्यक्परिशुद्धचेतसा सततम् ।

पापद्वेगोऽकरण

तदचिन्ता चेत्यनुक्रामतः ॥ ४-५ ॥

मूलार्थ—‘ पापजुगुप्सा ’ एतले पापनो त्याग
 अर्थात् यथार्थ शुद्धचित्तवडे निरतर पूर्वे करेल पापकार्योनी
 बारवार निन्दा भावना, अने वर्तमानकालमा पापो नही करवा
 तेम ज भविष्यकालना पापकार्योना कदापि विचार करवो
 नही, अथवा अनुक्रमे मायार्थी पापो आचरवा नही, वचनधी
 करवा नही अने मनधी चित्तवडा नही ए प्रमाणे ‘ पाप-
 जुगुप्सा ’ नामे त्रीजु धर्मतत्त्वनु लिंग भाण्डु

“स्पष्टीकरण”

अही धर्मतत्त्वना वे लिंगा रूपा पद्मी त्रीजु लिंग
 ‘ पापजुगुप्सा ’ नामे ज्ञानाव छे ‘ पापजुगुप्सा ’ ए
 पदमा पाप अने जुगुप्सा ए वे शब्दा छे, तेथी पाप एतले
 दुष्ट व्यापारो जेवा क-चारी, जूट, हिंसा, मैथुन आदि तेनी
 जुगुप्सा एतले निन्दा, पश्चात्ताप, रोद, फरी नही करवा माटेनी
 धारणाओ करवी अर्थात् अतीतकालमा पोताना आत्माए जे
 जे पापकार्यो कर्या हाय तन याद फरी बारवार पश्चात्ताप कर-
 वो, जेथी पोताना आत्मा भविष्यमा फरी तेवा कार्यो करवा
 ललचाय नही. था म्यले टीकाकार ‘ पापजुगुप्सा ’ एतले
 ‘पापपरिहाररूपा’ पापनो त्याग करवो एवो अर्थ कर छे.
 परमार्थ ए के-करेल पापनो पश्चात्ताप एवो करवो क भविष्यमा

हैं. "लोभमूलानि पापानि" ए नीतिवाक्य यथार्थतया सुघटित थाय छे. आ माटे ज उपमितिमा कथु छे "पापानां कथयाप्यल" "पापोनी वार्ता कश्चाथी पण पाप बधाय छे" पापकार्योमा काइ अजय एसी जादुइ शक्ति छे के-जेम भूत-डारुणनी सामे स्निग्ध दृष्टि देखवा मात्रथी देखनारने ते बोटि छ तेम पापो पण तेन याद करनारने बळगे छे आ हेतुर्था अथकार नहे छे के-तेना चिन्ता पण कोइ समये करवी नही ए रीते कालत्रयपण पापानां सामे तिरस्कारनी दृष्टिथी देखवु अर्थात् सर्वथा पापोना उपेना करवी अथवा अन्य प्रकार टीकाकार 'पापजुगुप्सा' ए पदनी व्याख्या करे छे कायार्थी पापनो त्याग करवो एटले कायार्थी स्वय पापो सेववा नही अन वचनार्थी पापो करवा नही, तेमज मनथी पाप करवानो विचार सरवो पण करवा नही, ए रीते अनुक्रमे काया, वचन तथा मन ए त्रण योग्यी पापोनो त्याग करवो आ प्रमाणे 'पापजुगुप्सा' नो गुण प्रगटे एटले प्रथमना 'श्रौदार्य' अने 'दाक्षिण्यता' ए वने गुणो योग्य रीते सार्थक गणाय. अही आगल आगठना गुणो उत्तर उत्तरना गुणो साथे निरुद सत्रघ धराने छे एटले उत्तरना गुणो प्रगटवार्थी उपरना गुणोमा वधार ताच्चिरुता आव छे अही 'धर्मतत्त्वना' ना गुण तरीक 'पापजुगुप्सा' नामे जे त्रीजो गुण बखव्यो छे तेनो अर्थ 'कालत्रयपण अथवा त्रिकयोग्यी सर्वथा पापनो अभाज करवो' एवो न करवो, किन्तु जे जे मोटा पापकार्यो

होय तेना पर अप्रेमभाव—नही सेवन करवानी बुद्धि ए ज अर्थ जाणवो, अन्यथा सर्वथा पापनो अभाव तो शैलेशीकर-
णना अन्तिम समयमा ज थाय छे

प्रथम ' पाप ' आदिनु यथार्थ स्वरूप समजवामा न आव्यु
होय तो ' पाप ' नी गर्हा केम बने ? तथा समजण विनानी
निन्दा पण घणी वार अधिक पापपथ करावनारी बने छे
तैम ज शास्त्रवचन पण ' ज्ञात्वा ' आदि वाक्योधी प्रथम
तो ज्ञाननी जरूरीयात स्वीकार छे, अतएव ' पापजुगुप्ता ' ए
गुणनी अधिक् दृढता करनारो चतुर्थ गुण ' निर्मलबोध ' नामे
शास्त्रकर्ता दर्शाए छे

निर्मलबोधोऽप्येव

शुश्रूषाभावसंभवो ज्ञेयः ।

शमगर्भशास्त्रयोगा—

च्छ्रुतचिन्ताभावनासारः ॥ ४-६ ॥

मूलार्थ—' निर्मलबोध ' एटले शुद्धबोध. शम-शान्ति-
रसप्रधान एवा जे शास्त्रो तेने श्रवण करवानी इच्छायी ज
आ निर्मलबोध-शुद्धबोध प्रगटे छे अर्थात् वैराग्य, प्रशम
आदि रमोनु पोषण करनार शास्त्रद्वाराण जे बोध प्रगटवो
होय ते ' निर्मलबोध ' नामे चोथु धर्मतत्त्वनु लिंग जाणवु.

आ ' निर्मलबोध ' श्रुतसार १, चिन्तासार २ अने भावनासार ३ एम प्रण प्रकारनो होय छे

“ स्पष्टीकरण ”

‘ निर्मलबोध ’ एटले विमलबोध अर्थात् जे ज्ञानमा प्रज्ञाननो-विकारभावनो मल न होय, कारण के बोध बे प्रकारनो होय छे एक तो व्यवहारिक तत्त्वनो अने बीजो धार्मिक तत्त्वनो व्यवहारिक तत्त्वनो बोध केवल उपाधि बधारनार अने समारभादि बधारनार द्वोवार्थी शास्त्रकर्ताए तेने अशुद्ध बोध कह्यो छे धार्मिक तत्त्वनो बोध पण बे प्रकारनो फह्यो छे जेमा गग, द्वेष के अज्ञानताधी आग्रहविशिष्ट पुरपोना वाक्यो होय एवा शास्त्रो श्रवण क अभ्यास करवार्थी जे बोध उद्भवे त, अने धीतरागकथित कवल त्याग-वैराग्य प्रणपरसने ज पोपनारा शास्त्रो श्रवण तथा अभ्यास करवार्थी जे ज्ञान उद्भवे त आ बे प्रकारना बोधमा प्रथमनो बोध आत्माने खोटा मार्ग पर लड जनार दोवार्थी सर्वथा उपेक्षा योग्य छे, तथा बीजा बोधमा पण बीतरागना नामे द्वेषादि उत्पन्न करनारा तथा आग्रही पुरुपोना कहेला जे जे बचनो होय ते पण उपेक्षाने ज पात्र छे आ इतुधी ज ग्रथकर्ताए मूलमा सामान्य ‘ बोध ’ ए पद न मूकता “ निर्मलबोध ” ए विशिष्ट पद मूक्यु छे अने टीकाकारे तेनी व्याख्या ‘ विमलबोध ’ एवी करी छे भावार्थ ए के-‘ विगत’ मल यस्मात् स

विमलबोध ' जेमाधी मल विशेषणें गयो छे एवो जे बोध ते विमलबोध जाणवो आ विमलबोधनी प्राप्तिनो मार्ग शास्त्रकर्ता ' शुश्रूषाभावसम्भवः ' ए वाक्यधी जणावे छे ' श्रोतु इच्छा शुश्रूषा ' ' शास्त्रो श्रवण करवानी इच्छा ' शास्त्रोना श्रवण विना अभ्यास न थाय तेम ज बोध पण न जवने, माटे अही शास्त्रश्रवणभाव ' विमलबोध ' प्राप्तिनो मार्ग कथो आ इच्छा परम अने अपरम ए वे प्रकारे वर्णवी छे. जे शास्त्रश्रवण करवामा विनय, भक्ति, आदर अने श्रद्धा होय ते परम, तथा जे कुतूहल, मान आदिनी बुद्धिया श्रवण कराय ते अपरम इच्छा आनु विशिष्ट स्वरूप ग्रन्थकर्ता एकादश षोडश प्रकरणमा कहवाना छे एटले अही अमे विशेष नथी जणावता ' निर्मलबोध ' नामे गुण कवा शास्त्रो श्रवण करवानी उद्भवे ते ग्रन्थकर्ता जणाव छे ' शमगर्भशास्त्र-योगात् ' जे शास्त्रामा प्रणम, वैराम तथा त्यागभावनु स्वरूप यथार्थतया वर्णव्यु होय तेवा शास्त्रो श्रवण करवानी श्रोताना हृदयमा ' निर्मलबोध ' गुण प्रगटे छे, कारण के अन्यथा प्रकारना शास्त्रो श्रवण करवानी मलिन वासनाओनु अधिक पोषण थाय माटे विमलबोध इच्छकोष केरल शृंगार, वीर के हास्यरसने बतावनार शास्त्रो साभलवा नहीं आ ' निर्मल-बोध ' श्रुतसार, चिन्तासार अने भावनासार एम त्रण प्रकार कथो छे आ त्रणोनु स्वरूप अने प्रत्येकनो मिश्रता शास्त्र-कर्ता ज आगल विस्तारधी दर्शावशे. नितान्त अही ममजवानु

एतलु छे के-आ ' निर्मलबोध ' गुणनी जागृति यया पछी ' पापजुगुप्सा ' नामे त्रीजा गुणानु स्वरूप परापर ख्यालमा आवी शके छे अने तेने प्रवृत्तिमा योग्य रीते मूकी शकाय नितान्त ए गुण माया रहितपण शुद्ध तास्विक भावनाने पामी शके छे अतएव ग्रन्थकर्ताए ' पापजुगुप्सा ' नी अनतर उपरोक्त ' निर्मलबोध ' नामे चतुर्थ गुण बताव्यो

प्रथम दर्शावल औदार्य, टाक्षिण्य, पापजुगुप्सा अने निर्मलबोध ए गुणाना अभावधा ज लोकनिन्दा, अपयश, मानहानि, अपकीर्ति आदि दुर्गुणो आत्माने लागु धाय छे अने ते गुणो आख्या पडा आ दुर्गुणा सत्वर नाश पामे छे. परमार्थ ए ऋ-उपरोक्त चतुर्गुणी आत्मा अवश्य आदेयवाक्य तथा जनप्रिय बने, माटे अही ग्रथकर्ता उपरना चार गुणोनु कयन कया पछी तेना ज फलरूप ' जनप्रिय ' नामे पाचमु धर्मतत्त्वनु लिग सानमा श्लाकमा दर्शावे छे.

अथवा प्रथम कथित चतुर्गुणी आत्मा धन्या पछी पण यदि तेनी कटलीक प्रवृत्ति लाकोने रचे तेवी न होय, अग्र औचित्यता, विनय, नम्रता के समयज्ञपणु न होय तो प्रथमना चारे गुणो धर्मतत्त्वनु परापर कार्य साधवामा निष्फल बने. आ हेतुधा पाचमु ' जनप्रिय ' नामे लिग दर्शावे छे.

युक्त जनप्रियत्व

शुद्ध तद्धर्मसिद्धिफलदमलम् ।

धर्मप्रशसनादे—

धीजाधानादिभावेन ॥ ४-७ ॥

मूलार्थ—पोते आचरित धर्मनी लोको प्रशसा करे, तेमज अन्य लोको तेनु अनुररण करे जेथी अनुरुमे पुण्यानु-
बधीपुण्यरूप फल धर्मीजनने प्राप्त थाय, अर्थात् आ रीते
अतिशे पोते करेल धर्मसिद्धिनु फल जेनाथी प्राप्त थाय छे
एवु शुद्ध-निर्मल अने योग्य 'जनप्रिय' नामे पाचमु धर्मतत्त्वनु
लिग जाणतु.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम शुरुआतमा ज 'जनप्रिय' नामे र्मतत्त्वनु
लिग परापर उचित ज छे एम 'युक्त' पदथी उचित कर
छे, एवु अनुचित नथी एवु भार मूकीने जगावे छे, कारण
के खरो 'जनप्रिय' ते ज होइ शक के दम बिना धर्माचरण
करतो होय तथा लोक निंदे तेनु आचरण न करतो होय
'जनप्रिय' यवाना कारणो आ प्रमाणे कहा छे प्रथम
'जनप्रियपणु' दाभिक जूट-कपटभावथी उपजावेलु न होतु
जाइए, केमके घणा लोको जनतामा पोतानु मारु देखाडवा
माटे अने सर्वने प्रिय थवा सार अनेकथा खोटी भीठागो तथा
असत्य कपटभावो आदिने सेवे छे. आ हेतुथी ज श्लोकमा
'शुद्ध' ए विशेषण थाप्यु छे एटले जे 'जनप्रिय'पणु
राग द्वेष विनालु-अने दम रहित निर्मल होय ते ज अर्धी आपे-

क्षिक छे आया मनुष्यो ज परिणामे स्व तथा परने अत्य
 धर्मसिद्धिना फलने अर्पण कर छे निदान ए के-दम अं
 श्टवर्तन वगन्ना मनुष्यो जे काइ अल्प पण धर्म आचरे
 निर्मलभावर्था सरे छे, आया तेओ थोडा धर्मारामनधी प
 घणा ज फलने पामे छे, तथा अय आत्माओ तेवाओनी क्रि
 देत्री प्रशसा-अनुमोदना करी अतमा ते ते क्रियाओ तेओ स्व
 कारे छ एतल उस्तत नओ धर्म ज पामे छे, कारण के
 यद्यदाधरति श्रेष्ठ , तत्तदेवेतरो जनः । स यत्
 माण कुन्ने, लोकस्तदनुवर्तते ॥ १ ॥ “ प्रतिष्ठित ज
 जे जे कार्योने आदरे ते ते कार्योनु अनुकरण इतर-प्राकृत
 कर, तथा तेओ जेने प्रमाणतया माने तेन ज इतरजने अ
 सरे ” सामान्यत अल्पज्ञनो पोतानार्था अधिक बुद्धिमान
 कार्यो तरफ वधारे विश्वास रारो छे हेतु ए छे के-तेओ
 विशेष बुद्धि, हिम्मत अने लाभालाभनो विचार करवा
 शक्ति अल्प होय छे, तथा बहुधा आवा लोकोनी दृष्टि अन्
 अनुकरण करवानी वधार टेवायेली होय छे एतले अन्य
 अनुमोदनीय कार्यो अवलोकी आवा लोको पोतानी स
 मतिरथा तेनु अनुमोदन करी तेवा उवा कार्योमा धर्मीओ
 पाछल पाछल थोडी थोडी गति कर ने परिणामे अल्पज्ञ
 पण उत्तम जनोना वर्तनना आधार पोतानु हित परपराए
 कर छे अतएव उपदेशको, गुरुजनो अने प्रयात कीर्तिनायको
 माटे शास्त्रकर्ताए कथन कर्यु छे के यदि आ लोको जो थोडु

पण विपरीत आचरण करे तो तेश्रो अनत दुःखना भागी बनवा साथे असख्य लोकोने अनत दुःखना भागी बनावे छे, माटे उपदेशक गुर्वादिकोए तेंवु वर्तन करयु के जे स्वपरने हितावद् होय निदान ए के—उपरोक्त जनप्रियपणानी प्राप्ति अर्थे शुद्ध निर्विकारी वर्तन अने धार्मिक निर्मल क्रियाओ करवी, तथा अन्य सामान्य जनो सदाचारी धर्मीलोकोना वर्तननी प्रशसा करी पोताना आत्माने अनुक्रमे धर्मी बनावे छे एयु समजी गुर्वादिको पोतानी महत्तानी जोखपदारी वरावर रूपात्तमा लइ पोताना चारित्रने उच्चतर बनावे, रुदापि दोष लागवा दे नहीं, एटले धर्मप्रशसा धर्मीजनो अने इतरजननी हृदयभूमिमा धर्मबीजनी उच्च शुद्ध वावणी करे छे एम वावणी यवा पछी जेम बीज उत्तम भूमिमा पड्या पछी अनुकूल वायु अने जलवृष्टिना सयोगद्वाराए पत्र, पुष्प तथा फलादिन उपजावे छे तैम अर्धी धर्मप्रशसा नामक बीज पण परिणामे स्वप्नने मोक्षरूप फल आपनारु धाय छे अत्रे मूलमा फहेल “ धर्मप्रशसादे ” ए पदनी टीकामा उपाध्यायजी आदि पदर्थी धर्म करवानी इच्छा, इच्छानो अनुग्रह, धर्मना उपायो शोधवा, धर्ममा प्रवृत्ति करवी गुरुसयोग मेळवत्रो अने छेवटे सम्यक्त्वनी प्राप्ति एटली वस्तुओ सूचवे छे आटठा पदार्थो आदि पदर्थी लेता धर्मप्रशसाने बीजनी उपमा सुष्ठुतया लागु याय छे अन्यथा तेने बीजपणो घडाववापा कल्पनानो आश्रय लेवो पडे छे, तैमज मूलकर्ताए आपेल आदि पद पण

सार्थक बने छे यशोभद्रमूरिजीण आदि पदनी व्याख्यान
दृकामी नाखी छे तेनु कारण एतलु ज के विस्तारमान उतरखु-

फरी मूलना “ बीजाधानादि ” ए पदनी टीकामा
आदिपदथी अकुर, पत्र, पुष्प अने फल ण चार पदार्थो
मूचित कर छे अकुरादिनु स्वरूप ललितविस्तरामा आ
प्रमाण छे-“ वपन धर्मबीजस्य, सत्प्रशसादितद्-
गतम् । तद्धिताद्यकुरादि स्यात्फलासिद्धिस्तु निर्वृतिः
॥१॥ चिंतासच्छ्रुत्यनुष्ठान-देवमानुषसपद । क्रमेणा-
कुरसत्काङ्क्ष-नालपुष्पसमा मताः ” ॥ २ ॥ “ सत्पुरु
षोर्ना प्रशसा ते बीज, धर्मनु चिंतवन-विचार करवो ते अकुर
विगेर अने सिद्धिनी प्राप्ति ते फल ” अथवा-“ धर्मनु
चिंतवन ए अकुरा समान, धर्मनु श्रवण करखु ए झाडा समान,
धर्मनु आचरण ए नाल समान तथा परपराए ते धर्मसाधनथी
देव, मनुष्यनी सिद्धि पामवी ए पुष्पतुल्य मानेल छे ” मोक्ष
ते फलतुल्य जाणयु अर्ही बीज बे प्रकारनु होय छे जेने रोप-
वाथी फटादि प्राप्त थाय ते अने जेने रोप्या पछी निष्फल
जाय ते, तेप ‘ धर्मप्रशसा ’ नामक बीजमः पण अद्भुत
शक्ति होवाथी उत्तरोत्तर फल विगेरे प्राप्त थाय छे, कारण के-
आ ‘ धर्मप्रशसा ’ ने शास्त्रकर्ता पुण्यानुष्ठीपुण्यनु कारण
कहे छे. “ पुण्यमनुबध्नातीत्येव शीलमिति पुण्यानु-
षधि तच्च तत्पुष्प च पुण्यानुषधिपुण्य ॥ ” जे पुण्य कर्या
पछी अनुक्रमे पुण्यकर्मोनी प्रवाह चाल्या करे, यावत् जे पुण्य

सर्वथा कर्मोनी निर्जरा करानी पट्टी ज आत्मार्थी अलग पाप
 आ प्रमाणे पुण्यानुबधी पुण्यपत्नी व्याख्या कही छे, एटले
 धर्म अने सदाचारनी प्रशसा करवाधी प्रशसा करनार उत्तरो-
 उत्तर पुण्यकार्योनी परपरा ज हस्तगत करे छे आ ज हेतुधी
 सूरिजीए शुद्ध एवा ' जनप्रियत्व ' नामक पाचमा गुणाने धर्म-
 सिद्धिना फल आपनार तरीके वर्णव्यो पुण्यानुबधीपुण्य
 माटे ज हरिभद्रसुरीश्वरजी वदे छे के—“ शुभानुबन्धवत्तः
 पुण्य, कर्तव्य सर्वथा नरैः । यत्प्रभावादपातिन्यो,
 जायते सर्वसपदः ” ॥ १ ॥ सुदर महेलमा रहनार
 अधिक सुन्दर महेलमा निवासार्थ जाय तेम ज पुण्यना प्रभावर्यी
 मनुष्यो उत्तरोत्तर अधिक समृद्धियोने पामे छे. अतएव
 गुणानुबधी एव पुण्य भविक आत्माआए सर्वथा उपार्जन कबु
 उचित छे, कारण के ए ज पुण्यना प्रभावर्यी नाश नहीं पाम
 नारी एवा सर्व सपत्तियो प्राप्त थाय छे. ” पुण्यानुबधीपुण्यना
 कारणो मयकृताए अष्टरूपा आ प्रमाणे कथा छे—“ दया
 भूतेषु वैराग्य, विधिवद्गुरुपूजनम् । विशुद्धा शलि-
 घृत्तिश्च, पुण्य पुण्यानुबन्धवदः ” ॥ १ ॥ एकेंद्रियी
 पंचेंद्रिय पर्यंत जीवोपर दया, वैराग्य, विधिपूर्वक गुरुजनोनी
 पूजा, विशुद्ध एटले पवित्र सदाचारो—आ कारणोधी पुण्यानु-
 बधीपुण्य प्रघाय छे ”

ए रीते परपराए धर्मसिद्धि अने तेना फलो आपवापी
 ' जनप्रियत्व ' नामे पावपो गुण ' धर्मतत्त्व ' ना, लक्षण

तराँके योग्य अने सुसंबद्ध कथो भारार्थ ए के-उपर कहल चारित्र्यवर्तनी क्रियाओ गरासापात्र धावाधी सदागरी शुद्ध-वर्तन होवाधी लोकोने हानि न थाय तेनी प्रवृत्ति आदरवाधी हास्य अने निंदा न घने तेषु आगरण ररवाधी पोते 'जन प्रिय' धनवा साथे परने अनुकरणीय चारित्र्यद्वारा स्वपर उभयने धर्ममिद्विकारक घने छे अतएव आ लक्षणधी धर्म पामेल धर्मी आत्मामा 'धर्मतत्त्व' नी प्राप्ति धइ छे के नहीं एषु अनुमान सुंदर रीते करी सकाय छे

उपर कथा प्रमाणे 'धर्मतत्त्व' ना पाच लक्षणो पाच श्लोकधी अर्थरत्नाए विस्तारधा वताव्या, ते पर्थी तेनु स्वरूप समजाव्या पछी निरकी काइ पण आत्मा धर्मीओनी परीक्षा करवा जरूर समर्थ थाय एमा सदेह नथी, तथापि विशिष्ट परीक्षा माटे फरा अर्थरत्ना तना धर्मी आत्मामां विशिष्ट दोषो जेना के प्रियवृत्त्या विनेरेनो जरूर अभाव होय ते समजाववा माटे दृष्टातपूर्वक आदि दोषोनु विस्तृत स्वरूप दर्शावे छे—

आरोग्ये सति यद्वद्

व्याधिविकारा भवन्ति नो पुंसाम् ।

तद्वद्धर्मरोग्ये

पापविकारा अपि ज्ञेया ॥ ४-८ ॥

मूलार्थ—आरोग्यता-रोगनो अभाव धया पछी जेम मनुष्यने काइ पण व्याधि सबधी विकारो उद्भवता नथी

तेमज धर्म सत्रयी आरोग्यता मल्या पछी पापरूप विकारोनो जन्म घतो नथी.

“स्पष्टीकरण”

आरोग्यता एटले तदुरस्तीपणु, रोगनो अभाव, एटले तदुरस्तीपणामा व्याधिओ जन्मे तो तदुरस्तीपणु न कहै-वाय, कारण के तदुरस्तीपणु तथा व्याधियो ए वनेने परस्पर प्रतिबधक प्रतिबध्यभाव छे, ते ज प्रमाणे प्रथम जणावेत पाच लक्षण विशिष्ट ‘ धर्मतत्त्व ’ पाम्या पछी पापविकारो जेनु स्वरूप ग्रथकर्ता नीचे जणावे छे ते कदापि उद्भवे नहीं अर्थात् ए पापविकारोन बध करनार उपरोक्त धर्मतत्त्वरूप आरो ग्यता जाणवी. आ श्लोकना पूर्व भागमा ग्रथकर्ताए दृष्टात आप्यु अने उत्तरभागमा दार्ष्टान्तिरनी घटना करी छे परमार्थ ए के-आरोग्यतानी सामे धर्मारोग्यता अने व्याधिरिका रोनी सामे पापविकारो ए प्रमाणे दृष्टात दृष्टातिकरनी घटना समजवी

धर्मतत्त्वना प्रभावथी जे जे पापविकारोनो नाश थाय अथवा उद्भवे नहीं तेनु स्वरूप ग्रथकर्ता विस्तारथी दर्शावे छे.

तन्नास्य त्रिपयतृष्णा

प्रभवत्युच्चैर्न दृष्टिसम्मोहः ।

अरुचिर्न धर्मपथ्ये

न च पापा क्रोधकडूतिः ॥ ४-९ ॥

मूलार्थ—आ धर्मतत्त्व पामेल मनुष्यन अतिगाढ विषय-
तृष्णा उद्भवती नथी तेमज दृष्टिसमोह पण पराभव करी
शक्तो नथी, अने धर्मरूपी पथ्य पर अरुचि आनती नथी,
एव पापीष्ट क्रोधनी खुजलीओ के जेनाथा धर्म-धननो नाश
थाय ते पण आविर्भाव पावती नथी

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकी मूलकर्ता धर्मतत्त्व पाम्या पछी तेना
प्रभावधी शुभ आत्मान क्या क्या पापविकारो उद्भवता
नथी तेनो केवल नामनिर्देश दर्शावे छे, कारण के नाम
निर्देश कर्या पछी विशेष स्वरूप रहवाना सुगमता थाय उपर
धर्मतत्त्वना प्रभावधी पात्र विशिष्ट गुणोनो लाभ थाय एवु
विधिमुखे प्रतिपादन कर्युं, ह्य निषेधमुखे दोषो न उद्भवे ते
अहीं जगावे छे जो के गुणप्राप्ति जणाव्या पछी दोषाभाव
धयानु अर्थापत्तिथी ज लभ्य छे, एटले फरी दोषाभावतु स्वरूप
कहतु हाफदत परीक्षा जेवु ज गणाय, परतु अहीं विशिष्टता आ
समजवी के ज्या गुण अने दोषोनो परस्पर प्रतिवधरु प्रति-
वध्यभाव सुघटित होय त्या ज उपरोक्त न्याय लागु थाय
दृष्टान्त तरीके शील अने व्यभिचार, दान तथा कृपणता विगे-
रेने तथाप्रकार अहीं पण उपरोक्त पात्र गुणो अने आगल
कथन कराता पापविकारोन परस्पर प्रतिवधरु प्रतिव्यभाव
नथी, अर्थात् उपरोक्त गुणप्राप्ति यथा पछी गुण आगल
कथन कराता पापविकारो जागृतिन पामे छे. अतएव ग्रथकर्ताए
‘ दोषाभाव ’ स्वरूप व्यतिरेकमुखधी विस्तृतया भवाभिन्नपणे

स्पष्ट कथन कर छे अन्यथा आ ' दोषाभाव ' तु भिन्न स्वरूप दर्शावयानी जरूर नथी आ पापविकारो गाढ विषयतृष्णा १ दृष्टिसमोह २, धर्मपथ्यमा अरुचि ३ अने क्रोधकडूति ४ जाणवा आ चार विकारोनु विशेष स्वरूप प्रथकर्ता पोते ज विस्तारथी दर्शावणे पइले अमे अर्ही नाममात्रतु ज सूत्रन कर्तु.

प्रथम विषयतृष्णानु लक्षण जणावे छे.

गम्यागम्यविभाग

त्यक्त्वा सर्वत्र वर्तते जन्तु ।

विषयेष्ववितृप्तात्मा

यतो भृश विषयतृष्णोयम् ॥ ४-१० ॥

मूलार्थ—शुभ्र, स्पर्श, रस, रूप अने गंध ए पाच विषयो छे आ विषयोथी जेओनो आत्मा सतोप नथो पाम्यो तेवाओ गम्य अने अगम्यना विकर विचार्या वगर चार तरफ फाफा मार छे माटे अथ विषयशासनानी अपेक्षाए आ गाढ तृष्णा भान भूलावनार हावार्थी आनु नाम विषयतृष्णा नामे पापविकार विद्वानोए कह्यो.

“ स्पष्टीकरण ”

विषयतृष्णा नाम प्रथम पापविकारानु स्वरूप अर्ही जणावे छे तेमा मसारांन अगे विषयेच्छानो सर्वथा अभाव मानो अकल्पनीय छे अनादिर्ना उदयगत विषयेच्छा पूर्ण करवाने ज ससार ससारीओ रचे छे, आधी अर्ही

विषयतृष्णाने वे विभागमा वहेची गवाय* एक साधारण विषय-
तृष्णा अर्थात् अगाधारण अतिविषयतृष्णा अर्थात् वझे
विषयेच्छात्रोने पाप ज मानी छे तथा जे विषयेच्छानी पूर्णता
करवाने आत्मा पोतानो विषय अने मर्यादा तोडवापर्यंत नीची
दशामा उतर नहीं तेमज इल्लोक परलोकना अकार्योधी सभय-
पणे प्रवृत्ति आदर तेने साधारण विषयतृष्णा जाणावी पापवि-
कारना लक्षणार्था वाढिभूत माना छ, कारण के आ विषयेच्छा
प्रतधारी जैना तथा सम्यक्त्वधारी आत्माजा पण एकाएक
त्यानी शक्ता नथी अने परिणामे स्पष्टित साधवाने समर्थ
थाय छे सम्यक्त्व पाप्मा पछी भक्तचक्रवर्ती चोसठ हजार
राणीयो साथे भोगविलास करता हता चेडाराजा, उदायी महा-
राज, कृष्णवासुदेव अने श्रेणिकराजा विगेरना दृष्टातो शास्त्रमां
मसिद्ध छे परमार्थ ए के-धर्म अने आत्महितनु साध्य भ्रष्ट
न यतु जोइए आ विषयेच्छा पण आसक्ति अने अनासक्ति
भेदोधी वे प्रकारनी जाणवी तीर्थंकर विगेरना जीवो मति श्रुत-
अवधिज्ञानवत छतां जे अमुक उपो पर्यंत गृहवासमा रही राज-
भोग, भोगविलासो सचता हता ते मात्र उदयगत कर्मोना फलोनी
विचित्रता जाणीने तेना अनुभवार्थे ज भोगवता अर्थात् अना
सक्तिपणे रक्षा हता अने ज्यार कर्मोदय शात ययो एटले
तुरतन वस्त्राचले लागेल तृणनी माफक मर्व भोगनो त्याग
करता तेमज नेमनाथप्रभुए कर्मोदय न होवाधी गृहवास सेव्यो
नहीं, ए ज अनासक्त विषयेच्छानी अवधि जाणवी वासुदेव,

चक्रवर्ती अने राजाओ रिगेरे धर्मस्वरूप जाण्या पट्टी, वन अने समाकृत पाण्या पट्टी जे विलासादि सेवता ते अनासक्ति नहीं किन्तु ग्रामक्ति ज हती आ परधी समजवानु के जेगो निश्चयनी वातो करी, अध्यात्मनो डोळ घाली, तिथि के अतिथि, रात्रि के दिवस, खाद्य के अखाद्य, गम्य के अगम्यनो विचार वाजु पर भूमी विषयेच्छाओ-तृष्णाओ पूर्ण करणामा ज लीन बनी, अन्यने अपने आसक्ति नहीं, मात्र कर्मोदयना लीये ज आ अमारी प्रवृत्तिओ चालु छे, जो आसक्तिपूर्वक चेष्टा होय तो ज पुन कर्मनो बंध थाय अतएव जिनेश्वरोए शास्त्रमा अव्यवमाए बन्ध मान्यो छे ए समागो समनाये छे तेओ प्रति अहीं अने विशेष नहीं कहैका मागता; पण आ लोकोए उपरना भेदो विचारवा तेमज पोतानी चेष्टाओ अनामक्तिपणानी छे (1) ए वात उपर दर्शित स्वरूपनी साथे विचारवी जेथी येवडा पापरथी पोताना आत्माने बचावी लेवाय

अत्रे चालु श्लोकमा केवल अतिविषयतृष्णानु स्वरूप प्रयुक्ता जणाने छे, जे विषयेच्छाना चलथी कोइ पण आत्मा भूढ अने विवेकमर्यादा रहित थाय. "कामान्धा न पश्यति" ए याये कामीजनो काइ पण जोइ शके नहीं, एव परिणीत, अपरिणीत, घालविधवा, क'या, रटा तथा वश्या गमे त्या गमन करे, स्व जाति तथा परजातिनो पण विचार जे करे नहीं, रात्रि-दिवसनो विभाग, तिथि-अतिथिनो विभाग पण जे जाळये नहीं, नितान्त

चेल मनुष्यने धर्मना साधनो तथा धर्म कयाथी उपलब्ध थाय ? हेतु एके-तेने स्वप्ने पण स्थहितनो विचार आवचो अशक्य छे

आ स्थले रावणनु चरित्र हितार्थनि मनन करवा जेवुं छे रावण एक समर्थ राजाधिराजनु पद धारवा साथे विजाताने पण टकोर करनार महाप्रज्ञाशाली हतो, जेना बुद्धि-चातुर्य आगल ऋष्यपति सरीखाओ पण सबरू समान मनाया हता, जेना दक्षना अने बलिष्ठता पासे दैत्यो तथा राक्षसो धरयक कपित यना हता, जे नीतिशाली होइ प्रजानु वात्मन्यभावर्था पालन करतो हतो, आवो समर्थ अने चतुर छना ज्यार सीता प्रति तेनु मन ललचायु त्यारे ते सर्व भान भूला गयो, स्वस्त्री के परस्त्री, कार्य के अकार्यनो विचार रह्यो नहीं, नितान्त तेना ज धानपा दुर्बल धवा लाग्यो छेवटे पापनो, अनैतिनो, लोकलज्जानो, अपकीर्ति विगेरेनो भय त्याग फरा सीताने पोतान त्या उठावी लाव्यो अने तेनी साथे पोतानी वासना तृप्त करवाने घणाये गोया खाधा. अतपा वासना पूरी यइ नहीं, कोइनु मान्यु नहीं, सर्वथा भ्रष्ट ययो अने पोतानी पाच्छळ जगत पर सदाने माटे अपकीर्तिनो पुज राखी गयो

आ सर्व स्थितियो उपर कहेल अतिविषयतृष्णानुं ज कार्य समजवु. अतएव ग्रंथकार आ तृष्णाने ' पापविकार ' गणी धर्मा आमामा आनो अभाव जणाये छे, तैम ज खास श्लोकमा जणाव्यु छे के- ' विषयेष्ववितृष्णात्मा ' आ

तृष्णाना उदयधी समर्थ आत्मा पण सर्वदा विषयोमा अतृप्त ज रहे छे, एटले गमे तेरा सुत्तर अप्राप्य अने अलौकिक भोग्य पदार्थो उपलब्ध घाय तो पण अन्य अन्य विषयो मेळववाने अभिलाषा ज रहे छे. आ इतुधी ज आ तृष्णा त्याज्य गणी अने आ तृष्णाना उदयमा उपरोक्त ' धर्मतत्त्व ' पामवो दुर्लभ गताव्यो.

द्वे दृष्टिसमोह नामे बीजा पापविकारनु स्वरूप प्रगट करे छे.

गुणतस्तुल्ये तत्त्वे

सज्ञाभेदागमान्यथादृष्टिः ।

भवति यतोऽसावधमो-

दोष खलु दृष्टिसमोह ॥ ४-११ ॥

सूत्रार्थ—जेनु फल एक सरगु होय एवा वे तात्त्विक पदार्थो छे, छता उच्चे पदार्थोने नामभेदधी अथवा पोतपोताना आगममा बतावेल प्रकारधी अन्यथापणे माने एवा प्रकारनो दोष जेना उलधी प्रगटे तेने निश्चयतया विद्वानो 'दृष्टिसमोह' नामे बीजो पापविकार माने छे.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम पापविकार ' विषयतृष्णा ' जणावी हने 'दृष्टिसमोह' नामे पापविकार जणान छे अर्था ' विषयतृष्णा ' ना स्वरूप पड्डी ' दृष्टिसमोह ' नु स्वरूप कयन कर्यु पण प्रथम

‘दृष्टिमोह’ नु अने त्यास्वाद विषयतृष्णानु स्वरूप एवो अनुक्रम केम न जणाव्यो ? ए प्रश्न सहजतया पैदा थाय छे उत्तरमा समजवानु के-जे अहीं चार पापविकारो जणाया तेमा उत्पत्तिक्रमनी अपेक्षाए विचार करीए तो प्रथम क्रोधक इति, बीजो धर्मप-यमा अरुचि, त्रीजो दृष्टिमोह अने चतुर्थे विषयतृष्णा ए प्रमाणे पापविकारो उपने छे क्रोधधी धर्ममा अरुचि, अरुचिथा दृष्टिना माह अने दृष्टिमोह थया पछी विषयेच्छा मगटे-आ क्रम छता अथर्ताए यथाप्राप्तान्य न्याये एटले सर्वथा प्रथम पदार्थोनो प्रथम न्याम करवो अने पछी प्रधान प्रधाननो अनुक्रमे न्याम करवो ए रीति स्वीकारी छे

मूलना ‘दृष्टिमोह’ नामे पदनी टीकाभा-“ दृष्टिः दर्शन-आगम-जिनमत तत्र समोह समूढता अन्यथोक्तस्वान्यथा प्रतिपत्ति दर्शनसमोहः ” “ दर्शन एटले आगम-जिनमत तेमा मूढता अर्थात् आगममा कहत वस्तुन अन्यथापणे स्वीकारनी तेनु नाम दर्शनमोह जाणवु ” ए प्रमाणे कहु छे आधी दृष्टि एटले मान्यता-वस्तुप्रतिपत्ति तेमा मतिनी व्याहूलता ते ज दृष्टिमोहनु खरु स्वरूप ममजवु अहीं दृष्टिमोह वस्तुबोधमा मुझवण करानी वस्तु-स्वीकारना रागमा खेंची जाय छे, अने दृष्टिराग अमुक व्यक्तिमा राग उपनावी व्यक्तिमेम तरफ खेंची जाय छे आधी जे प्रेम बन्या पछी अनेक अनर्थो नया आत्मग्रहित वेठवा छता आ रागने समजु मनुप्य परा छोडी शकतो नहीं.

उत्पत्ती ते ते आत्माश्चो पापन पापरूप न माता कर्तव्यकर्म
 माने छे. आ ज दोपना उलथी उच भूमिकाए पदोंचेल आत्माश्चो
 उधे मुरी पढी अधोमार्गगामी न्या छे जमाली महावीर
 प्रभुर्था उलटो थयो, त्रैराशिकमत प्ररूपक सघ आचार्य अने
 भगवतना मिद्वान्तर्था उलटो चाल्यो चिगेरे ' दृष्टिसमोहना '
 साम्राज्यनो ज प्रभाय कयो छे.

अथवा प्रकारातरे दृष्टिमोहनु स्वरूप जाण्यु ' गुणतः '
 ए पदना भाव अन्वयमाय ए अर्थ लेवो, अर्थात् ए क्रियाश्चो
 तुल्य होय, तेना कर्ताश्चो उधे जण एकरखा परिणामवाला
 होय अगरे यधे क्रियाश्चो समान भाववाली होय छता तेमा
 नामनेर्था अथवा आगमवचनया पूर्वे रहेल त्रैदिकोनी यज्ञ-
 हिसानी माफरु एरुने पापरूप मानवी अने अयने कर्तव्य-
 कर्म तरीक मानवा आ लक्षण जे प्रवृत्तिमा सुघटित थाय ते
 दृष्टिसमोह जाण्यो अने जे क्रिया उपतरु दृष्टिये मरखी होय,
 तेमा प्रवर्तन करनार पण उपतरु दृष्टिये पाप आचरण करतो
 देखाय छता परिणामनी धारा भिन्न ज-मलिन होय, ते क्रियामा
 पोतानी यत्किरितु स्वार्थ न होय तेमज क्रियाजन्य फलनी इच्छा
 पोताना माटे राखतो न होय किन्तु धर्मसरक्षण सुद्धि ज होय
 तो ते क्रिया पापरूप देखावा छता तेना कर्ताने नितान्त कर्म
 निर्जरा अने शुभवच ज थाय, परतु पाप लागे नहीं दृष्टान
 तरीके एरु माणस, कुटुंब स्त्री, पुत्र अने धन आदिनी लालसाथी
 व्यापार, रोती, व्याज, ग्रामसरक्षण आदि करतो होय, अने

एक मनुष्य केवल धर्मना माटे हाट, हवेली, व्याज, आम-
मरसण अने सुवर्णादिनी सचय करतो होय—आ वेमा पहे-
लाने स्वार्थ, वृष्णा, लोभ अने पापबुद्धि होवाची तेने आरम
जन्य पापग्रथ अग्रथ थाय छे, कारण ए के स्वार्थने माटे स्त्री
आदिना मोहना लीये आरमादि सेवनारमा कदापि ते ते
आरमादिमा शुभ परिणाम सभवतो नथी, ज्यारे गोगामा
स्वार्थ, लोभ अने दुष्ट परिणामो न होवाची केवल धर्म तथा
शासननी अपूर्व भक्ति होवाची शुभ परिणाम सभने छे.
एटले तेन शुभग्रथ ज थाय ए ज वात शास्त्रोमा विस्तारथी ज
प्रश्नोत्तर पूर्वक जग्यायी छे

फरी आ विषयमा अर्ही श्रीमान् यशोविजयनी उपाध्या
यनी गीनो प्रकार दर्शने छे.—‘ गुणतः शब्दार्थतस्तुल्ये
तदत्रे हिंसादीना ’ गुणार्थी—शब्दार्थार्थी हिंसादिनु स्वरूप
समान होय परंतु नाममेदथी पोतपोताना शास्त्रोमा भिन्न भिन्न
शब्दोधी दर्शावल होय भागथ ए के—सर्व दर्शनकारोए
पोतपोताना मतोमा हिंसादिनु स्वरूप स्पष्ट जग्यायी तेनो निषेध
दर्शायो छे, एव जैनो पण हिंसादिनु स्वरूप स्पष्ट कर्या पद्धी
तेना त्याग माटे महाप्रत शब्द, पातजल अकरण शब्द, बौद्धो
नियम शब्द कई छे एटले मात्र अर्ही नाममेद सिवाय अन्य
नाइ तत्त्व नथी वस्तुतः महाप्रत, अकरण अने नियम ए
अणोनी एक ज भाव शब्द—व्युत्पत्ति करवायी उपस्थित थाय
छे, तथापि महाप्रत कथनकर्ता अमारु जैनागम सुदर छे, अरु-

न धाय, प्रमाद आडो आने अथवा निद्रा पिगेर अनक विघ्नो खडा धाय तेमज निवृत्ति नयी, व्ययसाय बहु छे एम कही धर्मश्रवण न करे अने शृंगाररसना, विरयानी, हास्यनी, विलासोना ज्या कथाओ थती होय त्या उत्साहथी जाय, निद्रा के प्रमाद नडे नहीं, व्यवसायनो पण विचार आवे नहीं, बडी नाटको, सिनेमोटोग्राफ आदि देखवा पाटे पैमानो व्यय करा गाड प्रेमथी गमन कर, ज्यार धर्मश्रवण करवान काइ प्रेरणा कर तो 'एमा शु साभळवानु छे ? आपणे जाणीए छीए तेमा काड नवु नथी' अथवा 'अत्यार धर्मश्रवणनो समय नथी, अवस्था थया पछी घणु माभलीशु' इत्यादि कथन करी धर्मश्रवणमा अनादरभाव उपजवो ते, बडी रमणीरम मोजशोखमा लीनता गखवी अने तत्त्वभूतप दास्योमा, आत्मदितमा, नि श्रेयसमार्गमा जे प्यार उप-द्रवो जोडए ते न उपने किन्तु ते रसना आस्वादनभावमा परागमुखपणु प्रगटवु ते धर्मपथवना अरुचिना प्रकारो छे फरी जेना सगति करवाथी आत्माना गुणो आविर्भूत धाय, अना दिनी कुटेवो मटी जाय, दुकमा जाड्य धियो हरति सिंचति धाचि सत्य, मानोज्ञति दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्ति, सत्सगतिः
कथय किं न करोति पुसाम् ? ॥१॥ " बुद्धिनी जडतानो नाश कर, वाचामा सत्यरसनु सिंचन करे, मानयोग्य उन्नत दिशानु दर्शन करावे, पापने दूर करे, चित्रणे ॥ करे अने धोतरफ कीर्त्तिनो बधारो ॥ १ ॥ ॥ ॥
शु शु गभो नथी करती ? " ७

भावार्थ ए के-सत्सगति जगतना उचामा उचा सर्व लाभो प्राप्त करारे ठे आरी सज्जनसगतिना ससर्गमा रहेवाने चित्त प्रेराय नहीं, किन्तु जेना सगयी दुर्गुणो, पापमति, दुर्व्यसनो थने निकृष्ट परिणामो मळे तेवी सगति करवाने चित्त राजी याय-आ लक्षणोने शास्त्रकर्ता ' धर्मपथ्यनी अरुची ' नामे जीजी पापविकार गणावे छे आ पापविकारना बलथी आत्मा धर्माभूतनु पान कदापि अनुभवी शक्तो नहीं अने तेथी आत्पहित समजवाने इतभाग्य रहे छे आ श्लोकमा उपर दह्या प्रमाणे धर्मश्रवणमा अनान्तरभाव, तत्त्वरसास्वादमा विमुक्त्वता, सज्जनोनी असगति जे त्याठिया ते ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीओने ओळखवा माटे आ ऋण लिंगो जणाव्या छे, कारण के आ लिंगोने जाण्वा पछी स्वधात्मा अने परमात्माना अगे ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीआ परावर विचारी शके, तेमज तेनो विचार कर्या पछी आत्माने हितमार्गथी भ्रष्ट थतो वचावी शके

हवे ' क्रोधकडूति ' जाणवानो उपाय जणारे छे—

सत्येतरदोषश्रुति-

भावादन्तर्वाहिश्च यत्स्फुरणम् ।

अविचार्य कार्यतत्त्वं

तच्चिह्न क्रोधकडूते ॥ ४-१३ ॥

मुलार्थ—सत्य अने असत्य दोषो पढले यथास्थित

दोष अथवा असद्भूत दोषो परमुखधी शरण करी अतःकरणमा
 जे विकार उद्भवे अने पछी वाय आकृतिद्वारा ते विकारो
 प्रत्यक्ष देखाय तेमज आ विकारधी परमार्थ कार्यतरानो विचार
 बाजु पर रहे ते माटे आ विकारने क्रोधकृतीनु चिह्न कह्यु छे.

“ स्पष्टीकरण ”

जे कारणधी आत्मानी समधारण मकृति-मयस्थभावनी
 विकार थाय अने आत्मा स्वभावधी उलटो चाले के जे
 समये शरीरना प्रत्येक अवयवो आवेशमय जणाय ते विकारने
 शास्त्रकर्ता क्रोधविकार जणाये छे आ विकार उद्भववाना
 अनेरु गौण-मुख्य कारणो गणाव्या छे घणा व्यक्तिओ
 चीडियातु स्वभावना लीधे जे वखते कोइ पण चीडियापणाउ
 हागण उभु करे एटले चीडाइने आवेशमय मविकारी घने छे,
 ज्यारे बाजाशो पोतानी मानलोलुपी बुद्धिना लीधे मानप्राप्तिमा
 अतराय आवतो देरे एटले सविकारी थाय छे अन्य व्यक्तिओ
 अणसमजना कारणधी क्रोधी घने छे केटलाको हास्यस्व-
 भावधी, केटलाक कोतुकपणाने लीधे एम विचित्र कारणो
 आवेश उद्भववाना अनुभवाय छे अही क्रोधकृतीनाजे कारणो
 कहेशे ते मात्र काइक समजु अने विवेकीजनने जे कारणधी
 प्रोध भगटे ते ज जाणवा अविवेकी तथा अकल विनाना
 लोकाने उपरोक्त कारणधी क्रोध उद्भवे छे, तो पण अही
 जे कारणो दर्शावे छे तेमा ते कारणोनो अतर्भाव यवाधी
 उपरोक्त कारणो अही दर्शाव्या नथी, अने ग्रथदर्शित

कारणो एवा छे के जे कारणो बाल, मध्यम अने प्राज्ञ
ए त्रयो वर्गमा घटी शके, तेमज ' ङमरुक् भणि ' न्याये
प्रथम गुणस्वरूप कथा पछी दोषस्वरूप अने न्यारपछी फरी
विशिष्ट गुणस्वरूप जणाव्यु होवायी आ दोष त्रयो वर्गमा
लागु यइ शके छे आयी उपरोक्त क्रोधना कारणो अर्ही केम
न जणाव्या तेनो गुलासो यइ गयो मध्यम जनोने नोध
शायी उपजे ते आ प्रकारे जाणवु- ' सत्येतरदोषश्रुति-
भावादन्तर्यहिश्च यत्स्फुरण ' सद्वभूत दोषो साभ्रमायी
अने आरोपित दोषो साभ्रवायी अतरगमा जे विकारो
उद्भवे ने तेथी बाह्याकृतिमा विकारो तरी आये. परमार्थ ए क-
र्म्मदोषधी अगर अनादि अभ्यासबलधी अथवा अमुक
सयोगोधी सुदर प्रवृत्ति छोडी थोड्ड या वधारे जे काइ असुदर
आचरण कर्णु होय अथवा अन्यने नुकसान थाय तेवी क्रिया
सेवी होय, जे परथी बालनीवो, प्राकृत लोको लोकसमूहमा
अगर अमुक व्यक्ति समीपे ते ते दोषो जाहेर करे, निर्दा करे,
मानर्दान कर आ हेतुधी विवेकीओ पोताना दोषनो विचार
अने प्राकृत जनस्वभाव न विचारता-भ्रान पोताने मारनारने न
करदता ट्रेफालाने या पत्यरने करदवा दोडे तेम-प्राकृत बाल-
जीवोनी सामे मध्यस्थभाव मूकी उग्रतानु रूप हृदयमा धारण
करे. पछी असद्वभूत् वर्तन, आदेशनी नजर, शरीरना
प्रत्येक अवयोमा तेजस्वीपणु अगोकार करे तेमज पोतानामा
कोइ विरुद्ध दोष न होय, मिथ्या आचरण यहु न होय तेमज

अन्येने नुकसान पाय तयी त्रिया तद्योष आगरी न होय छता
 पण समजगनी खामीना कारणार्था, ईष्यादुद्विषी, घालस्वभाव-
 ने लीये विवेकीश्रीनी सुदर त्रियाने पण असुदर त्रिया मानी
 वधुमा खोटा दोषो आरोपी घालजीवो विवेकीश्रीने निंदे, तेथो
 पर ईष्या करे, हलका पाटमा माटे अनेक प्रपचो कर अतएव
 भर्तृहरिण वैराग्यशतकमा कथु छे क- ' गुणे गलभय '
 सज्जनानि स्वगुणना अगे नित्य गलजनोभो भय गह
 छ, तेमन प्रन्यत्र पण कथु छे- " न विना परचादेन,
 हृष्टो भवति दुर्जन । काक सर्वमरसान्, पीत्वा,
 विना मेध्य न तृप्यति " ॥ १ ॥ दुर्जनो सज्जनोनी
 निन्दा विना प्रसन्न यता नधी, कारण क कागढो सर्व रसतु
 आस्वात्न कर्षा पथी विष्टाभक्षण विना तृप्त यतो नधी "
 आ ज हेतुश्रीधी विवेकीश्रीो हृदयमा रान्न यइ घातआकारोपा
 क्रोधनु रूप धारण कर छे अने वस्तुतत्त्वो विचार परा भूली
 जाय छे क्रोधनो ए स्वभाव ज छे के पोताना उदयर्षी विवे
 कीश्रीने पण भानभूत्या कर छे परिणामे आ शोध वधता
 सर्वथा विवेकीश्रीो विवेकभ्रष्ट यया साथे वस्तुतत्त्वना विचारधी
 विहीन पाय छे, यात् यशोविजयजी महाराज आ उद्
 भूत क्रोधना विद्वाने आमानु अत्यत अहित करनार, दुर्ग
 तिना ऋदुक फलने अर्पनार अने अकार्योने जन्म ' आपनार
 एवा क्रोधना दुष्टविहारो उपरोक्त कारणोधी शरीरना प्रत्येक
 भागमा मध्यमजनोने उपजे छे एव स्पष्ट जाहेर करे छे

ए रीते अर्ही मध्यम जनोने क्रोध उद्भववाना सद्वृत्तदोषश्रवण
 १, आरोपितदोष अथवा असद्वृत्तदोषश्रवण २ अने कार्य-
 तत्त्वनो निर्विचार ३ ए त्रण कारणो दर्शव्या छे, तेमा
 बालजीवोने जे जे कारणोयी क्रोध उद्भवे छे ते कारणो
 बहुधा अर्ही दर्शित कार्यतत्त्वनो निर्विचार नामना त्रीजा कारणमा
 अतर्गत यइ शके छे

उपर दर्शित कारणोयी अने प्रथम दर्शित कोइ पण
 कारणोयी छद्मस्थभावने लीये अथवा वस्तुवोधनी स्वामीना
 लीये क्रोधविकारो जनताने उद्भव ए साहजिक छे, तथापि
 क्रोधना उदयने टाववा माटे अने उद्भव यवा न पामे ते सारु
 तेमन पश्चात्ताप करवा अर्थे शास्त्रकर्ताए अनेरु मार्गो कथा छे
 आ कारणो अमे आगळ उपर पाच प्रकारनी क्षमाना स्वरूप
 वखते विस्तारथी कथा छे, ते विवेकीओण खास विचारवा
 अने तेनु अनुकरण करवाने दत्तचित्त यवु ए वधार उचित छे

ए रीते विषयवृष्णा १, दृष्टिमोह २, धर्मपथ्यमा अरुचि ३
 अने क्रोधकहति ४ ए चार पापविकारोनु विस्तृत स्वरूप कही
 धर्मी आत्मामा आ विकारो न होय एम व्यतिरेक मुखयी तेनो
 अभाव जणाव्यो. इये अर्ही उपसहार करता तेज वातनो
 निर्देश करी फरी धर्मतत्त्व पाम्या पछी धर्मनी उच्च भूमिमाए
 आरूढ धयेला आत्मोने धर्मतत्त्वना प्रभावथी विशिष्ट

मैत्र्यादि गुणो प्राप्त यायुं छे, ए वातनो सामान्य निर्देश
अपकर्ता कहे छे.

एते पापविकारा

न प्रभवत्यस्य धीमत. सतत ।

धर्माभृतप्रभावाद्

भवति मैत्र्यादयश्च गुणा. ॥ ४-१४ ॥

सूलार्थ—उपर जे पापविधारे जग्याच्या ते पापविकारो
धर्मतत्त्व पामेल आ बुद्धिवान् आत्मान निरतर उद्भवता नथी,
तेमज धर्मरूपी अमृतपानना प्रभाषधी मंत्री १, प्रमोद २,
करुणा ३ अने अभ्यस्य ४ ए चार गुणो अवश्य उत्पन्न
घाय छे

“ स्पष्टीकरण ”

विशिष्ट रसायण खाधा पछी रोगादि विकारो खानारन
उत्पन्न थता नथी, एव पूर्वे कथा प्रमाणे गुर्वादिफला उपदेशधी
अथवा यथाभव्यत्वना परिपाकधी. ‘ धर्मतत्त्व ’ नो आविर्भावि
थमा पछी आगल जे पापविकारोनु विस्तृत स्वरूप अमे कही
गया ते अनादिना अभ्यस्त पापविकारोनु कटुक फल अने
तेनु, यथास्थित स्वरूप समनवाधी, तेमज तेनो अनुभव-स्मरणा
जागृत होवाधी, अतएव मारु अप्राप्य दुर्लभ एवु धर्मतत्त्वा
‘ फरीन विनाश न पामो ’ ए रीते सभयपणे आ धर्मा आत्वाओ

मवृत्ति' करे छे. श्रौं कारणार्थी श्रौं मतिमान् आत्मानि ते पापविकारो करीने कदापि उद्वृत्तता नथी, यावत् धर्माभूतपाप-
 नना प्रभावथी मैत्री आदि चार भावेनाओ अवश्य उपजे छे. अर्ही अमृत खाधा पछी खानारने जन्म-परण करवा पढतो नथी तेम ' धर्म ' ने पण अर्ही अमृत समान' गण्यो' छे, कारण के ' धर्म ' आत्माता उतार्या पछी अने आत्मा धर्म साये अभेदभाव पाम्या पछी जन्म-परणादि प्रपंचोने करतो नथी माटे धर्मने शास्त्रकर्ताए अमृतरूपे जग्यायो. एव अमृत खानारने अनेक नूतन उत्तम गुणो पण प्राप्त घाय छे तेम धर्म पामनार पण अर्ही तेना प्रभावथी पोतानी सुंदर पान्यताने तत्त्वप्रतीतिने स्थिर बनावनार मैत्री आदि चार पवित्र बुद्धि-
 शोने प्राप्त करे छे आज इतुथी शास्त्रकर्ताए अमृत साये धर्मनी तुच्यता करी ययोचित उपमालकार बताव्यो श्रीमान् यशोधिजपजी उपाध्यायजी स्वकृत टीकामा मैत्री आदि चार गुणोने धर्मना अभ्यासगुणरूप लिंगो जणाये छे, अर्थात् त्रिशिष्ट धर्माभ्यासद्वाराए आत्माने एकात धर्मपय बनावनोरा' आ चार गुणो छे निदान ए' क-आ गुणो उद्वृत्तता पछी आत्मा कदापि धर्मभ्रष्ट बनतो नथी उपरोक्त दोपनो' अभाव' यथाथी' धर्मतत्त्व आत्मा पाम्यो एव अनुमान बुद्धिमानो करी' शके अने पामेला धर्मतत्त्वनी उच्चता तथा वृद्धि कराने अवश्यमेव मैत्री आदि गुणोना अभ्यास धर्माए करवो जोइए आ इतुथी 'आ गुणो आभ्यासिक' गुणो' छे एरो' श्रीमान् उपा' यायजीना

કચનનો ભાવ છે અથવા ચાલ, મધ્યમ, યુધ્ધ એ ત્રણ ધર્મના અધિકારી સર્વો શાસ્ત્રકર્તાએ કયા છે. ચાલજીવો ધર્મ પામ્યા પછી ઔદાર્યના આદિ મદ્ગુણોને પ્રાપ્ત કર છે અને મધ્યમ જનો ઔદાર્યતાદિ ગુણો પામ્યા સાથે વિષયતૃપ્ણા આદિ પાપ-વિકારોને દૂર કર છે અર્થાત્ મધ્યમ જનો ચાલજીવોની અપેક્ષાએ ધર્મની ઉચ્ચ ભૂમિકાએ પહોંચી ગયા હોવાથી ગુણની શ્રેણી પણ તેઓને વધે જ છે, જ્યારે ચાલજીવો ધર્મ પામ્યા પછી તેના પ્રભાવથી ઔદાર્યતા આદિ ગુણો પામ્યા હોય પણ વિષય તૃપ્ણા આદિનો નાશ ન થયો હોય વટલે તેઓ અદ્યાપિ ધર્મની પ્રથમ ભૂમિકાએ જ સ્થિર છે, અને યુદ્ધ જનો ઘણે ભૂમિકાને પસાર કરી ત્રીજી ભૂમિકાએ પહોંચી જાય છે માટે તેઓ ધર્મનેની અપેક્ષાએ વિશિષ્ટ ધર્મતત્ત્વ પામ્યા હોવાથી વિશિષ્ટ ધર્મતત્ત્વના લિંગ તરીકે મૈત્રી આદિ ઉચ્ચતર આખ્યાસિક ગુણો પ્રાપ્ત કરે છે નિદાન એ કે-જેમ જેમ લાઇન વધતી જાય તેમ તેમ ઉચ્ચરોચ્ચર ગુણની સ્થિતિ પણ પણ પછી પણ ઉચ્ચતર વધતી જાય છે આ પ્રકાર ચાલ, મધ્યમ અને યુધ્ધ એ ત્રણ વર્ગ સર્વથી ધર્મતત્ત્વનો વિષય-વિભાગ પાઠવાથી પ્રથમ સામાન્ય ગુણો, પછી વિશિષ્ટ વોપાભાવ અને ત્યારપછી પ્રકૃષ્ટ ગુણો એ પ્રમાણે ઘયકર્તાએ જે અનુસમ દર્શાવ્યો છે તેનું તત્ત્વ યથાર્થતયા સમજાશે.

‘ મૈત્રી ’વિગેરે ચાર ગુણોને લક્ષણ હવે જણાવે છે

પરાહિતચિન્તા મૈત્રી

પરદુ સ્વવિનાશિની તથા કરુણા ।

परसुखतुष्टिर्मुदिता

परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ ४-१५ ॥

मूलार्थ—अन्य आत्माओ पोतानु हित केम पामे एम विचारवु ते मैत्री १. तथा अन्य आत्माओ दुःख रहित केम याय ए विचारवु ते कल्या २, अन्यनु सुख देखी प्रसन्न यवु ते मुदिता ३ अने अन्यना दोषो देखी तेनी उपेक्षा करवी ते उपेक्षा ४.

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोमनो भाव घणो ज स्पष्ट होवार्थी तेमज आगल उपर आ चारे भावनानु विशिष्ट स्वरूप कहवामा आवशे ए कारणी अथे अमे चारे भावनानु स्वरूप विचारवामा ववु उत्तर्पा नथी.

ए प्रकारे अभ्यासरूप मैत्री आदि गुणोनु स्वरूप कथा पथी ' धर्मतश्च ' ना लक्षणानो उपसहार करवानी इच्छायी अयकर्ता चतुर्थ षोडशक प्रकरणानो समाप्ति सूचन करे छे.

एतज्जिनप्रणीत

लिंग खलु धर्मसिद्धिमज्जन्तो ।

पुण्यादिसिद्धिसिद्धे

सिद्ध सद्धेतुभावेन ॥ ४-१६ ॥

मूलार्थ—धर्मनी ययार्थ सिद्धि जे आत्मा पाम्यो होय

तन ओळखावनार ध्या “श्रौदार्य” आदि पूर्वे रुहेल जिनप्रणीत
 लिंग जाणवु, तेमज उचरोत्तर पुण्यना उपायो प्राप्त करावी
 पुण्यादिना निष्पत्तिसाधनमा अबाधित-अवयफलजनक प्रति-
 ष्टित कारण पण ध्या “श्रौदार्यादि” ज लिंगो छे.

“स्पष्टीकरण”

आ प्रकरणनी आदिमा ज कहीं चूक्या के-भ्रमीं आत्मा
 ओने व्यवहारधी ओळखवाना खरा साधन तरीके “श्रौदार्य”
 आदि अतःकरणमा उल्लंघना पवित्र आशयो छे, कारण के
 मनुष्य मात्रनु खल-खोडु स्वरूप समजवा माटे तेना व्यवहारो
 पर ज आवार राखी शक्या, अने व्यवहार-पवित्रता हृदयनी
 उच-नाच वासना पर अवलगी रहे छे अतः प्रयकर्ताए अहीं
 पूर्वे जगाव्या प्रमाणे धर्मसिद्धिमान् आत्मानी परीक्षा माटे
 “श्रौदार्य” आदि पाच आशयो बताव्या आ आशयोनु विस्तृत
 स्वरूप समज्या पछी गमे तेवो सामान्य जन पण पोतानी अने
 परनी, स्वपरना व्यवहार परधी, धर्मापणानी कसोटी निकाली
 शके तेमज पोताने खोटी रीते अथवा अज्ञानताधी धर्मी मानतो
 होय तो ते मान्यताने बदली शके आ हतुधी “श्रौदार्य”
 आदि पाच आशयोने धर्मना लिंगो-चिह्नो कया. अहीं प्रय
 कर्ताए ‘जिनप्रणीत’ ए पदधी सर्वज्ञोए आ लिंगो-चिह्नो
 जगाव्या छे, एम कहीं सर्वज्ञकथनना आधार आ सर्व स्वरूप
 क्यु छे, पण स्वमतिधी उपजावीने काइ पण कथन कयु नधी
 ए भाव दर्शावे छे फरी आ “श्रौदार्य” आदि भावो धर्माप-

જ્ઞાતિ શ્રોત્રલાભે છે તેમ જ્ઞાત્માને ધર્મી પણ ચત્તાવે છે, કારણ કે—આ “ શ્રૌદાર્ય ” આદિ ભાવોની પ્રાપ્તિ થયા પછી ઉત્તરોત્તર ક્રમશઃ પુણ્યપ્રાપ્તિના સાધનો પ્રાપ્ત કરાવે છે, જેથી ઉત્તરોત્તર પુણ્યનો ઇલાહ ચાલ્યા કરે છે તેમજ જ્ઞાનયોગના સાધનોની પણ અનેકવા પ્રાપ્તિ થાય છે. છતપવ આ લિંગ-ચિહ્ન સ્વચ્ચન્ન્ય ફલપ્રાપ્તિ કરાવવા માટે અધ્ય-અધાધિત સ્વત્કારણભૂત છે, અર્થાત્ જ્ઞાનયોગની અને પુણ્યપ્રથના સાધનોની પ્રાપ્તિ “ શ્રૌદાર્ય ” આદિ ગુણ વિના સર્વથા અસમાધ્ય તથા અશક્ય જ છે. હેતુ એ કે—“ દયા ભૂતેષુ વૈરાગ્ય, ત્રિવિદાન યથોચિતમ્ । વિશુદ્ધા ગીતવૃત્તિશ્ચ, પુણ્યોપાયાઃ પ્રક્ષીર્તિતાઃ ” ॥ ૧ ॥ “ સર્વ ભૂતો પરદયા, વૈરાગ્યભાવ, યથોચિત વિધિપૂર્વક દાન અને અકલક ગીતવૃત્તિ—એ ચારે પુણ્યપ્રાપ્તિના ઉપાયો કહ્યા છે ” આ શ્લોકોક્ત પુણ્યના સાધનો એકજ કરવા માટે અવશ્યમેવ પૂર્વે જણાવેલ “ શ્રૌદાર્ય ” આદિ ભાવોની અપ્રત્યા રહે છે આથી જ પુણ્યપ્રાપ્તિની સાધનસિદ્ધિનું અને જ્ઞાનયોગ સાધનપ્રાપ્તિનું અવશ્ય કારણ જિનેશ્વરોએ ઉપરોક્ત લિંગ દર્શાવ્યું. પુનઃ ‘ સિદ્ધ ’ એ પદથી આ દર્શિત ચિહ્ન પ્રતિષ્ઠિત પટલે પ્રમાણોપપન્ન છે એમ કહી જેઓને સ્વ જ્ઞાત્માને ધર્મી બનાવવો હોય તેઓએ પ્રથમ ઉપર કહેલ ગુણો પ્રાપ્ત કરવા હૃદ સકલ્ય સામે હૃદ પ્રયત્ન કરવાની સ્વાસ આવશ્યકતા છે, એ ભાવ ધ્યનિત કરી તે ગુણો પ્રતિ અચકર્તા ભવ્ય જ્ઞાત્માનું સ્વાસ ધ્યાન સેવે છે.

आ प्रमाणे ग्रथकर्ताए आ चतुर्थ पोडशक प्रकरणमां वर्मना
 लिंगरूपे “ श्रौटार्य ” आदि पाच आशयोनु विस्तृत स्वरूप,
 पापविहारोनु फयन अने मैत्र्यादि चार भावोनु दर्शन करावी
 गाल, मध्यम तथा बुधने धर्मप्राप्ति थया पछी उत्तरोत्तर गुणनी
 स्थिति जेम वचती चाले तेने दर्शावी आ अतिम श्लोकथी आ
 प्रकरणो उपसंहार कर्यो. श्लोकमा ‘ खलु ’ ए शब्द मात्र
 वाक्यने सुशोभित करवा माटे ज आप्यो छे, तो पण तेनी
 निश्चय अर्थ करी “ निश्चयेन धर्मसिद्धिमान् आत्माने श्रोळ-
 खावनारु आ जिनप्रणीत लिंग-चिह्न छे ” एवो अर्थ कर-
 वामा काइ असंगतता देखाय छे खरी ? उता टीकाकारोए
 ते अर्थ कम न स्वीकार्यो तेनु समाधान अमाराथी केम बने ?
 ग्रथकर्ता प्रकरणनी समाप्तिमा ‘ सिद्ध ’ ए पदयी सपूर्ण
 प्रकरणने मगलमय जगावी उत्तर प्रकरणनी माथे आ प्रकर-
 णनो सत्रस्य दर्शावे छे अर्थात् प्रकरणनी समाप्तिमा जे खास
 वाक्य आपे ते ज वाक्यथी ग्रन्थकर्ता उत्तर प्रकरण खास प्रारभ
 करे छे, आथी ग्रन्थकर्ता केवा श्रौट कवि हरो ते तेमनी वाक्यर-
 चना परथी विद्वानोए समजवानु छे



(५) लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिषोडशकम्



आगता प्रकरणमा धर्मतत्त्वोना जे जे लिंगो कया तेथी
 आत्मा सामान्य प्रकारनो धर्म पाम्यो एतलु ज जाणी शक्या,
 एव सामान्य गुणो पण आत्मा पाम्यो छे ए पण ओळखी
 शक्या निदान ए के-उपरना प्रकरणमा धर्मतत्त्व पाम्या पछी
 जे गुणो प्राप्त थाय ते ज गुणसमूह नीतिथी चालनाराथो पामी
 शके छे, परतु एतला मात्रथी आ आत्माओ तात्त्विक धर्म
 पाम्या एवो निर्णय केम करी शक्या ? कारण के नीति अने
 लौकिक धर्म पामेल आत्माआमा पण “ औदार्य ” आदि
 भिन्न भिन्न भावो घणा अंगे होय छे एतले सामान्य दृष्टि
 “ तात्त्विक धर्म ” अने “ लौकिक धर्म ” पामेला आत्माओनो
 मेद पाहवो असाध्य छे, अतएव प्रभु हरिभद्रसूरिजी आ
 पाचमा प्रकरणमा “तात्त्विक धर्म” पामेल आत्माओ “ता-
 त्त्विक धर्म” ना प्रभावथी कया विशिष्ट गुणो प्राप्त करे अने कया
 विशिष्ट गुणोयो आत्मा “ तात्त्विक धर्म ” पाम्यो छे ए जाणी
 शक्या एव कया विशिष्ट गुणो बिना “ तात्त्विक धर्म ” नो
 अभाव छे एम निर्णय करी शक्या इत्यादि भावो समजाववा
 माटे विस्तारथी “लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति”नु स्वरूप दर्शावे छे.

एव सिद्धे धर्मे

सामान्येनेह लिंगसयुक्ते ।

नियमेन भवति पुंसां ।

लोकोत्तरधर्मसंप्राप्तिः ॥ ५-१ ॥

सूत्रार्थ—ए प्रमाणे “ औदार्यादिक ” चिह्नो सहित लौकिक धर्मनी सिद्धि तथा पछी जयवा सामान्य धर्म (लौकिक धर्म) पान्या पछी ‘ भव्यात्माद्योने ’ निश्चयथी “ लोकोत्तरतत्त्व ” नी प्राप्ति थाय छे

“ स्पष्टीकरण ”

उपाध्यायजी कहे छे के—ब्राह्मणा प्रकरणमा लिंग सहित सामान्य प्रकारे धर्मसिद्धि बतावा, आनु फल ए ज के विशेष गुणो अने विशिष्ट धर्म प्राप्त थाय खरु ए छे के—सामान्य गुणो अने सामान्य धर्म पाम्या पछी विशेष धर्म तथा विशेष गुणोनो लाभ थाय, ए ज बात अही दर्शाये छे.

चोथा प्रकरणमा लौकिक धर्म अने नीतिनिपुणता पामवानो जे प्रकार दर्शाव्यो ते प्रमाण वर्तन करवाथी अवश्य आत्मा सामान्य धर्म तथा “ औदार्य, ” “ टाक्षिण्यता ” आदि लिंगो पामी शके छे, परंतु आ धर्मरुचिमा लौकिक अने लोकोत्तर धर्मनो विभाग न होवायी तेने शास्त्रकर्ता सामान्य धर्म दर्शाये छे एनु कारण एटलुज के आ परिणामथी आत्मतत्त्वनु भान उपजी शक्तु नथी किन्तु लौकिक सुखनी वासनाओने जते वृत्त करे छे, तो पण आ परिणामद्वारा आस्ते आस्ते आत्मा धर्मना उदा स्वरूपमा उत्तरी शके छे अतएव प्रयकर्ता

‘ सामान्य धर्म ’ नी मिद्धि थया पछी “ नियमेन ” ए पदथी निश्चयथी “ लोकोत्तरतत्त्व ” मात्त थाय छै एम भार-पूर्वक कह छै अर्थात् जै आमा अत्रापि ‘ धर्म ’ शु छै ? एटलु पण जाणानो नथी ते आत्मा लोकोत्तर धर्मने क्याथी जाणो ? माटे तेवा आत्माए प्रथम लौकिक धर्म जाणवो जोइए-सिद्ध कर्गवो जोइए एटले काळातर लोकोत्तर धर्म पण पामी सके- अर्ही “ लोकोत्तर धर्म ” ना अधिकारी कोण होइ सके ए ज्ञातन टीकाकारा स्पष्ट कर छै के जैओ स्वस्व धर्मग्रन्थोमा कहल मुमुक्षुजन योग्य अनेक प्रकारना थाचारो, क्रियाओ अने अवस्थाओनी अपेक्षाए शुद्ध हाय अर्थात् तेमा रगाया न होय तेमज परिणामनी अपेक्षाए स्वच्छपरिणामी होय तथा स्वतंत्र व्यवहारमा अपुनईधरूपरिणामवाळा होय एव सम्यक्त्वशाळी दृष्टिवत् होय एवो हरकाइ आत्मा ते “ लोकोत्तरतत्त्व ” नी प्राप्ति करवा भाग्यशाळी थाय छै सामान्य लोको जे तत्त्वना परमार्थने जाणी सकना गथी-विचारी शकता नथी अने दृष्टिनी बहार छै एवा तत्त्वने शास्त्रकर्ताओ “ लोकोत्तरतत्त्व ” कह छै- भावार्थ ए के-परमार्थ धर्मने पामवाने जपरोक्त अधिकारी आत्माओ ज योग्य छै

आ “लोकोत्तरतत्त्व”नी प्राप्ति जे स्वरूपमा थाय ते अने क्या कालमा थाय ते वातने अथकर्ता दर्शाये छै.

आर्थ भागारोग्य

बीज त्वेषा परस्य तस्यैव ।

अधिकारिणो नियोगा-

चरम इय पुद्गलावर्त्ते ॥ ५-२ ॥

मूलार्थ—शुद्ध धर्मना राम पहेला अनादियी अमात आशय-पवित्रतारूप आरोग्यतानो जे लाभ थाय अर्थात् सम-कितनो लाभ थाय तेने “लोकोत्तरतत्त्व” प्राप्त कही छे आ “लोकोत्तरतत्त्व” प्राप्त परम माक्षरूप आरोग्यतानु बीज छे, अने आ बीज (समकित) नो लाभ क्षीणमायः ससारी एवा भवी आत्माने निश्चयथी अत्य पुद्गलपरावर्त्ते कालमा ज नाय छे

“ स्पष्टीकरण ”

व्याधिविकारो शान्त थया विना आरोग्यता दुर्लभ होय छे, एउ अनादियी आत्माने लागेला पापविकारो शान्त न थाय त्या सुधी आशयनी आरोग्यता अर्थाथी थाय? अतएव अथकर्ता “आदौ भाव्यारोग्य” ए पदथी “लोकोत्तरतत्त्व” नो लाभ देखाडे छे पूवे अनादि कालमा नहीं थयेल माटे आदि एटले शुरुआतमा ज जे अतःकरणनी पवित्रता थाय के जेना बलथी तात्र पापविकारो शान्त थाय आनु नाम “ भाव-आरोग्य ” जाणवु बीजा शब्दमा “ समकित ” कह्यु छे भावार्थ ए के-लौकिक धर्ममा समकित नहीं होतु अने तेथी ते धर्म तास्विक धर्म न कहेवाय एटले देशन्यून अगणोचेर कोटाकोटी साग-रोपम प्रमाणे मोहनीयधर्मनी स्थितिनो द्वास थया पछी ज आ

भाव आरोग्यता-समकितनो लाभ आत्माने थाय छे अने सम-
 कितनो जे लाभ तेने ज शास्त्रकर्ता लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति कहे छे
 एव प्रधानतर भाव-आरोग्यतानु मुख्य बीज आ "लोकोत्तर तत्त्व"
 समकितप्राप्ति सिवाय वीजु कह नर्ही भावार्थ ए के-आदि
 भाव-आरोग्यता, समकितप्राप्ति अने परम आरोग्यता ते सकलक-
 र्मक्षयरूप मोक्ष छे अने मोक्षप्राप्ति समकित सिवाय असाध्य
 छे आथी समकितने रीजकारणनी गणनामा गण्यु छे तो
 जेम तीत्र पापविहारोनी शांति पछी आदि भाव-आरोग्यता
 उपलब्ध थाय तेम सपूर्ण आरोग्यनी प्राप्ति पहलां गग, द्वेष,
 मोह अने तेना कारणभूत जन्म-जरा-मरणादिरूप भावरोगोनी
 सर्वथा शांति-क्षय करवाना परम आवश्यकता छे, अर्थात् आ
 भावरोगोनी शांति तेनु नाम निःश्रेयस-मोक्ष कह्यु छे ह्ये आ
 आदि भाव आरोग्यता-समकितना अधिहार अने तेनी प्राप्तिनो
 समय उत्तरार्द्धयी ग्रथकर्ता दर्शावे छे जेओनो ससार घणा
 भागे क्षीण थयो छे अने मात्र अन्तिम पुद्गलपरावर्तकाल
 ससारमा रही मोक्ष पाववाना होय तेओ ज आ समकितने
 निश्चयधी पामी शक्रे, अने अधिक काल जेओ ससारमा रहे-
 वाना होय तेओ कदापि आदि भाव-आरोग्यता पामी शक्रे
 नर्ही, एतलुज नर्ही पण उपाध्यायजी आगळ बधीने त्या सुधी
 पण कहे छे के-सर्व दर्शन संबंधी अपुनर्भवक्रिया एतले शान्त,
 दान्त, जिज्ञासु, मुमुत्सु आदि भावो पाम्या पछी आत्मा अपुन-
 र्भवपणाने पामे ते क्रियाओ पण अन्त्य पुद्गलपरावर्तकाल
 सिवाय अग्य पुद्गलपरावर्तकालमां पामी शकाय नर्ही, यावत्

“ मोक्षवासयो वि न तत्थ० ” इत्यादि श्लोकयो पंखें
जणावामा आये छे के-“ मोक्ष पानवानी जिज्ञासा पण अन्य
कॉटमा होय नहीं ” ज्वारे मोक्षनी जिज्ञासा न होय तो पत्नी
पोक्षना बीजभूत संप्रकृतप्राप्ति त्या क्याथी समये? अतएव
अथकर्णाए तेनो निषेध कर्णे अन्य पुद्गलपरावर्तकाल
जाया थाय ? आ प्रश्नना समाधान अर्थे अथकार आ प्रमाणे
शर्ही जणाव छे

स भवति कालादेव

प्राधान्येन सुकृतादिभावेऽपि ।

ज्वरशमनौषधसमयव-

दिति समयविदो विदुर्निपुणम् ॥५॥-३॥

मूलार्थ-जेम औषध ज्वरनो नाश करनार छता पण
समयपरत्वे ज ज्वर शान्त थाय छे एव कर्म, पुरुषकार, नियति
विगैरे कारणो छता पण आ अत्य पुद्गलपरावर्त प्रधानतया
कालपरिपाकयो ज स्वरूपतः धने छे, एम समयज्ञो निपुणतया
जारे छे।

“ स्पष्टीकरण ”

“मोक्ष” मति इच्छा। पण अर्थ्य पुद्गलपरावर्तकाले सिवाय
न चात्र ” एम प्रथम यही गया एतले आत्माने संसारमो
अन्यद्वयी पर्यन्ते करेता ज्वार अतिम-एक ज पुद्गलपरावर्त
काल इही गटे त्वार अर्थे मोक्षनी अभिलाषा जागे अर्थेति

“सुकृतादिभावेऽपि” ए पदयी सुकृत-दुष्टतर्क, प्रयत्न, नियति आदि कारणो विद्यमान छतां ज्या सुधी काल न पाके त्या सुधी अतिम पुद्गलपरावर्तपणु आत्माने अप्राप्य होय छे, एव मोक्ष अभिलाषा पण दुर्लभतर होय छे. अथात् अतिम पुद्गलपरावर्तपणामा काल ए मुख्य कारण छे अने कर्म, प्रयत्न, नियति आदि गौण कारणो मान्या छे आ ज हतुधी उच्चम धर्मरूपी अपेक्ष पण अतिम पुद्गलपरावर्तकालप्राप्त आत्माने आप्यु होय तो ते गुणकारक थाय अने अन्यने आप्यु होय तो नितान्त दोषकारक ज थाय छे, आ प्रमाणे सिद्धान्तवेत्ताओ भार दइने रुढ छे अने निपुणतया जाणो छे. अर्ही आर्यामा ‘सुकृतादिभावेऽपि’ ए पदना बदले ‘कर्मादिभावेऽपि’ एतु पाठान्तर छे, पण आ पाठान्तर मूक्याधी छद्मभग थाय छे. वार्का अर्थमा काई दोष जणातो नथी तेम ज ‘निपुण’ ए क्रियाविशेषण पद होवाधी ‘जेम निपुण होय तेम जाणो छे’

हवे ‘लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति’ समकितना लाभमा अतिम पुद्गलपरावर्तनकाल ज प्रधानतया कारण छे, अने अन्य साधनो प्रधानतया कारणभूत नथी एतु शु कारण ? ए वात अर्ही स्पष्ट कर छे

नागमवचन तदध

सम्यक्परिणामति नियम एषोऽत्र ।

शमनीयमिवाभिनवे

ज्वरोदये काल इति कृत्वा ॥ ५-४ ॥

मूलार्थ—तुरत प्रगट् थयेला अभिनव ज्वरमा औपघ
गुणकारी यतु नयी कारण के समय पावयो नथी, ए प्रमाणे
शास्त्रोना पथ्य वचनो पण अतिम पुद्गलपरावर्त्तयी अधिक
ससारीने सम्यक्पणे कदापि परिष्णमता नथी—हितकारी वनता
नथी ए खास अर्ही नियम छे

“ स्पष्टीकरण ”

जीजा श्लोकना विवग्णमा ‘ समकित ’ भासि अतिम
पुद्गलपरावर्त्तया ज थाय तेनु कारण स्पष्टपणे निस्तारथी
जणाव्यु, ए ज बात अर्ही अधिक् स्पष्ट कर छे अभिनव
ज्वरोदयमा औपघ आप्यु होय छता ज्वर पावया विना ते
पोतानु कार्य करी शकतु नथी, किन्तु ज्वरनो काल पाके त्यारे
ज सफल थाय छे एर शास्त्रवचन पण अधिक ससारीने कदापि
सद्धभावेन—मोक्ष—इच्छाने उपजावी शकतु नथी थर्यात् ग्राहक,
थोता, अभ्यासी आमा काइरु सरल परिणामी, पुण्यरुचि,
सन्मार्ग इच्छक बने त्यारे ज शास्त्रवचनो हृदयमा उच्चभावे पेदा
करी शके, अन्यथा ते ज शास्त्रवचनो विकारभावे उपजावनार
बने छे एवो दृढ नियम अर्ही बाध्यो छे; माटे ज अतिम पुद्गल
परावत्तकालमा समकितनो लाभ थाय थने मोक्ष—अभिलाषा
मगट थाय छे, परतु ते पहला थाय ज नर्ही

“ अतिम पुद्गलपरावर्त ” पहेला शास्त्रवचन न परिणमे एतलु ज नही पण शास्त्रवचन अधिक ससारीने विपरीतपणे ज परिणमे छे.

आगमदीपेऽध्यारोप-

मडल तत्त्वतोऽसदेव तथा ।

पश्यन्त्यपवादात्मकम-

विषय इह मन्दधीनयना ॥ ५-५ ॥

मूलार्थ—अर्हीया लोकने विपे मदबुद्धि चक्षुवाळा लोको परमाथर्था सिद्धातरूप दीपकमा नितान्त खोडु भ्राति रूप मडळ धारीने तिमिर-रोगीनी माफक ज्या अपवाद पदनो मार्ग न होय तेवा स्थळमा अपवाद स्थानने ज देखे छे अर्थात् हलकी दृष्टिधी पदार्थोंने निहाळे छे

“ स्पष्टीकरण ”

तिमिर नामनो नेत्रमा एरु प्रकारनो रोग थाय छे आरोग यया पक्षी रोगी नित्य दीपकने मयूरचंद्रकाकार, नी-
तालोरितभासुरम् । प्रपश्यन्ति प्रदीपादे-मडल
मन्दचक्षुषः ॥ १ ॥ “ मद तेजोमय चक्षुवाला आत्माओ
दीपकना मडलने मायूरपिच्छ चंद्राकारे नील, लाल अने
भास्वर इत्यादि विविध रंगमय देखे छे. ” ए श्लोकना भावा-
र्थया चंद्राकारे जुवे छे अर्थात् दीपकना प्रकाशमा पण रोगना

कारण्यही चद्रभ्राति उत्पन्न थाय छे एव अर्ही पण बीघे सप्तरीनी परिणति यथास्थित न होवाची तेपज मिथ्यात्व-वासित चिच होवाची तात्त्विक पदार्थोनो प्रकाश करवामा समर्थ अने अज्ञान अघकारनो नाश करनार सिद्धातरूप दीप-कमा भ्रान्तिनो आरोप करी विपरीतरूपे देखे छे. भावार्थ ए के-सिद्धान्तना वचनोना विपरीत अर्थो करी स्वमान्यतामा जोडी दे छे, अने तेथी करी परमार्थथी सत् पदार्थो होय तेने पण असत्पणे ज धारे छे, श्रद्धे छे अने माने छे. आया छेवटे आ आत्माओ ज्या अपवाद मार्गनो विषय न होय, केरठ उत्सर्ग मार्ग ज मान्य होय तेवा स्थलमा अपवाद मार्गनो अ-पा-रोप करी अपकृष्टादने ज स्वीकारे छे, अर्थात् मदबुद्धिवाला ते आत्माओ वस्तुत असद् मान्यताने ज मतिविकारथी अगीकार करे छे

मति-मालिन्यताथी ' आगम-दीपक ' ने भ्रान्ति मडलरूपे मिथ्यात्वी आत्माओ देखे छे एटले विपरीत मान्यता स्वीकारे छे आथी छेवटे आ आत्माओनो केटलो अघ पात थाय छे ते अधिकतया स्पष्ट करे छे

तत एवाविधिसेवा-

दानादौ तत्प्रसिद्धफल एव ।

तत्तत्त्वदृशामेपा

मूलार्थ—आगम—दीपकमा भ्रान्तिनो शारोप करवाथी विधिभार्या विपर्यास भाव थाय छे, अने जे आगममा दानादि भावोनु फल स्पष्ट कथु छे एवा दानादि भावोने अविधिभावे सेवे छे आ पापिष्ट एवी अविधिसेवा आगमतत्त्वने यथार्थपणे देखनाराओने भ्रातिमदल विना क्यार्थी मभने ? अर्थात् सम्यग्दृष्टिओने आ अविधिसेवा कदापि होय ज नहीं

स्पष्टीकरण '

भ्रातहृदयीन आगमरचन अन्यथा परिणमे छे अने त्पारवाद सत्य तत्त्वने असत्य तरीके अने विधिने अविधिरूपे, मार्गने क्यार्थी तरीके आदरे छे जेथी दरेक क्रियाओ आ प्रात्मा अविधिभावे सेवे छे; कारण के भ्रान्तद्रष्टि तेने सर्वत्र अन्यथा ज भान कराव छे अतएव अर्थात् अयकर्ताए 'तत् एव' पत्थी भ्रातमाव पापवाथी ज आ अन्यथा मति आत्मा दान, शील, तप अने भाव विगेर धर्मो अविधिभावे सेवे छे एम जणाओ आ धर्मो आदरवानु फल शास्त्रोमा कर्मनिर्जरा अने ते द्वाराए मोक्षप्राप्ति कही छे सुपात्रदान, अमयदान अने अनुकपादान पवित्र आशयपूर्वक होवाथी तेनु फल कर्मनिर्जरा अने शुभपथ जणाओ छे 'तयो चोदाणफले' तपनु फल एकांत कर्मनिर्जरा, शीलनु फल आत्मस्वरूपनी निर्मलता अने भावनु फल हृदयना मलनो नाश अने त्पारपछी आ धर्मोथी सर्वथा आत्मानो कर्मोथी मुक्ति कही छे भावार्थ ए के—देवर्द्धि, राजर्द्धि के सपत्ति अथवा भोगप्राप्ति ए आ धर्मोनु

मुख्य फल नहीं तेपत्र तेना माटे ते धर्मों आदरवा ते ज बिय-
 रीत मान्यता जणावी छे ह्य भ्रान्तहृदयी आ धर्मोंनु मुख्य
 फल देवर्द्धि, राजर्द्धि, सपत्ति आदि ज माने छे अने तेनी
 माप्ति माटे तेमा प्रवर्त्ते छे पण मोक्षफलन मानतो नहीं आथी
 ज अर्ही अथर्त्ताए ऋहु के—आगमपा आ धर्मनु फल स्पष्टपणे
 प्रगटतया ऋहु छे, छता तेने ते मानतो नहीं—स्वीकारतो
 नहीं अने आदरतो पण नहीं निदान ए के—आ ज कारणथी
 आ अविधिसेवाने पापिष्ठा कही, पण तेओने समकिन
 प्रगट यहु छे आदि भाव—आरोग्यता प्राप्त थइ छे
 अने चरम पुद्गलपरावर्त कालमा जेओ दाखल यया छे
 तेओना तीव्र पापचिकारो सर्वथा शान्त यवाथी तेओने आग
 मवचनमा अरुचि, अश्रद्धा अथवा खोटी मान्यता ऋदापि उद्-
 भवती नहीं. अर्थात् भ्रान्तिरूपी मडल विना आ पापिष्ठा
 अविधिसेवा उदयमा आवे नहीं अने आ आत्माओने भ्रान्ति-
 समूहनु कारण ज पहेलार्थी नष्ट थइ जाय छे, किन्तु
 भ्रान्ति—समूह उपरोक्त आत्माओ सिवाय अन्यने न ज होय

‘ दानादि ’ धर्मों अविधिभावे सेवे तेनु ज स्वरूप फरी
 अथकार स्पष्ट कर छे

येषामेया तेषामागम—

वचन न परिणत सम्यक् ।

अमृतरसास्वादज्ञ

को नाम विषे प्रवर्त्तत ॥ ५-७ ॥

मूलार्थ—जे आत्माओए अविधिसेवाने बहुमानतया स्वाकारी छे तेओने आगमनु वचन सम्यक्तया परिणामतु नर्था, कारण क अमृतरसना स्वादनो जाणकार मृत्यु देनार विषनु भक्षण करवा कदापि प्रवृत्ति कर खरो ? न ज करे

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रकार दृष्टात साधे उपरनी बात अर्ही सुछी करे छे जेम एक बार अमृत पीछु होय अने तेनो रस धरापर अनु भव्यो होय त्यारपछी आ अनुभवी त्रिप मृत्युने ध्यानार छे, एतु भान थयार्था तेनु भक्षण करतो नर्था एव जिनवचन तेओने सम्यक्तया भासमान् थयु होय तेओने जिनवचनमां कदापि भ्रातिज्ञान उत्पन्न यतु नर्था, अने अर्ही उपरना आत्माओने भ्रातिज्ञान थयु हीवार्थी जिनवचन यथार्थरूपे परिणामतु नर्था. आथी ज समजाय छे के—आ आत्माओने जिनवचनरूपी अमृतरस—स्वादनु ज्ञान नर्था थयु अने मृत्यु देनार विष—भक्षणमा ज लीन थाय छे अर्ही जिनवचन ते अमृतरस जाणथु अने भ्रान्तिज्ञान ते विषभक्षण जाणवु उपाध्यायजी स्वटीकामा ज्ञानफळथी वचित एवा अपरिणामी आत्माने आ ‘ अविधिसेवा ’ नामे पापविकार होय छे एम जणाये छे भावार्थ ए के—अधिक ससारी आत्मा ज ज्ञानफळवचित अपरिणामी होय

अतएव मुषी विधिमुखी अधिक ससारीने 'आगम-
वचन' नी श्रद्धानो निषेध कयो. हवे प्रयकार निषेधमुखे
स्पष्टतया आगमवचननी श्रद्धानो अभाव दर्शाने छे—

तस्माच्चरमे नियमा-

दागमवचनमिह पुद्गलावर्ते ।

परिणमति तत्रत

खलु स चाधिकारी भवत्यस्या ॥५-८॥

मूलार्थ—अतएव आगमवचननी श्रद्धा अर्ही आत्माने
चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमा ज परिणमे छे, अन तेयी करीने
परमार्थयी आ लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिनो अधिकारी चरम पुद्गल-
परावर्त्तकालवर्त्ती आत्मा ज होय छे, अर्थात् अन्य आत्मा
अधिकारी न थाय

“ स्पष्टीकरण ”

उपर जे कही गया तेनो निष्कर्ष ए आख्यो के आगम-
वचनमा प्रीति चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमा ज बने पण अन्य
कालमा न होय, तथा 'लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति' नी योग्यता-
अधिकारीपणु चरम पुद्गलपरावर्त्तकालवासी आत्मा सिवाय
अन्यने न बने. भाग्य ए के—आगमवचन पर श्रद्धा अने
लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति अत्य कालमा उपलब्ध थाय आथी ज
अधिक ससारीने आ तत्त्वना अधिकारी न गण्या

आगमवचनमा एषी क्व अलौकिकता रही छे के जेना माटे अधिक ससारीन तेनी श्रद्धानो निषेध जग्याव्यो, तथा 'लोकोत्तरतश्च' प्राप्तिना पण अनधिकारी गण्या ? आ प्रश्नना समाधान माटे आगमवचननी प्रशस्तता प्रयकार जाहेर कर छे.

आगमवचनपरिणति—

भवरोगसदोषध पदनपायं ।

तदिह पर सद्वोध

सदनुष्ठानस्य हेतुरिति ॥ ५-९ ॥

सूत्रार्थ—आगमवचननी परिणति एटले ययार्थपणे आगमोक्त पदार्थनो प्रतिभास आ प्रतिभास अपाय-दोष रहित ससाररूप रोगनो नाश करनारु औषध छे, अतएव आ ययार्थ उत्कृष्ट बोध-पदार्थज्ञान सुदर अनुष्ठानने जन्म आपवामा कारणभूत कलु छे अर्थात् तेथी सुदर अनुष्ठाननी प्राप्ति थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

“ आ-मर्यादया, गम्यन्ते-पदार्थाः प्राप्यन्ते शायन्ते चेन यस्मात् यस्मिन्निति आगमः तस्य वचन ” “ तेथी जेनाथी जेना विषे मर्यादापूर्वक पदार्थो जाणी शक्य तेनु नाम आगम, अने ते आगमनु जे वचन तेनु

नाम आगमवचन.” भावार्थ एके-आत्मानु एरान्त श्रेय करनार अने हितमार्ग देखाडनार जे शास्त्रो होय तेने ज महर्षिओ आगमशास्त्र कह छे, पण जे शास्त्रो छता “ पद् शतानि नियुज्यते ” इत्यादि वचनोयी पशुहोम, अग्निहोत आदि पापा-रमनो उपदेश करे तेने आगमशास्त्रो केम कहेवाय? अरे शास्त्रो पण केम कही शक्याय? आधी शास्त्रो अने आगमतो ते ज गणाय के जेमा लेश पण पापोपदेश न होय. आ शास्त्रो सर्वज्ञकथित अने सर्वज्ञवाक्यावल्लवी एम वे प्रकार होय छे. जे वचनो भगवते कथा अने गणधरोए सूत्रोपणो रच्या ते सर्वज्ञकथित आगम कहवाय छे, अने सर्वज्ञना अमुक अमुक वचननो आचार लइ आचार्योए जे शास्त्रो रच्या होय ते सामान्य शास्त्रो कहे-वाय छे; परंतु आ वने शास्त्रो नितान्ततया शुद्ध सन्मार्ग सिवाय पापोपदेश कदापि करे नहीं. आवा आगमनु जे वचन होय ते न आगमवचन अर्ही मान्यु छे आ आगमवचननी परिणति एटले परिणामतु अर्थात् आगममा जे प्रकारे पदार्थस्वरूप कहु होय ते ज प्रकारे परिणामतु एटले वर्तनमा-क्रियामा मूकबुं तेनु ज नाम स्वरी रीते आगमवचन-परिणति शास्त्रकार कह छे. ज्या सुखी विभाव पदार्थोनों कटाळी आत्माने न आवे, आत्म-ज्ञान स्फुरायमान न धाय, ससार पर धमेम न जागे अने सत्य सुख प्रति जिज्ञासा न वधे त्यां सुधी आगमवचन ते आत्माओने कोइ पण गुण करवा समर्थ बनतु नहीं अने आ स्थिति चरम पुद्गलपरावर्तकालमा आग्या सिवाय पापवी महर्षिओए अशक्य जग्गावी छे परमार्थ ए के-अज्ञानावरण-

कर्मनो हास यथा पक्षी सत्य उपादेय पदार्थने धारी न शके
 अने वालजीवोना ज्ञान जेतु विषयप्रतिभास नामे जे ज्ञान
 तेने पण उद्भवन करी ज्ञानावरणीय कर्मोना नाशयी ब्राह्म-
 उपादेय पदार्थोने विषय करनारु अने नितान्त आत्मस्वरूपतु
 खास भान करावनारु जे ज्ञान आत्माभा प्रकाशमान थाय तेने ज
 उपाध्यायजी ' आगमवचनपरिणति ' ' आगमसद्बोध ' ' यथार्थज्ञान ' ' सम्यग्ज्ञान ' म्ह छे आयी ज उपाध्यायजी
 अन्यत्र म्ह छे—“ तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते
 विभाति रागगण । तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिन-
 करकिरणामृत. स्थातु ” ॥ १ ॥ “ जेना उदय पक्षी
 रागादिकनो समूह प्रकाशमान रहे तो ते ज्ञान ज न कहेवाय,
 कारण क ह्योदय यथा पक्षी तेना किरणना प्रकाश सामे
 शु अंधकार रही शके खरो ? ” अतएव आ ज्ञान ससारनी
 अनेक तरहनी विटपणाओने दूर करवाने समर्थ एतु निर्दोष
 बाधा रहित सुंदर पथ्य औपघ समान छे एव आ ज्ञान
 जागृत यथा पक्षी उपाध्यायजी महाराज जणावे छे के—ज्ञानजन्य
 उपादेय पदार्थोना स्वीकार करवामां अविरिति आदि
 अतंग्य कर्मो-प्रतिबंधको आदे आवे तो पण सत्य पदार्थनी
 श्रद्धामा लेश पण बाधा आवती नथी, तथा आगमवचननी
 परिणति यथा पक्षी मरुष्ट सद्ज्ञानावरणीय कर्मोना नाश थाय
 अने शुद्ध उपादेयोने स्वीकारनार सद्बोध प्राप्त थाय छे
 अर्थात् ' तत्त्वसंवेदन ' नामे उच्च ज्ञान जागृत थाय छे, आ
 ज्ञान यथाधी नित्य तत्त्व पदार्थोने ज उपादेयपणो, स्वीकार्यपणो,

हितरूपे अने स्वकल्याणपणो माने छे आवा ज्ञाननु मुन्य फल
 आचाराग टीकाकार “ज्ञानस्य फल विरतिः” ज्ञाननु फल
 ह्यपटार्थनो त्याग अने पुद्गल सुखनो अमोह प्राप्त यवो ए ज
 कह छे आर्था अर्ही पण आ ज्ञान जागृत यवाथी तेना फल
 रूपे सदनुष्ठान एटले विरतिरूप शुद्ध परिणती आत्माने प्राप्त
 याय छे, अतएव आ आगमपरिणति अति प्रशस्यतर अर्ही
 जणावी परमार्थ ए के-पुद्गलोनो प्रेम अने विषयसुख प्रति
 उदासीनता आत्माने शुद्ध ज्ञान विना प्रगटवी दुर्लभतर होय
 छे, तो सदु औपधर्मी दीर्घ कालना पण रोगो नाश पामे छे
 तेम अनादिना तीत्र राग-द्वेषादि भाव रोगो आ तत्त्वसंवेदन
 नामे ज्ञान-मकाशरूप औपधवलथी एकाएक नाश पामे छे,
 विरति परिणाम जागृत याय छे माटे आ ‘आगमपरिणति’
 चरम पुद्गलपरावर्तकालमा ज प्राप्त याय छे अने ते एकान्त
 प्रशस्यनम महर्षिओए जणावी छे आर्था ज आगमवचनना
 अधिकारी उपरोक्त आत्मा सिवाय अन्य आत्माओनो ग्रय
 कर्ताए निषेध कर्यो

तत्त्वबोध पामवायी जे विरतिरूप सदनुष्ठाननी पूर्ण-
 तया प्राप्ति याय तेनो खास हेतु मयकार जणावे छे अथवा
 तत्त्वबोध पामवाधी जे सदनुष्ठान आत्मा आदरे तेमा विशि-
 ष्टता शु छे ? तेनो गुलास्तो अर्ही दर्शवि छे

दशसज्ञाविष्कभण-

योगे सत्यविकल ह्यदो भवति ।

परहितनिरतस्य

सदा गभीरोद्गारभावस्य ॥ ५-१० ॥

मूलार्थ—परोपकारमा आसक्त अने नित्य गभीरता तथा श्रौदार्य भावगढे करीने युक्त एवा आत्माने दृश्य प्रकारनी सज्ञाओने यथाशक्ति रोखवानी शक्ति प्राप्त यवाथी निश्चयेन असुख परिपूर्ण सदनुष्ठान प्राप्त याय छे

“स्पष्टीकरण”

विरतिरूप सदनुष्ठाननी प्राप्ति वाच्य विषयसुख, पुद्गल प्रेम परत्वेनो मोह, आसक्ति लोभ अल्प न थाय अथवा नाश न पामे त्या सुखी थाय नहीं ए वात अमे पहेला पण जखावी गया छीए. फरी अथकार ते ज वात शास्त्रीय शब्दोधी अही उभारे स्पष्ट कर छे आ 'सदनुष्ठान' लाभ दश प्रकारनी सज्ञाओनों यथाशक्ति निरोध करवाथी अगर नाश करवानो जाज्वल्यमान उत्साह हृदयमा आववाथी थाय छे. परमार्थ ए क-मत्येक आत्माने अनादिकालधी मत्येक गतिमा दश प्रकारनी सज्ञाओ खास हृदयगत आत्मस्वरूपे विद्यमान होय छे, जेधी आत्मा अनेक तरेहना कर्मो वाधी ते सज्ञाकृत विकारोने पोतानो धर्म समज्जी अनत ससारमा पर्यटन करे छे, एव आत्मस्वरूपने श्रोळखवा जेटलु सदज्ञान पण पामी शकतो नथी तो पछी विरतिरूप सुदर त्रिया तो क्याथी पामी शके ? आ ज हेतुधी अथकर्ता महर्षिपूज्य मथम ते दश सज्ञाओनों निरोध

२, मैथुनसज्ञा ३, परिग्रहसज्ञा ४, जेघसज्ञा ५, मानसज्ञा ६, माया सज्ञा ७, लोभसज्ञा ८, लोकसज्ञा ९, अने श्लोघसज्ञा १०” नारकीश्रोत्रे आ दशे सज्ञाश्रो होय तेमज यावत् वैमानिकोने पण ए दशे सज्ञाश्रो होय, तथा अन्य आत्माश्रोत्रे पण ए दशे सज्ञाश्रो होय. ” लुधावदनीय कर्मनो उदय थवाथी कवल, श्रोत्र अने लोभ आहारने माटे जे सज्ञाना वलथी आहार पुद्गलोने ग्रहण करवानी चेष्टा आत्मा आदरे तेनु नाम आहारमज्ञा १ भावार्थ ए के-ज्यार ज्यारे जठराग्निना जोरथी आत्माने लुभा लागे एटले अग्निनु जोर वधे त्यार त्यार तेनी शांति माटे आहारादि लेवानी चेष्टा आ ज सज्ञानलथी आत्मा कर छे भयवेदनीय कर्मोत्पथी आत्मा भयथी कम-कमी उठे छे, द्रष्टि अन मुवना विकारो बदलाइ जवाथी तेना पर दु खनी ज छाया तरी आवे छे, एव तेनी रोमराजीश्रो पण एकाएक उभी यइ जाय छे आ बधा विकारो जे सज्ञाना प्रभावथी जागृत याय तेनु नाम महर्षिश्रो भयसज्ञा कहे छे. अही एक गुलासो करवानी आवश्यकता छे, ते ए के-भय प्रकृतिने कर्मग्रयमा नोकपाय चारिप्रमोहनीयकर्म पैकी नव नोकपायातर्गत भयमोहनीय तरीके जणावी छे, अन आ स्थले ‘ भयवेदनीयोदय ’ कही ‘ भय’ने वेदनीय कर्मप्रकृति तरीके जणावी आनु कारण ए समजाय छे के-ज्यारे भयना लीधे आत्मा मुख्य बनी जइ भानभूलो थाय त्यार ते भयमोहनीयोदय समजवो, अने ज्यार आ मोहना उदयथी अशांति, दुःख के कलेश अनुभवे छे त्यारे ते भय

વેદનીયપણે સમજવો. અર્થાત્ મોહોદયથી વ્યાકુલતા બને અને વેદનીયોદયથી અશાંતિ, દુઃખ વિગેર પેદા થાય છે. પટલે આ પ્રમાણે ભેદ પાડવામા કાઠ વિચારક જેવું જણાતું નથી, તથા પુરુષવેદના ઉદયથી મૈથુનક્રિયા (સ્ત્રી-પુરુષનો સયોગ) માટે સ્ત્રીયોના ગુણ ભાગો નિરસ્ત્રતા, તેને દેહી મુલની પ્રસન્નતા, સાયલો સ્તમિત થવા અને શરીરમા ધુજારી છુટવી-આ સર્વ વિકારો જે સજ્ઞાવલથી થાય તેવું નામ ત્રીજી મૈથુનસજ્ઞા કહી છે પરમાર્થ એ કે-ત્રણ વેદ પૈકી કોઈ પણ વેદના ઉદયથી પુરુષ સ્ત્રીને, સ્ત્રી પુરુષને અને નપુસક ઉભયને ઘાટ એ ત્યારવાદ પોતાની મૈથુન જિજ્ઞાસા તૃપ્ત કરવાને જે કાઠ વિરુદ્ધ ક્રીડા કરે અથવા ઇચ્છા માત્ર કર તે સર્વને ગ્રથકર્તાઓ મૈથુન-સજ્ઞાનો જ ઉદય માને છે. મૈથુનમજ્ઞાનો આ અર્થ યદિ ન સ્વી-કાર્ય થાય તો એકંદ્રિયો, વિત્તલેંદ્રિયો તથા નારકી અને સમૂર્ચ્છિમ જીવોમા આ સજ્ઞા કેમ ઘટાવી શકાય ? અતએવ ઉપરોક્ત અર્થ સ્વીકાર્ય છે 'લોભમોહનીય' ના ઉદયથી મસારધૃત્તિના કારણરૂપ અને આસક્તિપૂર્વક સજીવ નિર્જીવ પદાર્થો એકત્ર કરવા આત્મ સર્વથી જે જે વ્યાપારો તે પરિગ્રહસજ્ઞા ક્રોધના ઉદયથી દુષ્ટ પરિણામ સહિત આપેશનો જે પરિણામ અને મુલ, નેત્ર, દાત, ઓઠ એ મર્વેલું જે ચેષ્ટાથી સૂકાઈ જવું તે ક્રોધસજ્ઞા અથવા આપેશવાલું જે ચિત્ત તે પણ ક્રોધસજ્ઞા જાણવી. માનના ઉદયથી અહકારવાલી અભિમાન 'હું' પચાની જે પરિણતિ તે માનસજ્ઞા, તથા 'લોભ' ના ઉદયથી તૃષ્ણા સહિત સજીવ-નિર્જીવ પદાર્થોની ઇચ્છા કરવી તે લોભસજ્ઞા.

अर्ही आसक्तिपूर्वक पदार्थो एकत्र करवा उद्यम करवो ते परि
 महसज्ञा अने पदार्थो मेळववा आसक्ति धारवी ते लोभसज्ञा-
 आ प्रमाणो परिग्रह अथो लोभसज्ञा उभयमा भेद होवाथी ते
 वधे सज्ञाओ अलग अलग जणावी. एव मति-श्रुतज्ञानना
 आभरणक्षयोपगमनी शब्द अने अर्थज्ञान-विनाशो सामान्य
 मात्र जे बोध प्रगटे अने ते बोधद्वारा आत्माना जे व्यापारो ते
 ओघसज्ञा जेमक पेलडीयो लोको जे मार्ग पर चाले त्या न
 वधता पाताने पीडा न याय ते माटे वाड तरफ ज वधे. विक
 लेंद्रियो आतपमाथी नीकली छायामा आथ ए ओघसज्ञाजन्म
 क्रियाओ कही छे, तथा ओघसज्ञामा जे ज्ञान प्रगटे तेना करता
 विशिष्ट जे उपयोग ते लोकसज्ञा आ दशे प्रकारनी सज्ञाओ
 पंचेंद्रियोमा स्पष्टतर जणाय छे, ज्यार एकेंद्रियोने कर्मोदयजन्य
 आत्मपरिणामरूपे ज होय पण प्रत्यक्ष न होय

अर्ही जरापेल आ दशे सज्ञाओ पूर्णतया होय त्या सुधी
 आन्मा धर्मनी रुचिने पण पामी न शक, तो पछी 'तन्वबोध'
 आगमवचनपरिणति अने सम्यक्त्वभाव क्याथी पामी शके ?
 माटे ज अर्ही अयकारं प्रथम 'सदनुष्ठान' पामवा अर्थे आ दशे
 सज्ञाओनो यथाशक्ति निरोध करवानु दर्शाव्यु, अर्थात् आ
 सज्ञानो यथाशक्ति निरोध करवाथी तेमज निरोध करवानो
 उसाह धारयाथी आ विरति-त्यागरूप सदनुष्ठान क्रिया प्राप्तिनी
 योम्यना आत्मा पामी शके छे, कारण के आत्माने सुदर
 भावथी स्वलित करवामा मुख्य कारणभूत आ अनादिनी

दश सज्ञाओ ज छे अतएव अर्ही अथकारे मूलमा ' योगे सति ' ए पदयी ' निरोध करवानो योग-समथ छते ज ' एम कथु. आम छता एटले दश सज्ञाओनु जोर छता कोइ आत्मा त्यागभावरूप सदनुष्ठान आदरे तो पण नदिपेण महा त्यानी माफक कालातरे जहर मार्गधी नीचो सरा जाय एना शका नयी. आधी अर्ही अविकल सदनुष्ठान प्राप्ति माटे आ सज्ञाओनो निरोध मुख्य बतव्यो, अर्थात् आर्यामा कहल ' अविकल ' ए पदनो उपरोक्त परमार्थ छे

आटलु छता पण फरी कयो आत्मा अविश्ल सदनुष्ठान पामे तेनी पुष्टि माटे अर्धी आर्या अथकार जणावें छे एते बेदे दशो सज्ञानो यथाशक्ति ए रोध कर्यो होय, रोध करवानो इच्छा घायो होय तो पण आ ऋण गुणो न होय तो ते अल्प अवि-कल सदनुष्ठान पामवानो अधिकारी नयो; किन्तु तेनो परोपकार करवानी अभिलाषावत होय अने एते कष्ट कर्मो-र्यता, औदार्यता ए बे गुणो जेओपा होय तेओओ आ मार्गना अधिकारी बने छे निष्कर्ष ए छे के-दशो कष्टनो न्याय्यशक्ति ए रोध कर्या पछी परोपकारी उदारदित्त इने कर्मो-अथ आर्या ज अविकल सदनुष्ठान पामे

अरे ! दुर्लभ पण दश सज्ञाना नक हय आर्या ! हेरे आत्मा अविकल सदनुष्ठाननो अविहारी बने ए हरे जणाये छे.

सर्वज्ञवचनमागमवचन,

यत्परिणते ततस्तस्मिन् ॥

नासुलभमिदं सर्वं,

ह्युभयमलपरिचयात्पुसाम् ॥ ५-११ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ भगवाननु जे वचन ते ज आगमवचन अर्ही मान्यु छे, एटले आ आगमवचन परिणाम्या पछी अने क्रियामल तथा भावमलनो क्षय यवाथी आत्माओने आ दश सज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध थावो काइ दुर्लभतर नथी, किन्तु सुलभ ज छे

“ स्पष्टीकरण ”

‘ सर्वं जानातीति सर्वज्ञ तस्य वचन ’ “ निरा-
यापण्ये जगतना चर-अचर सर्व पदार्थोने जे जाण्यो-देखे ते सर्वज्ञ अने तेनु वचन ते सर्वज्ञवचन ” सर्वज्ञ पुरुषनु जे वचन तेने ज अर्ही ‘ आगमवचन ’ तरीके स्वीकार्यु छे. जेओने सर्वज्ञ वचन पर सद्मात्र थयो होय अने सर्वज्ञनु वचन ज सत्यमार्ग-दर्शक छे एवी श्रद्धा हृदयमा एकान्तत परिणामी होय, तेओ-
ने आ जगतमा जोइ पण क्रियाओ प्राप्त थवी दुर्लभतर नथी; कारण के-धन्वतरा वैश्रनु जेओने ओठु मल्यु होय तेओनो रोग जवामा शु बिलब लागे खरो ? तयामकारे अर्ही पण जगतना रोगोने निर्मूल करनार अने प्रत्येक रोगना प्रतिकारो

દર્શાવનાર મણુ ધીતરાગદેવના વચનો અસુહ નિરાયાધપણે
 જેઓના હૃદયમા નિવાસ કરી રહ્યા હોય તેઓના રોગો અને
 તામસો વ્યાધી સ્થિર રહી શકે ? અર્થાત્ ન જ રહે નહુ પણ
 છે કે-“પાપામયમૌષધ શાસ્ત્ર, શાસ્ત્ર પુણ્યનિવધનમ્ ।
 ધન્તુઃ સર્વઘ્નગં શાસ્ત્ર, શાસ્ત્ર સર્વાર્થસાધનમ્ ” ॥૧ ॥
 ‘ પાપરૂપી રોગોને નિર્મૂલ-નાશ કરનાર અમૂલ્ય ઔષધ
 તુલ્ય શાસ્ત્ર છે, અને શાસ્ત્ર પુન્યત્ર કરનામા એક મુખ્ય સાધન
 છે, એ શાસ્ત્ર સર્વ પદાર્થોને દેલ્લવા માટે અલોકિક અદ્વિતીય
 નેત્ર સમાન છે, તથા સર્વ અર્થની સિદ્ધિ કરનારુ પણ શાસ્ત્ર
 જ છે ’ તેમજ ચરમકાલવર્તી ભવિ આત્માઓ પ્રત્યેક ક્રિયામા
 શાસ્ત્રનો જ આધાર સ્વીકાર છે અર્થાત્ સર્વજ્ઞવચનથી ડલટી
 રીતે ચાલવાને તેઓ ચલચિત્ત થતા નથી એ જ વાત
 અન્યત્ર પણ કહી છે-“ પરલોકવિઘ્નો શાસ્ત્રાત્, પ્રાયો
 નાન્યદપેક્ષતે । આમન્નમવ્યો મતિમાન્, અદ્વાધન-
 સમન્વિત ” ॥ ૧ ॥ “ પરલોક સરની સાધનભૂત
 ક્રિયામા શ્રદ્ધારૂપી ધનવાલો અને બુદ્ધિશાલી એવો નિરુદ્ધભવ્વી
 આત્મા સર્વજ્ઞશાસ્ત્ર મિવાય અથ આલમન વહોલતાયે ધદાપિ
 સ્વીકારતો નથી, અપેક્ષા રાલ્લતો નથી ” ઉપર કહ્યા પ્રમાણે
 શાસ્ત્રવચનો જેના હૃદયમા રમા રહ્યા હોય તેમજ તે પર જ
 જેઓની અસુહ શ્રદ્ધા હોય તેઓ અવશ્ય શાસ્ત્રમા જે વાત
 સ્વીકાર્યરૂપે અને હેયરૂપે કહી હોય તે તે વાતોને મતિમાન્
 આત્માઓ યયાશક્તિષ્ સ્વીકારવાનો અને ત્યાગ કરવાનો

प्रयत्न जरूर करे. आर्या अर्ही जणाव्यु के-‘परिणते’ शास्त्र-
वचन यथारूपतया परिष्कृत्या पश्चा एतले ‘ नास्तुलभमिद
सर्व ’ आ सर्व अनुष्ठानो प्राप्त ऋचा तथा दशे सज्ञाधोनी
रोध करवा काड दुर्लभ नथी, किंतु सुलभतर छे. निदान
ए के-शास्त्रवचनती निर्दोष राग प्रगटवाची भवी आत्माना वे
प्रकारना मलो स्वतः नाश पामे छे एक तो जे ‘क्रियामल’
ना जोर्घी आत्मा सुदर रतेन आदरवाने असमर्थ अनादि-
कालची रहतो हतो ते मलनो नाश याय अने दुष्ट आशयरूपी
मलिनताची आत्मा शुद्ध वस्तुने बराबर विचारी शकतो न्होतो
एवो ‘ भावमल ’ अर्थात् आशयनी अपवित्रता तेनी पण
नाश याय छे, आम यगची जरूर दश सज्ञानो निरोध अगर
निरोध करवानो उत्साह आत्माने जागृत याय छे. एमा
अधिकोक्ति जेवु कशुए नथी एव जेओने सर्वज्ञवचन पर मेम
जागृत थयो नथी तेओने ज आ अनुष्ठान प्राप्त थवु दुर्लभतर
होय कशु छे के-“ न यस्य भक्तिरेतस्मिस्तस्य धर्मक्रि-
याऽपि हि । अन्धप्रेक्ष्यक्रिया तुल्या कर्मदोषादस-
त्फला ” ॥ १ ॥ “ जेने सर्वज्ञशास्त्र उपर प्रेम के भक्तिभार
नथी तेनी धर्मक्रिया पण निश्चयची अधनी दृष्टि सगधी क्रि-
यानी माफक कर्मदोषना लीधे असत् फलवाळी समजती ”
अर्थात् अधने दृष्टि होय ती पण तेवु फल काड पण न
होवाधा जेम फलने नही देनारी होवाची नकामी छे
तेम अद्धा विनानी धर्मक्रिया पण फल बगरनी समजवी

अर्थात् मुख्य फल आत्म-निर्मलताने आपती नयी ” ‘आगम-
वचन ’ मा जेओने आतभाव मगट ययो होय तेओ ज दानादि
सर्व धर्मो अविधिभावथी सेवे आ वात प्रथम आपणे तपासी
गया, परतु जेओने आगमवचन पर एकान्त श्रद्धा होय तेओ
दानादि धर्मो क्या प्रकारे स्वीकारे ते वातनो खुलासा मय
कार करे छे.

विविसेवा दानादौ,

सूत्रानुगता तु सा नियोगेन ॥

गुरुपारतन्त्रयोगा-

दौचित्याच्चैव सर्वत्र ॥ ५-१२ ॥

मूलार्थ—सर्वांगशुद्धिपूर्वक दानादि कार्योमा प्रवृत्ति
करयी तेनु नाम विधिसेवा सिद्धान्तमा वतावेल विधिसे-
वानी प्राप्ति तो निश्चयथी गुरुआज्ञाने आधीन रहेनारने ज
थाय छे, अने ते विधिसेवावान् दीन आदिमा सर्वत्र औचित्य-
तापूर्वक ज प्रवृत्ति करे छे

“ स्पष्टीकरण ”

जिन भगवानना वचन पर श्रद्धा राखनार जे काइ दान,
पूजा आदि कार्यो करे ते जिन भगवते जे प्रकारे करवानुं
कशु होय ते मयाणे विधिपूर्वक करे, अथवा जेओ विधियी
करता होय तेओने आधारे करे, तेमज विधियी करवानी हठ
इच्छा राखे, बुद्धिना आधारे न करे. एखे

आ मनुष्य दानादि कार्यो अविधि भावयी करे नही. विधि
 एतले शास्त्रमा जे न्याय दर्शाव्यो होय ते न्याययी सेवा-
 आचरण ते विधिसेवा परमार्थ ए के-न्यायोपार्जित धनयी
 आवेल पदार्थनु सत्याग्रमा दान करवु तेमज जिनपूजा विगेरे
 कार्यो करवा एम आगममा कहु छे " नापागयाण कप्प
 णिज्जाण अन्नपाणाइदब्बाण पराए भत्तीए आयाणु
 गाह्वुद्धीए सजयाण दाण अतिहिंसविभागो मु
 क्खफलो " " न्याययी आवेल अने साधुने उपयोगमा भाये
 तेवा अनान पाणी आदि पदार्थो उत्कृष्ट भक्तियी अने स्व-
 आत्मानो उद्धार करवानी बुद्धिवडे माधुओने आपवा अथवा
 अतिधिसविभाग करवो ते मोक्षफल आपनार घाय. " आयी
 विरुद्ध प्रवृत्ति करनार दानादि कार्यो कर तो पण तेनायी
 मोक्षफल न पावै, किन्तु ' दानेन भोगानामोति " ए
 वाक्ययी भोग्य पदार्थो जन्मानरमा प्राप्त कर घनासार्थवाहे
 अने आमना ठाकुरे मुनियोने शुद्ध दान आप्यु तेयी ते ज
 जन्ममा तेओ समकित पाव्या तथा तीर्थररगोत्र वाध्युं ए
 दान परम शुद्ध अने शास्त्रोक्त विधिवालु कहु छे. ज्यारे
 शालिभद्र तथा धन्नाकुमारना जीवे पूर्व भयमा मुनियोने जे
 दान आप्यु ते उपयोगी भक्तिपूर्वक आप्यु खरु, परतु स्वा-
 त्मोद्धार दृष्टि वगरनु अने न्यायागत न होवायी आ दान तुर-
 तमा भोग्य पदार्थ देनारु थयु, पण ते जन्ममा समकित आपनारु
 न थयु आयी ज शास्त्रोमा अल्प पण दानादि कार्यो न्यायो-
 पार्जित वित्तवडे ज शुद्ध कहा, पण अन्यायी द्रव्ययी वधु पण

दानादि कार्यो अशुद्ध ज छे एम स्पष्ट कथु छे

न्यायनु स्वरूप आ प्रमाणे शास्त्रमा दर्शाव्यु छे—“स्वामी द्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासुने छलघो, चोरी आदि निन्दनीय कार्योधी जे घन पेदा करवु तेने छोटी अन्य व्यापारद्वारा घन पेदा करवाना पोतपोताना कुलने उचित जे आचारो तेनु नाम न्याय अने तेवी प्रयुक्तिधी जे घन प्राप्त थाय ते न्यायोपार्जित धन समजवु ” आ रीतधी आरल धन पवित्र बुद्धिबालु अने प्रह्व पापकर्म रहित होमधी तेनो भोग अने सत्पात्रमा दान सुष्ठु फल आपनार बन छे शास्त्रो कह छे के—न्यायो-पार्जित धननो सत्पात्रमा उपयोग करवानी पुण्यानुयधी पुण्य बधाय छे उपर फया प्रमाणे न्यायधी द्रव्य उपार्जी तेनानी प्राप्त थयेल द्रव्यनो सत्पात्रमा एटले भोजसाधक सन्धुनियोने दान देवामा उपयोग करवो तेम ज जिनपूजन पण न्यायो-पार्जित धनधी प्राप्य पुष्प-फलादिवडे करवी एटले जिन-वचन पर श्रद्धा राखनार उपरोक्त विधिसेवा दानादि कार्योमा प्राप्त कर छे, परतु आ विधिसेवा एटले शास्त्रमा जे विधि अनुष्ठान दर्शावेल छे तेनी प्राप्ति तो “ गुरुपारतत्रययो गात् ” गुर्वादिनी आज्ञामा वर्तवानी ज थाय किंतु स्वतंत्र वर्तवानी कदापि थाय नहीं, कारण के जिनवचननु मुख्य रहस्य केवल महर्षि गुरुओने आधीन होय छे अने जे गुरुधी निरपेक्ष थाय तया स्वबुद्धिने ज प्रत्येक कार्योमा प्राण-...

मनुष्य जिनवचनना अर्थो तथा भावो स्वकल्पनाथी ज समा करे, एटले जिनवचननो अमूल्य भाव पामी शके नहीं तेमज जिनवचननी पण ते दरकार करे नहीं. अतएव गुरुवचनारा धरु जिनवचनना परमार्थने पामे अने तेथी दानादि कार्योंनी विधिसेवा पण आ ज मनुष्य पामे एम आचार्ये कहुं फरी विधिसेवाप्राप्त मनुष्य दान आदि कार्यों औचित्यतापूर्वक ज कर अर्थात् अनौचित्य व्यवहारने वाजु पर करी दीन, अनाय, अपग, मुनियो विगरेने जे विधिथी, जेवा सत्कारथी अने जेवा आदरभाव तथा भक्तिथी दान आपजु जोइए ते प्रमाणे वर्तन करे छे निदान ए के-सर्वत्र त्रिवेकपूर्वक दानादि कार्यों करे छे ए प्रमाणे आगमवचनमा अभ्रान्तमति गुरुआज्ञानु सारी विधिपूर्वक दानादि कार्यों आगधे एम आचार्ये आ श्लोकरुमा स्रष्ट प्रतिपादन कर्यु एटले विधिना अर्थिए अर्ही आगमरोधनी अथवा गुरुआज्ञा आराधयानी निश्चित आव श्यता छे ए भाव जणाव्यो

दानादि कार्योंमा विधिसेवानी आवश्यकता जणावी, हने तेमा महादान तथा दान ए वेमा क्यो तफावत छे ते बात अर्ही दर्शावे छे

न्यायात्तं स्वल्पमपि हि,

भृत्यानुपरोधतो महादानम् ॥

दीनतपस्व्यादौ गुर्व-

भुङ्गया दानमन्यन्तु ॥ ५-१३ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धननो सेवञ्चर्गाने अनुपरोष-
पणे दीन, तपस्वी, अतिथि आदि वर्गमा थोडो पण मातापिता
आदिनी आशायी छपयोग करवो तेनु नाम ते महादान, अने
आ रीतथी चलटी रीते जे छपयोग करवो ते दान क्यु छे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रमा मार्गानुसारीना गुण वर्णन करता आचार्य प्रथम
गुण ‘ न्यायसपन्नविभवः ’ दर्शाने छे, एखले धर्मस-मुख
स्थित आत्मा जरु न्यायथी ज आजीविका, कुटुंब रक्षण आदि
कार्यो करे तो ज ते मार्गानुसारी बहेवाय, अन्यथा ते मार्ग-
वाह्य बहेवाय. आर्थी धर्ममात्र अने प्रथम जणात्री गयेल धर्मना
लक्षणो जेगा होय ते तेमज दश सज्ञानो निरोधक आगमवचन
पर थडालु जन तो अवश्य न्यायथी ज वृत्ति चलाने एमा
आचार्य जेवु नथी. महादान अने दाननो भेद आचार्य अर्ही
दर्शाने छे तेमा ‘ न्यायवर्तन ’ ए मुख्य अने महादान तथा
दाननो विमाजक गुण मान्यो छे अर्थात् न्यायसपन्नता
सिवाय महादानत्व नामक परम गुण कोइ पण आत्मा पामी
शके नर्ही. अतएव प्रथकर्ता आदिमा ज ‘ न्यायात् ’ ए पद
मूके छे, एखले वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण अने शुद्र ए चार
अटय आर्थ जातिछो शास्त्रोमा कही छे. किंन कालकमे

जात्यतर पेटाजातिओ आदि अनेक भेदो-उपभेदो घड गया; पण आ सर्व जातिओना पोतपोताना कूलानुरूप जे उचित व्यवहारो शास्त्रोमा दर्शावेल छे ते प्रमाणे व्यवहार करबो, आजीविका चलावबो, व्यापार करबो, कुटुंबरक्षण करबु त ते लोको माटे न्याय गणाय अने ए प्रमाणे जे घन प्राप्त याग ते न्यायसपन्न घन कही सकाय. जेमके-वैश्योए व्यापार, व्याज, धानधार आदि, क्षत्रियोए प्रजासरक्षण, अनि ति प्रचारनो नाश, शत्रुना भयथी बचाव, दुष्टोनु दमन आदि, ब्राह्मणोए पठन-पाठन, उपदेश, धर्मटद्धि, धर्मसरक्षण, देवपूजा, मंत्रस्मरण, ध्यान आदि, अने शूद्रोए सेवा, कृषि आदि कार्यों द्वारा घन प्राप्त करी तेनाथी आजीविका अने कुटुंबरक्षण करबु, पण उपरोक्त चार वर्गों तथा पेटाजातिओ ए प्रमाणे वर्तन करता छलप्रपच, चोरा, विश्वासघात आदि निन्दक कार्यों न सेवे अने पोताना जातीय नियम प्रमाणे वर्तन करे तो ज ते न्यायी वर्तन कही सकाय.

आम छता पण आचार्य ऋहे छे के न्यायथी घन उपार्जी ते धननो अमुक भाग व्यवहारसरक्षणमा, अमुक भाग व्या पारमा, अमुक भाग कुटुंबरपालनमा, अमुक भाग नोकर-चाकर-सेवकोने सत्पुष्ट राखवामा अने अमुक भाग धर्ममार्गमा खर्च करे तेम ज अमुक भाग निधानस्थ करे, आ प्रमाणे वर्तनार भविष्यमा स्वर्जादगीने भयमा नाखतो नयी, किंतु आय करता व्यय अधिक करे, वैश्रमण जेवी स्थिति राखे, कुटुंबर

अने सेवकोंने ममाळे नहीं, धर्मनी उपेक्षा करे तेओ ज परि-
 णामे जोखममा आपी पडे छे ए ज वात आचार्य धर्मविदुमा
 स्पष्ट करीने सपजारे छे “ पादमायान्निधिं कुर्यात् ,
 व्यापारादि द्वाराए प्राप्त यथेल पैसानो चोथो भाग निधिपणे
 स्थापन करवो. ”

पटले अहीं आचार्यश्री अनित करे छे के-न्यायधी घन
 आयेल होय छता जो नोकर-चाकरोने नाराज करी तेनो
 धर्मकार्यमा व्यय थाय तो ते व्यय सुष्टु धर्मफलने आपी शके
 नहीं किंतु ए तो उपागहीन धर्म कहवाय, माटे धर्ममा व्यय
 करनार, दानादि करनारे, ‘भृत्यानुपरोधतो’ सेवक-नोक-
 रोने सताप, खेद, असतोष न थाय नेम करी पछी ज, तेमज
 मातापिताने पर सतोषी, तेओनी आज्ञामा बर्ती धर्म साधन
 करे आधी जेओ जीदगीभर दानादि उत्तम कार्यो कर अने
 मातापितानी उपेक्षा करे, अपमानित करे, सतापे, तेओनी
 सारसभाळ ले नहीं, आज्ञा माने नहीं तेओ जैनशास्त्र दृष्टिए सर्वो-
 गपूर्य धर्मारोधक न गणाय; पण उपागहीन धर्म आरोधक ज
 गणाय छे. एयी तेओने योग्य फल पामनाने अधिकारी नथी
 मान्या, कारण के धर्मिनो प्राथमिक सदाचार शास्त्रो
 “ मातापितृसपूजकः ” ए वाक्यधी ‘ मातापितानी पूजा
 करनार ’ एम वर्णवे छे खरु छे के-जेओ परमोपकारी माता-
 पितानो अनादर करे तेओ धर्म अने धर्मोपदेशकोनो अनादर
 केम न करे ? कारण के जेओ लाखोनी चोरी करे तेओने

सैंकड़ोनी चोरी करता काइ भय लागे नहीं. आटलु जणाव्या पछी हने पूणांग सहित थोदो पण ते न्यायमात्त घननो उच-योग क्या कररो ? ते आचार्य कह छे. “दीनतपस्थ्यादौ” उपर कथित रीतर्था ते न्यायमात्त घन जेओ निराधार होय, अशक्त अने विशिष्ट पापकर्मों सेवनमा असमर्थ होय तेवाओने अने त्यागी, मुमुक्षु, महाद्यतवारी तपस्वीओने आहार, वस्त्र, पात्र, वसति, पुस्तक आदि आपवामा अने अन्य जिनपूजा, सहधर्मीसेवा आदि अनेक पवित्र कार्योमा उपयोग करवो-खर्च करवो. आ रीतधी विरेश्टष्टि करेलो थोदो पण खर्च महान् फलने-पुष्पानुगधी पूण्यने-अर्पनार थाय छे अतएव आचार्य भगवत आ व्ययने-खर्चने महादान एसी सझा आपे छे अर्थात् आ खर्चनी आगल अन्य लाखो तथा ओदो खर्चा दान कर्यु होय, जिनमदिरी, जिनप्रतिपाओ घनाधी हीर, म्होटी दानगालाओ उभी करी होय, अमख्य अतिथिन सत्कार्या होय, म्होटा सघो अने लाखो सहधर्मीयोनी सेवा करी होय तथापि ते दान ज कहैवाय एटले महादानमा जे लाम थाय ते आ कार्यो करवा छता लाम थाय नहीं आ ज हेतुर्था अयकार महर्षिण ‘दानमन्यत्तु’ उपरोक्त विधान विद्युक्त दानो ते दान कहैवाय एम षण्ण परमार्य ए के-धर्ममा खर्च करनारे आशय, पदार्थ, पात्र अने कालनी पवित्रता तरफ एकांत लक्ष्य राखवु जोइए तो ज खर्च इष्टसाधक घने

ए रीते उपर 'महादान तथा दान'नु स्वरूप कणु, ह्ये
जिनपूनातु स्वरूप दर्शाते छे.

देवगुणपरिज्ञानात्त-

दृभावानुगतमुत्तमं विधिना ॥

स्यादादरादियुक्त,

यत्तद्देवार्चनं चेष्टम् ॥ ५-१४ ॥

मूलार्थ—विधिधी आदर प्रीति श्रद्धापूर्वक वीतराग
देवना जे जे वीतरागत्व गुणो होय तेनाज्ञान साथे अने तेमा ज
लीनता तथा उत्तमभाव सहित जे अष्टद्रव्य आदिधी भगवतनी
पूजा तेनु नाम वास्तविक अने इष्ट पूजा समजवी
“ स्पष्टीकरण ”

परमनिवृत्तिरूप जे फलोन्देशधी आपणो जेने पूजाए ते
देवतु देवत्व शु छे ? पूजाते अविरोधणो योग्य छे के नहीं ?
तेनो मुष्टु विचार करवा जोड़ये, कारण क तो ज ते समिचीन
पूजा कहनाय अने पूजानु इष्टफल प्राप्त याय; अन्यथा ते पूजा
मात्रज कहेवाय जैन शास्त्रो सनोवे छे के तमे इश्वरनी लीता
या चमत्कारो देवो अथवा गाडरीया प्रमाहधी तणाडने तमज
कोइनी प्रेरणा मात्रधी अणु अमारा पर विश्वास राखी देवनी
पूजा या मान्यतामा पतगनी माफक अग्निमा हापलावशो नहीं,
कितु प्रथम तेनी तमे काचननी जेम परीक्षा करी इश्वरनु नि-
र्दोष-निष्कलक स्वरूप विचारी-तपामी पछी ज तेने मानयाने,

पूजवाने ललचाशो यदि आटली तपारामा सन्मति न होय
 तो पछी त्यागी अस्वार्थी शुद्धोपदेशक तत्त्वदर्शी महर्षियो जे
 कह ते ध्यानमां राखी ते प्रमाणे वर्तन करणो तो ज तमे तपारु
 हित सार्धा शकशो हरिभद्रमूरिजो तो कह छे के-“ पक्ष-
 पातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिपु । युक्तिमद्वयचन
 यस्य, तस्य कार्यः परिग्रह ” ॥ १ ॥ “ मटारीर
 परत्ने मने राग नथी ते कपिलादिको प्रति मने द्वेषभाव नथी;
 परतु जेओनु वचन युक्ति अन प्रमाणादिकी बाधित नथी यतु
 तेओनु ज वचन स्वीकारबु योग्य छे. ” शास्त्रोभा देवना ईश्वर,
 परमात्मा, परमेश्वर, अद्वैतशक्ति, अखिलगुणार्धाश, सर्व
 दोषातीत, सर्वज्ञ, वीतराग, जिनेश्वर, तीर्थकर, सच्चिदानन्द-
 मय विगरे सहस्रश. नामा प्रसिद्ध छे, षट्ते आ सर्व नामोनी
 समन्वय देवमा अवश्य थवो जोइए, अन्यथा ते खाली नामो
 गोवालना छोरुवानु इन्द्र नामना जेम हास्यपात्र गणाय एक
 वाजु ईश्वरपणानी प्रख्याती अने बीची वाजु तेवा गुणो न
 होय तो ते हास्यजनक कम न गणाय ? अने आवु ईश्वरपणु
 प्राप्त करी काने पूजयानु मन न ललचाय ? अतएव प्रथम तो
 ईश्वर देवाधिदेवमा जगतना सर्व अपलक्षणो रहित राग-द्वेष
 अने अज्ञान चेष्टा विनाना शुद्ध सत्य निराबाध तत्त्ववक्ता तथा
 सर्वज्ञपणु आ लक्षणो अवश्यमेव सुघटित थवा जोइये. ईश्वरना
 आ लक्षणोनी परीक्षा तेओनी जीवनक्रीडा, व्यवहार अने उपदेश
 परधी सुलक्षित थाय छे जेओए पोताना जीवन व्यवहार दरमि-
 यान हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, तृष्णा आदि दुर्गुणोने

कतव्य मानी सेव्या नहीं, लीला मानी लोकोने तैम करवानो
 उपदेश आप्यो नहीं, भोग्य पदार्थोनी तृपामा भासक्तिथी
 लीन बन्या नहीं, मौक्तिक मायामा लिपटाइ स्वर्वाङ्गीने व्य
 तीत करवानी तृष्णा राखी लोकोने था तो ईश्वरनी अलिप्त
 लीला छे आवा प्रपचर्या उगवानो प्रपत्ता कर्यो नहीं, किंतु
 कर्मजन्य उपाधियो घेडी, सुभवसर ससारना प्रपचने छडी,
 राज्य, धन, हुडुन, स्त्री-पुत्रादि परिवारने वस्त्रे लागेठ कचरानी
 जेम अलग करी, घोरतप तप आदरी, अज्ञ लोकोए उपजानेठ
 असरय परीसहो, कष्टो, उपद्रवो ताडन, तर्जना, अपमान, उप-
 सर्गोने एकात क्षमाभावयी, राग-द्वेष विना प्रसन्न अत.करणयी
 अहगपणो सहन करी, अनादिना आठे कर्मोने आत्मायी अलग
 करी, शुद्ध निर्दोष काचनवत् निकलक आत्मस्वरूपने, अनन्त
 ज्ञानने जेओए प्राप्त कर्युं, अखिल गुणो प्राप्त कर्यां, केवल आ-
 त्मिक शुद्ध सच्चिदानन्दनी लीलामा मग्न वनी भव्य आत्मा-
 ओनो उद्धार करवा माटे शुद्ध सन्मार्गनो, शुद्ध निरावाध
 निर्दोष तत्त्वनो जेओए उपदेश कर्यां तेओ ज परमार्थयी ईश्वर,
 देवाधिदेव, परमात्मा अने वीतराग नाम धारण करवाने योग्य
 कहवाय आ ज देव पतितपावन, जगदुद्धारक, अशरणशरण,
 वरसल, हितदायी, ससारभयरक्षक, कृतकृत्य, उत्तमोत्तम पर-
 मात्मा कहवाय अने ते ज परमात्मा विना स्वार्थे जगत्ने सन्मार्ग
 दर्शावी शके उमास्माती वाचकजीए कथु छे के-“यस्तु कृता-
 र्थोऽप्युत्तममवाप्य धर्मं परेभ्य उपदिशति । नित्य
 स उत्तमेभ्योऽप्युत्तम इति पूज्यतम एव ” ॥ १ ॥

“जेश्यो कृतकृत्य वनी उत्तम धर्म प्राप्त करी नीजाओनु कल्याण करवा प्राप्त सत्धर्मनो उपदेश करे छे तेश्यो ज खरेग्वर सर्वदा उत्तमो करता पण उत्तम धर्मे नितांत पूज्यतम होय. ”

अतएव आ देवनी पूजा करवी ते ज पूजा रहेवाय, वास्त विक्र रीते मानवी या देवोनी पूजाने योग्य आ वीतरागदेव सिवाय अन्य कोइ न होइ शके जेने आपणे मोक्षदातृत्व बुद्धिची पूजीए तेमा यदि ते गुण न होय, पोते पण ते स्यानना अनधिकारी होय तो तेश्योने पूजवानु फल शु ? आधी ज उमास्वाती महाराजे कहु छे के-“तस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवो-
त्तमोत्तमो लोके । देवर्षिनरेन्द्रेभ्यो पूज्येभ्योऽप्यन्य-
सन्वानाम् ” ॥ १ ॥ जगता उत्तमोत्तम अर्हन् देव ज होवाधी ते ज पूजा करवाने योग्य छे, कारण के-देवो, मह-
र्षिशो, नरेन्द्रोने तेश्यो पूज्य होवाधी अन्य प्राकृतजनोए तो अवश्य तेश्योनी पूजा करवी जोइए. ” पूजकोए पूजन करवा पहेला परमेश्वरनु उपरीक्त स्वरूप खास मनन करी तेने ध्यानमा राखवु जोइये, जेश्यी पूजन करता मननी प्रसन्नता थाय, पूजानी उद्देश वरावर साचवी शक्याय अने पूजन शा माटे करु छु ए तत्रनु ययार्थ भान थाय वस्तुतः जेश्यो उपकारी होय, जेश्यो पास्यो भविष्यमा काइ तत्त्व मेळववानी इच्छा होय तेश्योनु सुयोग्य उचित सत्कार करवो ए व्याहारिक नियम पण छे ज्यारे परमात्मा तो अतुलोपकारी, अनन्य असाधारण चक्षुदाता सासारिक त्रिविधताप दूर करनार होवाधी

अने तेओ पासेथी ते पदार्थों प्राप्तव्य होयाथी तेओनी
 पूजा तेओने योग्य अवश्य करवी जोइए ए पूजकोनो धर्म छे
 योग्यनु योग्य सन्मान करवु ते आपणी योग्यता बधवानु बीज
 छे, कारण के योग्यने जेटलु आपीये तेनाथी सहस्रगणु पात्रु
 आपणने पळे छे अर्थात् जे पदार्थनी आपणने मजिप्पमा
 चाहना होय तेना माटे ते पदार्थयान्नी उचित सेवा-सन्मान-
 पूजा विगेरे करवा जोइए, आथी ज आचार्य हरिमद्रसूरीश्वरजी
 पूजानो उपदेश करता पूजकोने कह छे के- ' देवगुणपरि-
 जानात् ' एटले देवना जे जे अनुकरणीय अने प्राप्तव्य गुणो
 छे तेनु ज्ञान करवु, तेनो अभ्यास करवो अने पूजा करती बखते
 तेनी ज भावना करवी, एटलु ज नहीं पण 'तद्भाषानुगत'
 देवना गुणस्मरण-ध्यानमा आत्माने लीन करी शास्त्रोक्त
 विधिथी उत्तम प्रकार वीतरागदेवनी पूजा करवी, तेमज देव
 परत्ये अने पूजामा एकान्त आदर आचरण प्रीति सहित पूजा
 करवी एटले आ पूजा परमार्थ पूजा कहेवाय निदान ए के-
 ईश्वरपूजन करती बखते ध्याता, ध्येय अने ध्यान आ त्रिपुटीनी
 एवी तो ऐक्यता थवी जोइए के जेथी शास्त्रोक्त अमृतक्रियानु
 लक्षण आ पूजामा समन्वित थाय अने ' भ्रमरी-कीटक '
 न्याय लागु थइ शके अरे ! उमास्वाती वाचकजी कहे छे ते
 प्रमाणे पूजा करवाथी उत्तरोत्तर अवश्य लाभ थाय " अभ्य-
 र्चनादहर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च । तस्मादपि

निःश्रेयसमतो हि तत्पूजन न्याय्य ” ॥१॥ “ वीतराग देवनी पूजा करवायी प्रथम मननी प्रसन्नता वये, त्यारपछी तेथी समाधिशान्ति पटले कपायो दूर थाय अने ते पछी एकान्त निःश्रेयस-मोक्ष प्राप्त थाय माटे वीतरागदेवनी पूजा करवी, ए न्याययुक्त गणाय ” परतु आ पूजानु प्रकरण प्रथम कहेल महादान अने दानना प्रकरण पछी जणाव्यु होवार्थी महादाननी योग्यता प्राप्त करवा आचार्ये जे जणाव्यु ते योग्यता पूनकोमा प्रथम अवश्य आववी जोइए ए योग्यता आव्या बाद आ वास्तविक पूजानो अधिकार आत्मा पामी शके; अन्यथा ते पूजा ज गणाय भाषी ज ग्रथकारे मूलमा अर्ही ‘ उत्तम विधिना ’ आ पदो पर वधारे वजन आप्यु छे परमार्थ ए के-न्यायप्राप्त सेवकोने अविरोधी अने वहीलनी आत्ता मुद्रित होय तो ज उत्तम अने विधिपूर्वक वीतरागपूजा कहेवाय

उपर आपणे जे बात विचारी गया तेनी ज प्रकारातरथी फरी पुष्टि करे छे, अथवा उपाध्यायजी कहे छे के-ए ज बात अन्यत्र कही छे तेनो अतिर्दश-भ्रामण अर्ही प्रस्तुत ग्रथकर्ता कहे छे

एव गुरुसेवादि च,

काले सद्योगविघ्नवर्जनया ॥

इत्यादि कृत्यकरणं,

लोकोत्तरतत्त्वसंप्राप्ति. ॥ ५-१५ ॥

मूलार्थ—विधिधी जेम पूजानु कष्टु तेम विधिधी घर्मा-
चार्य जादिनी सेवा, भक्ति, पूजा विगेरे करवी, अने योग्य
अवसरे स्वाध्याय, ध्यान, पठन आदि घर्मव्यापारो वित्रो-
अन्तरायोने दूर करी करवा इत्यादि उपर कथित कार्योंनु
विधान रुग्वाधी लोकोत्तरतत्त्वनी प्राप्ति याय अर्थात् आनु ज
नाम लोकोत्तरतत्त्वनी लाभ कथो छे

“ स्पष्टीकरण ”

देवनी पूजानु स्वरूप उपर विस्तारधी विचारी गया.
हये गुरुसेवा आदि कार्यों केम करवा ते विचार आचार्यश्री
अर्ही जणावे छे जे वात अन्यत्र कही जे ते ज अर्ही पुष्टि माटे
दर्शा छे अथवा देवनु यथार्थ स्वरूप, पूजानु यथार्थ रूप
घर्माचार्यों पासेधी ज उपलब्ध थाय छे, माटे गुरुभक्तिनु स्वरूप
अर्ही जणावे छे. शास्त्रोक्त विधिधी पूजा करवानु शास्त्रोमा
जेम कष्टु छे तेम गुरुसेवा, भक्ति, पूजा पण विधिपूर्वक ज करनी
एटले घर्माचार्यों-त्यागी, शुद्ध सन्मार्गदर्शक गुरुओं-नी आहार,
पात्र, औषध, मकान आदिधी शुद्धा विधिधी करवी भावार्थ
ए के-गुरु सन्मुख जवु, पाच अभिगमो साचववा, गुरुने
आहारादि माटे निमंत्रणा करवी, आहार लेवा आवे ते सपये
सामे जवु, पक्षी बदना करी अन्मुष्टियो स्वामी विनय, सरलता,

उदारता, भक्तियो अतिरेक, प्रमोदना अथुसह अहोभाग्य मानी
 न्यायप्राप्त कल्पनीय आहारादि गुरुपात्रमा मूकवा, अल्पमा
 अल्प सात पगला गुरुने बगववा जघु, बारवार सुखशाता
 पूछनी, विनयथी धर्मचर्चा करवी, तथा पठन, पाठन, स्वाध्याय,
 ध्यान, कायोत्सर्ग आदि क्रियाओ करवी तेमज प्रतिक्रमण
 प्रतिलेखना पण उचितकाले करवी शास्त्रमा जे जे क्रियाओ
 जे जे काले करवानो उपदेश कयों छे ते ते क्रियाओ करवी.

आ क्रियाओ पण अनेक प्रकारनी वचमा आवती स्व
 लनाओने दूर करी, विघ्नो-अतरायोथी अडग रही करवी.
 निदान ए के-धर्मक्रियानु आचरण करता अवश्य परीपहो,
 कष्टो, अपमानो, प्रमादो, विन्याओ विगेरे अनेक अतरायो
 धर्मक्रियाथी चलित करवा अकस्मात् आडे आयें पण ते सर्वने
 दूर करी निर्भय बनी पुरुषार्थपूर्वक उपरोक्त धर्मक्रियानु आ
 चरन, पालन, अभ्यास विगेरे करवा. आ कार्योंनी ए रीते
 प्राप्ति यवार्थी एटले ए कार्यों आचरवार्थी प्रयकर्ता कहे छे के
 आनु नाम लोकोचरतत्त्वमाप्ति यइ कहवाय अर्थात् ए प्रमाणें
 वर्तन करवु तेनु ज नाम लोकोत्तरतत्त्व छे ए सिवाय अन्यने
 लोकोचरतत्त्वनी सज्ञा नथी यशोविजयजी महारान कहे छे
 के-विधिसह दान पूजा अने सेवानु आचरण करवाथी ते ज
 महादान, इष्टपूजा अने सत्सेवा ए नामथी आ क्रियाओ
 अंकित याय छे

आ सर्व केय प्राप्त याय ? तेनो अर्ही खुलासो करे छे.

इतरेतरसापेक्षा त्वेषा,

पुनराप्तवचनपरिणत्या ॥

भवति यथोदितनीत्या,

पुसा पुण्यानुभावेन ॥ ५-१६ ॥

मूलार्थ—उपर कहेल सर्व क्रियाओ परस्पर सापक्ष होवाथी, उपरोक्त स्वरूपवाली अने परस्पर अपेक्षा राखनारी आ सर्व क्रियाओनी प्राप्ति पुण्योने पुण्यानुभावथी अने सिद्धान्तवचन परिणमवार्था थाय छे

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रोक्त विधिसह एक सुष्ठु क्रिया प्राप्त थाय तो तमाम क्रियाओ सुष्ठु अने विधि युक्त प्राप्त थाय, तेमज एक क्रिया विधि रहित अने अशोभन होय तो सर्व क्रियाओ अविधिवाली अने अशोभन होय, आ वान अर्ही दर्शाथे छे, कारण के—दान, पूजा, सेवा आदि कार्योनु शास्त्रोक्त विधान परस्पर एवु तो गुयाएल छे के जे महानुभावेने सिद्धान्त वचनो बराबर परिणाम्या—सिद्धान्तवचनमा अपूर्व श्रद्धा प्राप्त यह ते महानुभावेने शास्त्र आधारथी, एक ज क्रियाया कुशलता प्राप्त थवाथी सर्व क्रियाओनी कुशलता प्राप्त थवामा फाई भत्यवाय नडतो नथी पटले आ सर्व क्रियाओ एक चीजानी अपेक्षा राखे छे जेपके महादान नामक क्रियाया न्यायवर्तन, पोष्य-चर्गनो अविरोध, मातापितानी आज्ञा, आशयनी पवित्रता,

उदारता आदि गुणोनी अपेक्षा होय छे ते ज गुणोनी जिनपूजा, गुरुसेवामा पण आवश्यकता छे अने आ क्रियानी निर्मलता मिद्धान्तवचन परिणामवाची, तेना पर सदभाव प्राप्त ववाची ज थाय छे. तेम ज शास्त्रकार आचार्य कहे छे के-सबुद्धिना हेतुभूत पुण्यविपाकनो ज्यार उदय थाय त्यारे ज जिनेश्वरना आगममा अपूर्व श्रद्धा प्रगटे, अने पूर्वे जे प्रमाणे महादान, इष्टपूजा अने सद्गुरुसेवानु स्वरूप कथु छे ते प्रमाणे मनुष्योने अविरोधपणे आ शुभ क्रियाओनी बराबर प्राप्ति थाय छे आ प्रमाणे एक ज क्रिया अन्य क्रियाने बाधा न उपजावे तैवी ज्यारे प्राप्त थाय त्यारे ज ते लोकोत्तरक्रिया कहेवाय, अन अन्य क्रिया साथे एक विरोध करनारी प्राप्त थाय तो ते लौकिकक्रिया कहेवाय निदान ए के-उपर दर्शित अविरोधीनी विधिसह क्रियानी प्राप्ति आगमवचन परिणामवाची अने महापुण्योदयची, प्रत्येक क्रियानो परस्पर सुघटित सबंध साचववाची तेम ज विधिनो अनुराग धारवाची थाय छे



(६) जिनमंदिरषोडशकम्

आगलना प्रकरणा ' लोकोत्तरतत्त्व ' शु अने तेनी प्राप्ति कोने तथा शायी थाय ? ए वात कही, एटले सामान्य धर्मनी सिद्धि यया पछी लोकोत्तरतत्त्व प्राप्त थाय एम जणा-व्यु. आयी आत्मा जिनमार्गमा आगल वधवाने अने उत्तरोत्तर परम गुणो इष्टकार्यसिद्धि करवाने योग्यतावालो थाय. निदान ए के-खरी लायकात तेमा आवे एम प्रतिपादन कर्यु. लायकात वगरनी बीतरागदर्शित त्रियाकुशलता उच्च गृहीजीवन अगर त्यागीजीवननो अधिकार उपलब्ध थाय तो पण ते भाहुती जीवन तुल्य होवायी इष्टफल कदापि अर्पे नहीं, अतएव आ छट्टा प्रकरणा श्रीमान् हरिभद्रमूरिजी भगवान् लोकोत्तरतत्त्व आत्माने प्राप्त यया पछी आत्मा क्या क्या कार्यो करवाने अने क्या स्याने विराजवाने अधिकारी थाय तेनु व्यक्तस्वरूप विस्तारधी प्रतिपादन करे छे

अस्यां सत्यां नियमाद्वि-

धिवज्जिनभवनकारणविधान ॥

सिद्धयति परमफलमल,

हाधिकार्यारंभकत्वेन ॥ ६-१ ॥

मूलार्थ—आ उपर दर्शित ' लोकोत्तरतत्त्वनी ' प्राप्ति यया पछी धर्मी आत्मा स्वयं विधिपूर्वक

मदिर अन्य पासे कराये अने पोते जिनभवनना जे जे कारणो होय तेने प्राप्त कर. धार्थी अधिकारीण आ कार्य आरम्भ्य होवाथी तेने अतिशय परमफलनी सिद्धि घाय.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम सामान्य धर्मना गुणो श्रौदार्य आदि प्राप्त थाय, त्यारमाद सिद्धान्तवचननो प्रेम, परमश्रद्धा अने परिष्कारन यया पढी विधिनो बोध, आदर, करणप्रीति तथा क्रमशः विधिसह क्रियाकुशलता तेम ज प्रत्येक क्रियानो विधिबोध थाय. एटले महादान, इष्टपूजा, सत्सेवा-आ प्रमाणे अत्मशुद्धि अने एकान्त कर्मक्षयकारक लोकोत्तरतत्त्वनी परमगुणानी प्राप्ति थाय जेने आ प्रमाणे क्रमशः अथवा उत्क्रमणी ए गुणो हृदयगम थाय ते अवश्यमेव स्वोपार्जित धन चचल, क्षणिक, विनश्वर धारी तेनो महादानमा, जिनपूजामा अने गुरुभक्तिमा उत्साहधी व्यय करे, धर्मवृद्धि, समकितप्राप्तिसरक्षण अने तेनी शुद्धि तेम ज शासनप्रभावना विगेरे कार्यो स्वर्जाडगीमा अनेक वार ते धनधी करे, एटले वस्तुत धन उपर आ आत्मा गाढ मोह राखे नहीं. छेवटे धीतरागदेवनी महापूजाना लोभधी पोतानी कुटुंबनी अने समान धर्मीओनी सरलता माटे नित्य धर्मवृद्धि थाय ते सारु अने आत्मानी पवित्र भावना धनी रहे तेमज कुटुंबीयो धर्म अने स्वकर्तव्यधी च्युत न थाय ते माटे तथा समकितनी निर्मलता-उज्वलता माटे शास्त्रकर्ता कहे छे के- ' नियमात् ' निश्चयधी अथवा

योग्यता आववाथी आ आत्मा जिनमदिर अन्य कारीगरो पासे कराने ते पण जेम तेम नहीं, किन्तु पोते, सिद्धान्तप्रेमी होवाथी ' विधिवत् ' शास्त्रमा जे विधिधी अने जेवी योग्यता प्राप्त कर्या पछी करवानु जणान्यु ते प्रमाणे वनाये, एटलु व नहीं परतु पोते स्वयं जिनभवनमा जे जे साधनो—वाय अथवा आभ्यन्तर साधनो—जोइए तेनु सपादन करे अर्थात् खरी लायकात प्राप्त करे आ प्रमाणे वर्जन करवाथी शु फल थाय ? ते प्रयकार उत्तरार्धधी जणाने छे एटले उपर कथा प्रमाणे ' लोकोत्तरतत्त्व ' प्राप्त थवाथी योग्यता आवे अने तेथी—' अधिकार्यारभकत्वेन ' राम अधिकारी शास्त्रोक्त योग्यतावालो आत्मा आ जिनमदिर विधिपूर्वक वनाये छे, एटले अतिशय महान् उत्कृष्ट फल जे मोक्षफल अथवा तीर्थकर-गोत्रधरूप फल अगर् निर्दोष सम्यक्त्वरूप फल निदानतया तेने उपलब्ध थाय छे

आ श्लोकमा आचार्यदेवे ' लोकोत्तरतत्त्व ' मळ्या पछी शास्त्रोक्त अधिकारीपणु प्राप्त करी अन्य पासे जिनमदिर कराने अने पोते जिनमदिर योग्य वाय तथा आभ्यन्तर पत्रिन्न साधननु सपादन कर तेम कहु अतएव शास्त्रमा केरा गुणवालो जिनमदिर करानवाने योग्य गण्यो छे ? ए प्रश्नो खुलासो प्रयकर्ता नहीं करे छे

न्यायार्जितचित्तेशो,

मतिमान् स्फीताशय. नदाचार. ॥

गुर्वादिमतो जिनमवन-

कारणस्याधिकारीति ॥ ६-२ ॥

मूलार्थ—न्यायोपाजित धनवान्^१, बुद्धिमान्^२, पवित्र
आशयान्^३ अने सदाचारी तेम ज मातापिता तेमज वडिलो, राजा
अमात्य आदिने मान्य एवा आत्माने वीतरागदेवतु मदिर करा-
ववा शास्त्रकारोप अधिकारी मान्यो छे

“ स्पष्टीकरण ”

धनवान् अने गमे तेवी लायकात वगरनो आत्मा ममत्व,
इर्ष्या अथवा मानप्रिय बनी जिनमदिर कराये छे, तो भवि-
ष्यमा तेने अगर तेना कुटुम्बने, श्रीसधने ते मदिर पर एटली
दरकार होती नथी आयदे ते मदिर भारभूत आशातनामय
अने एफ कर्मसधनु ज कारणभूत बने छे, तथा बनावनार
पवित्र हेतुथी अथवा पवित्र आशयथी अने न्यायथी कराव
नार न होवाथी ते मदिर अन्यने कल्याणभूत कदापि धनतु
नथी अन्याय तथा दुष्टबुद्धिथी करेलु एक गृहस्थ जीवनतु
सामान्य कार्य पण ज्यारे आत्माने शातपण्यो वेसवा देतु नथी
तो आयु जिनमदिर पण उन्नतिमा कथाथी हेतुभूत घाय ?
अतएव जिनमदिर करावनारे केवल धनपतिपणानो ज मोह
न धरता आ श्लोकमा दर्शित योग्यता मेळववा तरफ लक्ष्य
रास्त्रु, एम ग्रथकर्ता प्रतिपादक रीतिथी गर्भित उपदेश करे
छे एटले ते आ श्लोकमा जिनमदिर कराववानी योग्यता-
वाला माटे छे पाच विशेषणो आप्या छे ते पूरेपूरी रीतथी

आत्मा प्राप्त करे त्याख्वाद् ज जिनमदिर पोते स्व अने परना कल्याण माटे बधावी शके, अन्यथा जिनमदिर बधाववा पूरतु ज कार्य कर्युं कहेवाय

धनवान ज जिनमदिर बधावी शके ए वात खरी अने धन बिना मदिर बिगेरे एक पण कार्य यइ शके नहीं ए तो जाणीतु छे, पण जिनमदिर जेरा पवित्र कार्यो क्या धनधी थाय तो स्वपरने आयदे कल्याणकारी थाय एनो सुलामो शास्त्रकर्ता प्रथम ज करे छे—‘ न्यायार्जितवित्तेशो ’ जेरो स्वर्नादगीमा पोताना कुलपरपरागत व्यवहारधी छळ कपट, विश्वासघात, चोरी अने बीजा निंदनीय व्यापारो बिना धन पेढा कर्युं होय ते ज न्यायप्राप्त धन कहवाय. आतु धन जेना पासे होय ते ज मनुष्य वीतराग देवतु मदिर बधावी शके अने पूजा तथा महादानना फलने पामवाने योग्य गणाय, कारण के न्यायप्राप्त धनधी करेलु अल्प पण पुण्यकार्य पुण्या नुबधी पुण्यनु कारण थाय एम महर्षिओ कहे छे. आम छना पण जो हित अने अहितनो विभाग करवानी अकल न होय अर्थात् कल्याणकारी शु छे एटलो पण जेने विवक न होय तो ते न्यायप्राप्त धननो सदुपयोग क्याधी करी शके ? एटले ज—‘ मतिमान् ’ आ धननो हु क्या व्यय करु तो भविष्यमां मारु एकान्त कल्याण थाय एवी जेनी सन्मति होय, तेमा पण कार्य करवा पहेला सन्मति उपजे अने कार्य शरु कर्या पछी अगर कार्य बनी गया पछी आ मं शु कर्युं ? मारु धन बहु खर्चाइ जसे ? हये हु शु करीश ? एवी एवी अनेक धार-

गाओ-विवारो न ध्याय माटे रह छे के-‘ स्फीताशय ’
 कार्यनी शरुआतधी माडी कार्ये थइ रहे त्यासुधी अने आगत
 उपर पण जेना परिणामो मदिर आदि धार्मिक कार्योपा अतु
 क्रमे चडता ज रह, तथा ‘ सदाचार ’ मदाचारो-उत्तम
 आचारवान् होय ते. सदाचारतु स्वरूप योगविन्दु प्ररुणामा
 आ प्रमाण कह छे-“ लोकापवादभीरुत्व दीनाभ्यु
 द्धरणामर । कृतज्ञता सुदाक्षिण्य, सदाचार प्रकी
 र्त्तितः ॥ १ ॥ सर्वत्र निन्दासत्यागो, वर्णवादश्च
 साधुषु । आपद्यैदन्यमत्यन्त तद्वत्सपदि नम्रता
 ॥ २ ॥ प्रस्तावे मितभाषित्व-मविसवादन तथा ।
 प्रतिपन्नक्रिया चेति, कुलधर्मानुपालनम् ॥ ३ ॥ अ-
 सद्ब्रह्मपरित्याग, स्थाने वैतत्क्रिया सदा । प्रधान
 कार्ये निर्बन्धा, प्रमादस्थ विवर्जनम् ॥ ४ ॥ लोका-
 चारानुष्ठात्तिश्च, सर्वत्रौचित्यपालनम् । प्रवृत्तिर्गर्हि-
 तेनैति, प्राणैः कठगतैरपि ॥ ५ ॥ दुनाया तरफना
 अपराधी नित्य भीरु, दीन-अनाथनो उद्धार करवामा प्रेम,
 आपणा पर करेल अन्य जनोतो उपकार जाणवो-मानवो,
 उत्तम दाक्षिण्यता-आ सर्व सदाचारो कहा छे, तथा सर्वत्र
 अने सर्वनी निदानो त्याग, उत्तम साधुजनोनी प्रशसा, कष्ट
 बखते अतिशय अदीनता अने सपत्ति अवस्थामा नम्र परिणाम,
 सुअनमरे अल्प भाषण, कोइनी पण साये विवाद-बलेशमा
 नहीं उत्तरण, स्वीकृत कार्यनु आखिरतक पालन, तेमज कुल-
 धर्मनी बरानर सेवा, खोटा खर्चा बध करवा-नहीं करवा, देवपूजा,

गुरुसेवा, दानादि कार्योंमा लक्ष्मीनो नित्य व्यय, विशिष्ट फल दायी कार्योंमा आग्रह राखवो अने प्रमादनो त्याग करवो, घणा लोकोपां रूढ तथा अविरुद्ध लोकव्यवहारनु पालन करवु, स्वपक्ष अथवा परपक्षमा पटले स्वजाति के परजाति, स्वकुटुंब के परकुटुंबमा सर्वत्र उचित आचारनु पालन करवु अने आ लोक परलोकमा निंदनीय कार्यों प्राणो नाश पामे तो पण करवा नहीं " आ सर्व धर्मायोना सज्जनोना सदाचारो शास्त्रमा पत्रा छे आ सदाचार जेमा होय ते आत्मा अने— ' शुर्वादिमतः ' माता, पिता, बडिलो, राजा, अमात्य आदि सर्वने माननीय होय ते ज पुरुष जिनमदिर बधावी शक अथात् ते ज अहीं अधिकारी मान्यो छे आथी ज आचार्यदेने ' अधिकारीति ' ए अतिम पदयी आवो मनुष्य जिनभवन बधाववाने अधिकारी समजवो एम स्पष्ट निर्देश करे छे अहीं अथकार अतमा ' इति ' पदयी ध्वनित करे छे के—शास्त्रा-ज्ञायी परमशुद्ध अने अधिकारी आ पाच विशेषणविशिष्ट आत्मा ज होय आ परथी लेभागु अने केवल धनवानो जे काई पवित्र कार्यना एकदार बनी जइ लाखोना खर्चयी जिनमदिरादि बनाववानो लाहो लेया तत्पर थइ जाय छे अने उपरोक्त गुणो के शास्त्रीय आज्ञा तरफ रयाल सरखो नथी करता ए कोइ पण रीते योग्य नथी उपरोक्त योग्यता प्राप्त करी, तेने लक्ष्यमा राखी यदि जिनमंदिरो बधावाय तो शास्त्रा-ज्ञाना सरक्षण साथे परम कल्याणरूप इष्टफल नितान्ततया स्वपरने प्राप्त धाय ज.

अन्य पासे जिनभवन धधावतु अने पोते तेना कारखो एकत्र करवा एम पहेला श्लाकमा कथु हतु तो जिनभवनमा साधनभूत क्या कारणो एकत्र करवा तेनु स्वरूप अर्ही आचार्य स्पष्ट करे उ

कारणविधानमेत-

च्लुद्धा भूमिर्दल च दार्वीदि ॥

भूतकानतिसधान,

स्वाशयवृद्धि. समासेन ॥ ६-३ ॥

मूलार्थ—जिनभवन निष्पत्तिना कारणाकलापोनु सत्तेपयी विधान आ ममाण जाणवु—शुद्ध भूमि, शुद्ध काष्ठ आदि दळो, नोकर, चाकरो अने मजूरोंन संतोपवा, तथा पोताना पवित्र आशयनी उत्तरोत्तर वृद्धि करवी.

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकधी अर्थकार जिनभवन वाधवामा उपयोगी अगोनु सत्तेपयी वखन करे छे, एटले के जे साधनोवडे जिन भवनरूप कार्य धनी शके, कारखोनु विशिष्ट भान याय तयार-पछी तेनी विशिष्ट शुद्धि करवाधी कार्य पण विशिष्ट शुद्ध तयार याय, माटे अर्ही कारण विधाननो उपदेश आप्यो छे अर्हीया जे जे कारखो दर्शाव्या छे ते मत्येकनु स्वरूप अने तेनी शुद्धि केम साचववी ? ते तो अर्थकार महाराज पोते ज

आगळ पर विस्तारथी दर्शावशे आर्या अहीं तो द्वाररूप दूक ज वर्णन कर्युं अर्थात् केवल कारखोनी सख्या मात्र अहीं दर्शावी छे जिनमवन बाववा पहेला भविकोए जिनमवन योग्य भूमिनी शुद्धि करवी, तथा काष्ठ, पत्थर आदि पदार्थो शुद्ध निर्दोष लेवा, जिनमासाद बाघनार कारीगरो-मजूरोने सुशी राखवा, तेधोने कोई प्रकार ठगवा नहीं अने घघावनारे पोतानु चित्त उदार तथा परित्र, निर्दोष, उज्वल विचारमय राखवु, एतलु ज नहीं षण उत्तरोत्तर अधिक सुंदर चित्त राखवु.

पृथ्वीनी शुद्धि करवानु जणान्यु तो केवी रीते शुद्धि करवी ? अने केवी पृथ्वी जिनमासाद बाघवाना कार्यमा लेवी ? ते स्पष्ट करे छे.

शुद्धा तु वास्तुविद्धा-

विहितासन्धायतश्च योपात्ता ॥

न परोपतापहेतुश्च,

सा जिनेन्द्रैः समाख्याता ॥ ६-४ ॥

मूलार्थ—वास्तुशास्त्रनी विद्याथी विहित होय अने शोभन न्यायथी जे पृथ्वी प्राप्त थड होय तेमज जे पृथ्वी अन्यते क्लेश उपजावीने लीधी न होय ते ज पृथ्वी जिनेश्वरोए जिनमवन माटे योग्य कही छे.

“ स्पष्टीकरण ”

वास्तुशास्त्रमा जे प्रकारे विधि रूही छे ते प्रकारे प्रथम पृथ्वीनी शुद्धि करवी, एटले जे भूभाग पर जिनमदिर बाधवु होय ते स्थलमा मुडदा के अस्थिओ न होय तेम चोतरफर्या तपास करी निःशुल्य भूभागमा जिनमदिर बाधवु. आ भूभाग पण सन्ध्याय प्राप्त धनथी खरीदीने लेवो अने पृथ्वीना मालीकने यथेष्टपणे सतुष्ट करवो निदान ए के—जे पृथ्वी माटे किंचित् पण अन्यायने स्थान न मळे अने न्यायथी ज लीधी होय, तथा ते भूभागनी आसपास कोइ ग्रहस्य जन रहेता होय तेओनी एरु अगुल मात्र पण जमीन जेमा दवाय नहीं, तेओने यत्किंचित् पण क्लेश, दुःख के उद्देग घाय नहीं—आ विधियी प्राप्त जमीन शुद्ध भूमि कहेवाय. जिनेश्वरदेवो जिनमदिर माटे आधींज भूमि योग्य कहे छे हेतु ए क—आवी जमीन पर जिनमदिर बाधवु होय तो ते कल्याणमय अने शास्त्रोक्त विधानवाळ कहेवाय आ परथी मदिरना दृष्टियो मदिरनी पासेनी जमीन धर्ममा जाय छे, एम मानी दवाववा अधम प्रयत्न कर छे, कोइ पण गृही मरवानी अग्नी पर होय त्या कपट करी तेना बुद्धीयोने रदता राखी तेना मकानो, मिलरतो मदिरमा लेवा प्रयत्न करे छे, आवकधर्म विरुद्ध कर्मोयी पैसा एकत्र करी जिनधन वधारवानी घेलछा राखे छे ते नितान्त शास्त्रविरुद्ध अने कर्मवर्धक छे एम स्पष्ट थाय छे एटले आ रीति तो नितान्त अनुचित ज कहेवाय. आयी शास्त्रो उपदेशे छे के—जिन-

आज्ञा विरुद्धपणे जिनद्रव्य वधारे तो आत्मा अनन्तसंसारी थाय छे, ए वाक्य खास मननीय छे.

जिनमदिर माटे जे जमीन जोइए तेमा आटली विधि साचववानुं शु कारण १ तेनो हेतु प्रयकार खुबो करे छे.

शास्त्रबहुमानत खलु,
सच्चेष्टातश्च धर्मनिष्पत्तिः ॥

परपीडात्यागेन च,
विपर्ययात्पापसिद्धिरिति ॥ ६-५ ॥

मूलार्थ—विधिदर्शक वास्तुशास्त्रनु बहुमान करवाधी अने अन्यने पराभव न उपजाववाधी तेमज वीजाने बलेश न उपजाववाधी निश्चयथी धर्मसिद्धि थाय, अने आधी विरुद्ध वर्तन करवाधी पापसिद्धि थाय.

“ स्पष्टीकरण ”

वास्तुशास्त्रमा जे विधि जिनभवन बनाववानी कही छे ते प्रमाणे अनुसरण करवाधी शास्त्रविधिनु बहुमान सचवाप धर्माए शास्त्रनु बहुमान अवश्य करवु ए तो सामान्य नियम छे, तथाप्रकारे वर्तवाधी निर्दोष भाववर्धक जिनभवन पण तैयार थाय छे अने तेथी ज धर्मनिष्पत्ति पण सिद्ध थाय; तेमज जिनभवन आदि कार्यो साधता प्रथम ते कार्यो करवाधी

यदि अन्यनो अभिभव धतो होय, बीजाश्रोने दुःख धतु होय, काड नुम्शान धतु होय अगर् पीडा के क्लेश धता होय तो अवश्य तेनो त्याग करवो जोइए निदान ए के-कोडेने पण अभिभव के क्लेश उपजाव्या वगर् अने सर्वने सतोप पमाडी जिनभवन धधावतु तो ज धर्मनिष्पत्ति धाय, अन्यथा शास्त्रकार कहे छे के-जे प्रवृत्तिमा शास्त्रबहुमान न सचवाय, परनो पराभव धाय, अन्यने क्लेशो धाय तो ते पापनिष्पत्ति कारक ज गणाय यशोविजयजी महाराज कह छे के-जे हेतुओ धर्मसिद्धिकारक रुद्धा छे ते ज हेतुओ विरुद्ध वर्तन करवाधी पापकारक बने छे, कारण क जे मात्राओ शरीरनी पुष्टि करे छे ते ज मात्राओ अपथ्य करवाधी शरीरनी क्षीणता करे ए अनुभवसिद्ध छे

उपर धतु पटलु ज नहीं पण आ प्रमाणे करवाधी धर्मनिष्पत्ति धाय छे यथा—

तत्रासन्नोऽपि जनो-

ऽसंबन्ध्यपि दानमानसत्कारैः ॥

कुशलाश्रयवान् कार्यो,

नियमाद् द्योध्यगमयमस्य ॥ ६-६ ॥

मूलार्थ.—जिनप्रासाद धारती बखते स्वजनादि सबध-
शून्य लोको त्या आसपास रहेता होय तेपनो पण अवश्य

अशनादिवहे मान अने सत्कारथी सन्मान करी ते लोको जैनधर्मनी प्रशसा करनार सुदर परिणामवाला थाय तेम करवु, कारण के आधु वर्तन राखवु ते खास समकितप्राप्तिनु अग वने उे.

“ स्पष्टीकरण ”

जिनमदिर स्व अने परने बोधिप्राप्ति अथवा तेनु रक्षण तेमज उज्वलता करवा माटे वधावाय उे आ ममकितनो लाभ, रक्षण अथवा उदीपन विगेर पोताना कुशल परिणामो रनवाथी, अन्यने कुशल परिणामवान् कर्तवार्थी, धर्मनी प्रशसा करवायी—कराववार्थी थाय. जे कार्यमा कर्तानु हृदय शुभ न होय, नजी-रुना लोकोनी प्रसन्नता न हाय, अन्य लोकोने अनुमोदनीय न थाय ते कार्य आयदे हितकारी अथवा लाभदायी कदापि थाय नहीं. जिनमतमा जे जे कार्यों कल्याण अने लाभदायी मान्या छ ते सर्व स्वहृदयनी प्रसन्नता अने परने अनुमोदनीयना आधार अरलववाथी ज थाय. निदान ए के—हृदयनी विपुलता अने उच्चता विना जिनमतना कल्याणकारी कार्योंनो लाभ थाय नहीं अतएव भगवान् हरिभद्रमूरिजी कह छे के—जिनमदिर वधावनार केवल पृथ्वी, काष्ठोनी ज शुद्धि करी वायनार कारीगरोने सुश करी अमे शुद्धिनु रक्षण कर्तु एटलायी सतोप मानवो नहीं, किन्तु जिनमदिर वाधती वखते अने वाध्या पछी त्या आसपास निवास करनार जे लोको होय, ते स्वजातीय अगर् परजातीय एव स्वजनादि सग

वगरना होय, पोताना कार्यमा मददगार न थाय तेवा होय तो पण ते सर्वेनो अशन, पान, खादिस, स्वादिम आदि पदार्थो आपीने, नमस्कार, अजली, विनय, नम्रतार्था समान करीने, आसनादिधी सत्कार करीने अवश्य सत्कार करवो, तेब्रोन सुश करवा. तथो पण जिनमदिर आदि कार्यो अने आपणी धर्ममष्टि देखी "अहो ! धन्य छे आ जैनधर्मने ! धन्य छे आ जैनोने ! ! के जे धर्ममा, जे लोकोमा, आटलो वियेक रह्यो छे, आटली उचितता रही छे " आ प्रमाणो प्रशमा करे अने परिणामे सरल परिणामा यइ तेब्रो जैनधर्मनु गोरव करी रागी थाय अने छेवटे धर्म पामी मार्ग पर आय. अर्थात् वाचनारनी आ मष्टिचर्या अन्य लोको शुभ अध्येवमाय पामी धोधिनी लाभ करे, पोताना समकितनी शुद्धि थाय, लोको जैनधर्मनी प्रशसा करे, अनुमोदन-अनुकरण करे, अतएव धर्म साधता यका अन्यने शुभ परिणामो कर्वाधी धोधिसाधननु आ एक अगत्यनु अग छे

जिनमदिरमा पत्थर आदि जे जोइए तेनी शुद्धि कैम करवी ? तेनो उपदेश अथकर्ता आ प्रमाण करे छे

दलामिष्टकादि तदपि च,

शुद्ध तत्कारिवर्गत. क्रीतम् ॥

उचितक्रयेण यत्स्यादा-

नीत चैव विधिना तु ॥ ६-७ ॥

मूलार्थः—दल एटले इट, पापाण, चूनो विगेरे ते पण शुद्ध, अर्थात् तेने उपजावनार पासेधी उचित मूल्य आपी खरीया होय अने भार बहन करारने उचित मूल्य आपी तेअने अधिक खेद-क्लेश न थाय तेरी रीत लागेता होय ते ज जिनमदिर ररवापा उपयोगी थाय

“ स्पष्टीकरण ”

मदिर घधाववामा जे जे पदार्थो जोडए ते ते केरा लेवा ? तेनो प्रकार अयकर्ता जणान छे मदिर माटे चूनो, इट, पत्थर के लाकडा विगेर जे जाडए ते तेने बनाववावाला लोको पासेधी उचित मूल्य आपी एटले लोभ व्यवहारमा जे पैसा ठरेला होय तेदला पैसा आपी लेवा, परतु घर्मादानु काम छे माटे भागमा खेचताण करी, थोछ्छा-बत्ता करी अगरे आहु अवळ समजावी लेवा नही, तेम ज छळ, प्रपच, विश्वासघात करी लेवा नही तथा आ पदार्थो पण बेचनार पोताना व्यापार अर्थे तैयार करळ होय तेवा ज लेवा, परतु खास मदिर माट भट्टीयो करी, खोदावी, आरभादि करी लेवा उचित नथी. ए ज बात यशोविजयनी स्वकृत टीकापा कह छे—“ स्वप्रयोजनसिद्धयर्थमेवेष्टकादिकरणशीलाना पुरुषाणां ” एवी ज रीते आ पदार्थो ज्यार्था लाववा होय त्यार्था जे लोको गाढामा अथवा जानवर उपर लादीने लावे ते लोकोने पण वरावर भाहु आपी, जानवर अथवा मजूरने अधिक द ख न निदान करे, व्यवहारमा अनु-

चित न देखाय तेवी रीते भगाववा आ रीतना ज पदार्थो मठिरना कार्यमा उपयोगी थाय, आधी बलद्री रीते करबायी अविधि लागे, कुशलाशयनी हानी थाय तेम ज लोकोपा जैनधर्मनी निद्रा थाय.

यदि मठिर अर्थे काष्ठनी आवश्यकता होय तो ते केवा लेवा ? ए दशनि छे.

दार्वापि च शुद्धमिह

यत्नानीत देवताद्युपवनादे. ॥

प्रगुण सारवदभिनव-

मुच्चैर्ग्रन्थ्यादिरहित च ॥ ६-८ ॥

मूलार्थ — काष्ठो पण अर्हो शुद्ध प्रयत्नपूर्वक देवता-मनुष्य मग्धी उपवनमार्थी सरल, सारभूत, त्वीन अने सर्वथा गाढ आदि दोष विनाना आवेला होय ते ज मठिरना उपयोगमा लेवा

“ स्पष्टीकरण ”

मठिर पाटे जो लाकडानी आवश्यकता होय तो ते पण न्यायधी अने सम्यक् प्रयत्नधी लाववा. आ पण जे वनमा देवता अधिष्ठित होय, मनुष्य अगर जानवरनी मालिकीनु होय, तेओने सतोषी, पूजा आदि अर्पी ते वनमार्थी लेवा अथवा वननी नजीरुना कोइ सुदर वृत्तो होय तेमायी लेवा; परंतु आ

काष्ठो सरल, वक्रता विनाना, गर्भाला प्रमान अने नवा लेवा. जीर्ण यथा न होय, कीडाओ पड्या न होय, तेमज जेमा गाड के अन्य दूषणो जरा पण लागेल न होय तेवा ज काष्ठो मंदिरना कार्यमा लेवा, जेथी मंदिर दीर्घकाल पर्यंत स्थिर रहे, कोइ पण मिथ्यात्री देवो विगेर उपद्रव न करे अर्ही पण प्रथम कहेल यात अवश्य यानमा राखवी, एतले के-व्यापारीओ पोताना व्यापार अर्थ लाकडा लाव्या होय तेनी पासेथी उचित मूल्य आपी, भाग्नाहकोने उचिन भाहु आपी सतुष्ट करी लायया, किन्तु मंदिरना माटे वनकर्म करतु शास्त्रो उचित मानता नथा.

विधिपूर्वक पत्यर, काष्ठो विगेर लावना एम कही गया अर्ही ते पदार्थो लावनानी विधि शु छे ते जणावे छे

सर्वत्र शकूनपूर्व,

ग्रहणादावत्र वर्तितव्यमिति ॥

पूर्णाकलशादिरूप-

श्चित्तोत्साहानुग. शकुन ॥ ६-९ ॥

मूलार्थः—पत्यर, इट, काष्ठ आदि मंदिर माटे शकून देखीने लेवा तथा लावना अर्ही याथ शकूनो जलभृतकुम लइने कोइ कन्या विगेर सामे थारे ते विगेर अने आभ्यन्तर शकूनो चित्तनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा आदि जाणवा

‘ स्पष्टीकरण ’

प्रथम मंदिर अर्थे जे पदार्था जोइए ते विधिपूर्वक लेवा एम जणावी गया, तेथी अर्ही विधि दर्शवि छे कार्यनी प्रशस्तता-अप्रशस्ततानु अनुमान शकनी अने मननी स्थिति परधी करी शक्य एवु सामुद्रिकशास्त्रा कहे छे आधी ज प्रशस्तकार्यना आरम्भमा पहला शकूनो देखवा, मंगल आचरवु. शुभ दिन, षडी, ग्रहो, चंद्र आदि तपासवानु महर्षिओ कहे छे आना मुख्य वे कारणो छे एर तो हृदयनी प्रसन्नता वधे अने वीजु अनिष्ट सबधी शका दूर थाय अतएव अर्ही पत्थर, चूनो, इट, काष्ठ विंगर खरीदवा जता शुभ शकूनो देखवा तेमन शकूनो देखी लाववा अर्ही गाम्बरुना पाव अने आभ्य-तर एम वे प्रकारना शकूनो जरावे छे जलभृतकुभ विंगर बाह्य शकूनो सामुद्रिकशास्त्रमा प्रा प्रमाणे उद्यां छे-“कन्या गोपूर्य-कुमो दधिमधुकुसुम पावको दीप्यमानो, यान वा गोप्रयुक्त रथवरतुरगो ह्यत्रभद्रातिभद्र । उत्त्वाता चैव भूमिर्जलचरमिशुन मिद्धमन्न मुनिर्वा वेद्यास्त्री-मद्यमास हितमपि वचन मंगल प्रस्थितानाम् ”

॥ १ ॥ “ कन्या, जल अथवा दूध भरेलो कुम, दहीनु पात्र, मधुनु पात्र, फूल भरली छापडी, रजतो जाज्वल्यमान अग्नि, बळद जोडेलु वाहन, घोडा सहित ग्यमाडी, अतिभद्र खुल्लु ह्यत्र, खोदेली भाटी, जलचरनु युगम, पनावलु अनाज, मुनि, वश्या, मंदिरा, मास अने हितकारी वचन-आटला पदार्थो

चालती बखते समीप मळे तो मगळ करनारा थाय. ” आ सर्व गद्य शकूनो रुग्ण छे मदिरनो सामान लेया जता लावता विवेकीए आ शकूनो देखी प्रयाण करवु, तेमज हृदयनी मसन्नता, गुरुआज्ञा ए आभ्यतर शकूनो जाणवा उत्तम सामुद्रिको कहे छे के—यदि गद्य शकूनो न मळे अने हृदयनो एकाएक तीव्र उत्साह जणाय, गुरुग्रोनी एकाएक आज्ञा थाय तो बाह्य शकूननो आधार राख्या विना पण प्रयाण नरवु; कारण के बाह्य शकूनो करता आभ्यन्तर शकूनो बज्जत्तर गण्या छे एटले आभ्यतर शकूनो न मळे अन गद्य शकून घणा सुदर मळे तो पण ते इष्ट फळ आपी शके नहीं आ विधि मदिरनो सामान लाववा माटे शास्त्रोपा कहल छे

मदिर बाधनार कारीगरान ठगवा नहीं परतु तेओने सतोपवा, एम जणाव्यु इतु तो तेओ साथे मदिर बधावनारे केम वर्तवु ? ते दर्शावे छे

भृतका अपि कर्त्तव्या य,

इह विशिष्टा स्वभावतः केचित् ॥

यूयमपि गोष्ठिका इह,

वचनेन सुख तु ते स्थाप्या ॥६-१०॥

मूलार्थ—कारीगर नोकरोंन पण ग्रही जिनभवनरूप कार्यमा विशिष्ट स्वभाववाळा बनाववा, अथवा केन्द्र स्व-

झिनमदिर बधाव्यु अने धारेली इच्छाओ अतरायोदयधी पार न पडे तो मदिर पर, धर्म पर अने तीर्थंकर देव पर अना दर-अश्रद्धा उपजे यदि धारणाओ सिद्ध थाय तो अत्मा मोहक पदार्थना अधिक मोहमा घसडाय, तेमज आ विचारो नियाणा रुप होवाधी मलिन क्ता छे एटले आम करवाधी ज-मातरमा वर्मनी दुर्लभता थाय. अतएव भावान् हरिभद्रसूरिजी कह छे के उपरोक्त लोभ विनानो अने प्रथम कहेला भावमय विचार ते ' अनिदानः ' अनिदान भाव कहेवाय तथा आ ज भाव ' अल शुद्ध ' अतिशय शुद्ध जाणवो आथी आवा विचारोने पवित्र आशयवेत्ताओ ' स्वाशय ' सुष्ठु आशय कहे छे मदिर बधावनारनु आ आशयो परम फल्याण करी शके छे, तथा अ-पने अनुमोदनीय बने छे

उपर दर्शित सुष्ठु आशयनी वृद्धि क्रमे क्रमे मदिर बधा-व्या पछी बधावनारे केवी रीते करवी, अने मदिर बधाव्या पछी बधावनार कवी केवी भावनाओ भाववी ? ते वान प्रयकर्ता दर्शावे छे

प्रतिदिवसमस्य वृद्धिः,

कृताकृतप्रत्युपेक्षणविधानात् ॥

एवमिदं क्रियमाणं,

शस्तमिह निर्दिशितं समये ॥६-१३॥

मूलार्थ—प्रथम जणावेला आशयनी ' में आ जीव

गीमा मंदिर बधाववारूप कार्य कर्तुं, अने अने तीर्थयात्रादि कार्यो कर्तुं नथी'—आ मनाहे शिवाचे अने ते विचारोत वर्तनमा मूकी वृद्धि करवा आरंभ करवा जैनशास्त्रमा आ जिनमंदिररूप कार्य करवा हे

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम तो मंदिर बधावनारे उपर जे मात करवा करी तेनु संरक्षण करतु त्याराठ आ मान्ने करी हे कर तेनो प्रकार यहीं दर्शावे छे. उपरोक्त अर्थें हे कार्यनु अवलोकन करी 'अहो मं अने अने जीवनमा एक मंदिर बधावी छे' अने अने आ मनाहे अनुभादना करी-करवा, अने अने अगभूत अन्य कार्यो अथवा अथवा अथ आदि कार्यो कर्तुं नथी अने अने अवश्य करवा छे.' आ रीते अने अने सकल्प करी भावनी वृद्धि करी अने खाली देखाव करवा नहीं, अने मूकी पवित्र आशयट्टिदि करी 'विशानात्' ए पदयी दर्शावे छे. भावनी वृद्धिनो उल्लेख करवा यान्ति, सुयताः स्वर्गगान्ति । शान्तायतनं सदा

ते ॥ १३ ॥ अतिशय

सद्गति पामे छे अने इद्रियोनु दमन करनार स्वर्गे जाय छे।
 ज्यार शान्तिपय देवमदिर, उपाश्रय आदि बघावनारने नित्य
 पुण्यनी वृद्धि याय छे. ” आवा विचारोपूर्वक अथवा आना
 विचारो करवाधी अर्ही जैनशास्त्रमा आ जिनमंदिररूप पवित्र
 कार्य शस्त्र-प्रधान कथु छे-अर्थात् आ कार्य करवाधी उत्त
 रोत्तर पुण्य नदीनो प्रवाह वशा करे छे अथवा भावद्विन्दु
 स्वरूप आ ममारो कथु छे.-“ एतद् दृष्ट्वार्हत चैत्यमनेके
 सुगतिं गता. । यास्यन्ति बहवश्चान्ये ध्याननिर्धृत
 कल्मषा ॥ १ ॥ यात्रास्नात्रादिकर्मैह भूतमन्यच
 भावि यत् । तत्सर्वं श्रेयसा पीज ममार्हचैत्यनि
 र्मितौ ॥ २ ॥ साधु जातो विधिरय कार्योऽत पर
 मेप मे । अर्हचैत्येऽपि ध्यान आदस्य शुभवृद्ध्ये
 ॥३॥ अहपूर्विकया भक्तिं ये च कुर्वन्ति यात्रिका. ।
 तेऽपि प्रवर्द्धयन्त्येव भाव अद्भानशालिनाम् ” ॥४॥
 “ आ जिनमदिरना दर्शन करी अनेक लोको सद्गति
 पाम्या, अने पीजाओ पण आ जिनमदिरना ध्यान प्रभावधी
 पापकर्मनो क्षय करी सद्गतिगामी थगे आ जिनमदिरमा पूर्व-
 काले नियात्रा, जिनाभिषेक, जिनपूजा, जिनदर्शन विगेरे
 पवित्र कार्यो बन्या, तथा भविष्यमा पण आ पवित्र कार्यो थगे
 आ मर्ने कल्याणालु सुरय पीज में जिनमदिर बघाव्यु ते ज
 छे खरखर आ विधान सुदर छे फरी पण आबु नाम
 भविष्यमा मारे करवु उचित छे. आ ममारो श्रावकने अर्हचैत्य

शुभ ध्याननी वृद्धि कर्त्तार धाय यात्रिको पण निम्न-
 दिरमा आवी 'एक करे हु पहेली पूजा करु, बीजो करे हु
 पहेलो अभिपेक करुं, बीजो करे हु पहेलो आरती
 उतारुं, चौथो करे हु प्रथम अंगरचना करु.' आ प्रमाणे
 उत्साह भक्तिथी अष्टपूर्वितावडे जिनमदिर बधावनार
 अद्दालु जनना भावमा बजारो कर छे " ए रीते जिनमदिर
 बधावनार विचारो करी पोताना भावोनी वृद्धि कर, तथा आ
 सर्व विचारो जिनमदिर बधावनारना विचारो बधारवामा
 सहायक छे एम शास्त्रकर्ता स्पष्ट जणाने छे अने मोक्षार्थिए तेम
 करवु पोताना आत्मा माटे उचित छे

एपर जणावेल विचारो ज प्रधान कथा तेनो शु हेतु १
 ए भाव स्पष्ट करे छे

एतदिह भावयज्ञ ,

सद्गृहिणो जन्मफलमिद परम ॥

अभ्युदयाव्युच्छित्या,

नियमादपवर्गवीजमिति ॥ ६-१४ ॥

मूलार्थ—आ जिनमदिर बधावनु ते ज गृहस्थोने अगे
 भावपूजा अने पोताना जन्मनु प्रकृत फल कहु छे हेतु ए २-
 आर्था अभ्युदय एतले कल्याणनी परपरानो कटापि नाश

यतो नर्था अने परिणामे निश्चयर्था मोक्षरूपी वृक्षतुं बीजभूत
जिनमदिररूप कार्य बने छे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रमा द्रव्यपूजा अने भावपूजा एम वे प्रकारे पूजा कही
छे तेमा जल, चंदन, पुष्प, नैरेय आदिथी पूजा, अंगरचना,
मदिर बनावतु, प्रतिमा भंगारपी, अलकारो चडाववा, उत्सवो
करवा, रथयात्रा विगेर सर्व द्रव्यपूजा कही छे आ पूजा
करवानो अधिकार गृहस्थने छे, परतु सर्वत्यागीने अधिकार
नयी, कारण के तेमा आरभ छे सर्वत्यागी आरभना त्यागी
छे एतले तेओने आ कार्यमा आरभथी त्रास थाय अने
प्रतिज्ञानो भग थाय, गृहस्थ आरभना त्यागी नथी. कुटुवादि
अर्थे अने जीवन व्यवहार अर्थे स्नान, पुष्प आदिनो आरभ
कर छे, एतले तेओने द्रव्यपूजा करवानो आदेश आवश्यक छे,
ज्यारे भावपूजानो अधिकार साधुओने छे ए ज वातनु अनु-
मोदन उपा पायजी ज्ञानसारमा करे छे—“ द्रव्यपूजोचिता-
भेदोपासना गृहमेधिनाम् । भावपूजा तु साधूनाम-
भेदोपासनात्मिका ” ॥ १ ॥ अतएव अर्ही हरिभद्रसू-
रिजी जिनमदिर माटे भार मेनीने कहे छे के—“ एतद्विह
भावयज्ञ ” आ जिनमदिर बधावतु ते अर्ही भावयज्ञ-
भावपूजा कही छे, यद्यपि जिनमदिर ए द्रव्यपूजातर्गत छे
तो पण अर्ही यज्ञ् घातु परथी यज्ञ् शब्द बन्यो छे एतले यज्ञ् घातु
देवपूजा अर्थेनो वाचक छे; अने द्रव्यस्तव पण शास्त्रदर्शित

विधि, शुद्धि तथा जिनाज्ञापालनपूर्वक करवायी ते भावपूजा गर्भित कह्वाय छे. आधी ज अर्ही द्रव्यपूजा रूप जिनमदिरने शास्त्रकर्ताए भाग्यज्ञ-भावपूजामा गण्यु निदान ए के जिनमदिर भाववृद्धिनु साधन होवायी अने भावपूजानु अग होवायी कार्यमा कारखानो आरोप करी तेने भावपूजा मानवामा काइ विरोध देखातो नधी गृहस्थने आ कार्यनो अधिकार होवायी गृहस्थ माटे पोतानी जीर्दगीनु मुख्य फल-परमफल शास्त्रकारो जिनमदिर बधाववु ते जणावे छे, कारण के आ जन्मोपार्जित जननो आवा मार्गोमा व्यय करवा सिवाय बीजु काई पण सार भूत साधन नधी एटलु नहा परतु गृहस्थ आ कार्य करवायी, तुच्छ धननो आ मार्गोमा व्यय करवायी अभ्युदय एटले कल्याण तेनी परपरा पामे छे अथवा अभ्युदय एटले स्वर्गनी वितुल सपत्ति जन्मातरमा प्राप्त करे छे ने छेवटे निश्चयधी मोक्ष पण पामे छे. आधी आ जिनमदिर रूप कार्यने अपवर्गनु बीजभूत गण्यु, बीज वाव्या पछी तेना हजारो फलो अने घास अर्पे छे तिम आ मदिर बधावमारूप कार्य पण परिणामे गेहलौकिक राज्यादि पारलौकिक स्वर्गसपत्ति अर्पी मोक्ष-दाता बने छे, माटे तेने बीज तुल्य शास्त्रकर्ताए मायु.

आ प्रमाणे “ जिनभवन ” नी शुद्धिरूप विधि अर्ही विस्तारधी दर्शावी. हवे आ सत्रधमा विशेष वस्तव्य शास्त्र-कर्ता जणावे छे

देय तु न साधुभ्यस्तिष्ठति,
यथा च ते तथा कार्यम् ॥

अक्षयनीव्या ह्येव,

ज्ञेयमिदं वशतरकाडम् ॥ ६-१५ ॥

मूलार्थ—आ रीते मन्दिर बधावी साधुओंने अर्पण न करवु किन्तु साधुओं उपदेशादि माटे त्या ग्हे तेवी व्यवस्था बहारना भागमा करवी, कारण के ए प्रमाणे करवार्थी अनेक लोको त्या आवे एतले आ जिनमन्दिर पुण्यपवाह माटे अक्षयनीधि बने, तथा मसारसमुद्रथी सपूर्ण समाजना वशना उदार बनार प्रवहण समान थाय.

“ स्पष्टीकरण ”

आ रीते विधिशुद्ध मन्दिर गृहस्थे बधावी तेनु रक्षण विगरे पोते ज करवु अथवा मन्दिरनी योग्य व्यवस्था सार अमुक रकम आवञ्चु साधन निकाली अमुक धर्मी गृहस्थोने तेनी सारसभाल माटे सोपवु एतले श्रीसधने सुप्रत करवु, परतु साधुओंने-मुनियोने सोपवु नहीं एतले मन्दिरनो बढीबढ मुनिओंने तावे करवो नहीं अर्था अथकार हरिभद्रसूरिजी ‘ मुनियोन सोपवु नहीं ’ जे आ प्रमाणे उपदेश करे छे तेमा खास हतु छे हतु ए के-ते फाळे बैत्यवासीओंए एवो उपदेश गर कर्यो हतो के गृहस्थे मन्दिर बधावी साधुओंन तावे करवुं,

कारण के गृहस्था अजाली अन उपाधिवाळा होय पटले तेओधी वरावर सभाळ थाय नहीं, आशातनाओ टळे नहीं, साधुओ तेनु उचित रक्षण कर, आशातनाओ दूर करे, त्या निवास करे, मंदिर आवनारने उपदेश आप, जेधी धर्मनु पण योग्य रक्षण थाय आ उपदेशया गृहस्था मंदिर वधावी चैत्य-वासा मुनियोने सोंपना हता चैत्यवासाओ त्या ज रहता हता मंदिरना मालिक रनी मंदिरना धननु भक्षण करता हता. परिणामे तेओ अने गृहस्था धर्मभ्रष्ट थइ पतित थतां आ चैत्यवासीओ इग्भिद्रसूरिजाना सभयभा बहु जोरया वध्या न हता तो पण तेओनाओ प्रचार थवा लाग्या हता तेओना उपदेशानी असर कटलाक लोको पर थती हती आ वात सपोषप्रकरण अथ परधी जोड शक्या छे, परतु आ चैत्यवासीओनु जोर त्पारपट्टी पणु ज वधी गयु जे पट्टी बुद्धिसागरसूरि अने जिनेश्वरसूरिए चैत्यवासीओना उलने अटकाव्यु यावत् जिनवल्लभगणिए पणु तोडवाना प्रसर भयत्न कर्या चैत्यवासाओना तत्सवधा मान्यतानु स्वरूप सघपट्टकमा जिनवल्लभगणिजीए पणा विस्तारथी कयु छे

अतएव आचार्य कह छे के मंदिरना जाणोद्वार, व्यवस्था, रक्षण आदि कार्यो गृहस्थे करवा पण मुनिए करवा नहीं जो के शास्त्रना मंदिरना सर्व कार्यो यावत् धनरक्षण, सवदन, ग्रामक्षत्र आदि बढीपट्ट करवानु मुनिने आज्ञा आपो छे, परतु आज्ञा अपवाद मार्गाश्रित होवार्थी ज्यार गृहस्था धर्मविमुक्त

गया होय, आपसना क्लेशने लीये मदिरनी एकात उपेक्षा
 करता होय, अनेकथा विविध उपदेश आपवा छता मानता ज
 न होय, आसपासनो कोइ धर्मा सारसभाल के आशातना
 दून करतो न होय, सर्ग्या मदिर, प्रतिमा, तेनु धन विनाश
 पामतु होय, आशातना घणी ज यती होय, कोइ सेवरु पण
 न मलतो होय, तो ज आचारनिष्ठ गीतार्थ परम श्रद्धालु मुनि
 महात्मा आ कार्य करी शके तेओना माटे ज आ अधिकार
 छे, कारण के आवा मुनियो ज्या सुधी उचित वहीवट करनार
 न मळे त्या सुधी उपरोक्त कार्य अलिप्त मनयी धधु करी शके
 अने उचित वहीवटकर्ता प्राप्त यये तुरत ज तेने स्वाधीन कर
 आधी ज आचार्ये मुनियोनो निषेध करी गृहस्थने वहीवट
 करवानो उपदेश आप्यो.

तथापि ते मुनियो आधीने धर्मोपदेश माटे त्या 'निवास
 कर, बाल, बृद्ध, ग्लान मुनियो त्या स्थिति करे, आधी गृहस्थे
 मदिरनी बहार एटले नजीकमा आघारुमे दोष विनानु
 एरु स्थान अयश्य तैयार करवु जेथी मुनियो त्या स्थिति
 करी धर्मोपदेशादि करी शके अर्ही उपाध्यायजी टीकाभा
 ' अहिर्मंडपादौ ' ए पन्थी मदिरनी बहार मडपमा व्याख्या-
 नादि माटे स्थान करवानु जणान छे आनु कारण एक ज के
 मदिरे दर्शन-पूजन माटे जे लोको आपे ते लोको दर्शन-पूजन
 करी तुरतन व्याख्यान अने मुनिदर्शननो लाभ पामी शके.
 आवा ध्याख्यान स्थानो मेराड, मालवा के मारवाडना जुना

मदिरोमा घरों स्थळे देगवामा आवे छे बीजु फारण ए
 पण जणाय छे के ते समये वादशाही जुल्मी धता हता,
 एदले धर्मव्यवहारो बहु ज गुप्तपणे रखाता हता मुसलमानी
 अत्याचारोना लीधे स्त्रीओ पडटाया ज रहती हती अने वधारे
 वखत इतर इतर स्थानोपा जद शकती नहीं, एदले मदिरो अने
 व्याख्यान स्थळो साथे साथे राखी तेने घणा ज गुप्त
 स्थळमा राखवानो प्रचार हणे आ स्थितिनु भान अत्यारे
 पण आपणे पूर्वना मदिरो देखी अनुमान करी शकिए छीण
 गमे तैम हो, परन्तु मदिरोनी साथमा ज व्याख्यान के मुनि
 निवासना स्थानो करायी वर्तमानमा तो आशातना अने
 अथ अन्वर्थनु कारण थाय छे, तमन आचार्यनो काइ एवो
 मन नथी के मदिरोनी अलग दूर व्याख्यान अगर मुनि-
 निवासनु स्थान न करवु ए तो गृहस्थनी सरलतानो विषय
 छे तैमज ते काळे मुनियो उदाचित् ज शहरेमा जावता हता
 अने धार्मी दर्शन व्याख्यानादि करी चाल्या जता हता कोइ
 बाल, ग्लान के वृद्ध मुनियो पण कारणशत अमुक समय
 रहेता एदले तैओ पाटे ते स्थान व्याप्रात करनार न गणाव,
 तथा मूळकर्ता भगवान् हरिभद्रसूरिजी तो एदलु ज कहूँ के-
 ' तिष्ठति यथा च ते तथा कार्य ' मुनियो आवीने
 स्थिति करे तैम मदिरो बधाववु अर्थात् आशातना न लागे,
 बीजा दोपो उद्भवे नहीं ते अवश्य ध्यानमा राखवु साधु
 योग्य स्थान करवानु गीजुं कारण ए छे के जो तैवु स्थान
 न होय तो मुनियो आवे नहीं अने तैम वनवायी धर्मोपदेश करे

नहीं ने अतः स्वकुटुब, स्वजाति धर्महीन थाय, एटलु ज नहीं
 पण श्रावके ज्या जिनमदिर होय, ज्या मुनियोनु आवागमन
 होय, ज्या अन्य समानधर्मीनो सयोग होय त्या ज निवास
 करवो, ए ज वान शास्त्रकार दर्शने छे. “ निचेसज्ज तत्थ
 सद्धो साहूण जत्थ होइ सपाओ। चेइयघराइ जामिय
 तयन्न साहम्मिया चेष ” ॥ १ ॥ फरी आ जिनमदिर
 श्रावके ए प्रमाण करयु के अक्षयनीवि वने अर्थात् मदिर
 सर्वेन आधारभूत हावाथी दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणनी
 वृद्धिकारक होवाथी, जेम नीवि एटले मूलधन तेनु रक्षण
 करवाथी, व्याजे फेरववाथा ते कायम अक्षय रहे छे तेम मदि
 रनु रक्षण करवाथी, उचित देखरेख राखवाथी ते पण अक्षयनीवि
 जेवु थाय, एटले उत्तरोत्तर लाभनु ज शरण थाय आ प्रमाणे कर-
 वाथी परपराए जीर्णोद्धारादि कार्यो कराववाथा वनावनारने अने
 अयन उपकारभूत यह आखा कुटुबने तरवानु साधन वने छे. पर
 मार्थ ए के--जिनमदिर वधाव्या पछी, तेनु रक्षण कर्या पछी,
 भविष्यमा धनारी पोतानी प्रजा अने कुटुबीओने धर्मप्राप्तिनु स्थान
 वन छे, तेमज आ मदिर अपारा पूर्वजोए वधाव्यु छे माटे
 जानो जीर्णोद्धार, रक्षण अने प्रथ अपार करवो जोइए ए
 प्रमाणे पक्षपात उपाइ धर्ममा जोडाय छे एटले जेम प्रवहण स्व
 अने परने तार छे तेप आ जिनमदिर पण अनेक भावि
 पुरुषोने तारनार वने छे अही उपायायजी वधारे खुलासो
 करे छे स्वयंशकन मदिरद्वारा धर्मप्राप्ति यवाथी ते मदिर

पर विशेष भक्ति जो के भावि प्रजाने याय छे तो पण अन्य मंदिर पर भक्ति होय तो मिथ्यात्वपणाना प्राप्ति याय नहीं. एटले के अन्यसघकृतादि मंदिर पर पण अनुराग अवश्य उत्पन्न यवो जोइए; अन्यया मिथ्यात्वनो दोष लागे.

आ सर्व विधिनो उपदेश कया पछी वादी शका करे छे के आ बधु जे कही आव्या ते ठोक, पण मंदिर बधाववामा पृथ्वी आदि छकाय जीवनी अवश्य नाश याय छे, ते विना जिनमंदिर बनवु अशक्य छे, माटे कार्यमा तो तमारे खास कराने हिंसा मानवी ज पदशे आम मान्या पछी शु हिंसा वाञ्छा कार्यधी धर्म बने खरो ? आ प्रश्ननु समाधान आचार्य अर्ही आ प्रमाणे कहे छे —

यतनातो न च हिंसा,

यस्मादेषैव तन्नितृत्तिफला ॥

तदधिकनिवृत्तिभावाद्—

विहितमतोऽदुष्टमेतदिति ॥ ६-१६ ॥

मूलार्थ—प्रयत्नपूर्वक उपयोगपूर्वक मंदिर वाधवाधी आ भावहिंसा लागती नथी आ हिंसा पण निवृत्तिफल-हिंसा-रूप निवृत्ति फलवाला कही छे, कारण के अधिक अन्य आरम्भातमा जे हिंसा याय ते हिंसा मंदिर वाधवामा थती नथी अने अन्य हिंसानो रोच याय छे तथा शास्त्रमा मदिग

बाधवानी आज्ञा आपी छे आथी जिनमदिर उधावतु ते अनुचित नया

“ स्पष्टीकरण ”

जिनमदिर बाधवामा जो के उपलक्ष दृष्टि आपणाने हिंसा नजरें दखाय छे रसरी, पण आ हिंसाने शास्त्रकर्ता हिंसा स्वीकारता नथी, कारण हिंसा द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारे कही छे जेमा क्रियाकारक पुरुषना कारणथी आत्माओना प्राणोनो नाश थाय पण ते पुरुषनो अनुपयोग-बेदरकारी न होय तथी ते द्रव्यहिंसा, अने जेमा प्राणनो नाश न थाय तो पण अनुपयोग प्रवृत्ति होय तेषा ते भावहिंसा, अथवा स्वरूप, हेतु, अनुबध एम प्रण प्रकार हिंसा शास्त्रोमा कही छे जे प्रवृत्तिमात्रथी जीवोनो नाश थाय पण प्रवृत्ति करनार बेदरकारी-अनुपयोग अने शास्त्राज्ञानिस्पेक्ष न होय तो ते स्वरूपहिंसा जेमके मुनि मार्गें विहार करता नदी उतर, अर्ही बेदरकारविहीन अने शास्त्राज्ञासापेक्ष जलीय जीवोनो नाश यवा छता मुनिने आ हिंसा लागती नथी मन, वचन अने कायाना प्रमत्त व्यापारोथी जीवोनो नाश थाय तो ते हेतुहिंसा, तथा जेमा हिंसाना परिणामो साथे दुष्ट प्रवृत्ति होय ते अनुबधहिंसा शास्त्रो दर्शाये छे. हने जिनमदिर बाधनार शास्त्राज्ञासापेक्ष अने खास यतनापूर्वक मदिर बधावे जेथी मदिर बाधवामा जो के हिंसा थाय छे तन्पि ते भावहिंसा नथी हेतु

ए क-आ हिंसामा भावहिंसानु लक्षण सुघटित यतु नथी
 आथी ज हिंसाने हिंसा शास्त्रोए नथी मानी, एटले अर्ही
 आचार्य कह छे के—‘ यतनातो न च हिंसा ’ प्रयत्न
 एकान्त उपयोगपूर्वक वर्तन करवाथी हिंसाजय दोष उद्भवतो
 नथी, ए ज वात शास्त्र दर्शावे छे “ रागदोषविउत्तो
 जोगो असदस्स होइ जयणाओ ” “ अशठ-अमलीन
 परिणामी अने शास्त्राज्ञाथी यतनापूर्वक वर्तनार मनुष्योनो
 व्यापार-वर्तन रागद्वेषविहीन ज होय ” अर्ही उपयोगथी
 अने शास्त्राज्ञाथी अशठ प्रवृत्ति वरनारने भावहिंसाजन्य दोष
 न लागे ए शास्त्रकारनो रुचिताशय छे खरी रीते शास्त्रकारो
 भावहिंसा वर्जवानो एकान्त उपदेश कर छे, ज्यार मंदिर बधा
 बनार आ हिंसा त्यनी कार्य कर छे एटले तेमा हिंसादोषनो
 सदुभाव केम मनाय ? निदान ए के-सर्वथा यतनापूर्वक कार्य
 करबु, ए ज वात पचागकमा दर्शावी छे, “ जयणा य
 पयत्तेण कायव्वा एत्थ सब्वजोगेसु । जयणा उ
 घम्मसारो ज भणिया वीयरामेहिं ” ॥ १ ॥ “ जिन
 मंदिर विधानमा मंदिर उपयोगी दरक पदार्थो जीवरक्षा
 करवापूर्वक अने शुद्धिपूर्वक लाववा, कारण के जैनशासना
 सर्व व्यापारो प्रयत्नथी यतनापूर्वक करवानु कहु छे, केम के
 धर्मनो मुख्य सार वीतरागदेवे रास यतना-सोपयोगव्यापार
 कतो छे ” परमार्थ ए के-सोपयोग वर्तनार आत्मा सम्य-
 कत्व, ज्ञान, चारित्र ने श्रद्धा, मोक्ष अने आसेवनथी आगथी

शुद्ध छे अर्ही मंदिर बाधवामा यतना पाळवानु स्वरूप पत्राशुद्ध
 टात्रामा आ प्रमाण क्यु छे. परिणत-एटले घराघर छायांनि
 काइरु आचार्य अर्ही परिणतनो अर्थ अचित्त जल लेबु तेप
 मरे छे तथा जेमा किडी, कुथु आदि त्रम जीवो न होय तेवा
 घराघर स्वदृष्टि तपासेल फाष्ट, इट, धूनो, पत्थर विगेरे
 पदार्थो लेवा तेमज अन्य कृषि आदि आरमो त्राजु करा
 भाविक गृहस्थे स्वय पाताना देखरखधी स्वहस्तधी कार्य
 करजु, परतु कारागरोन भरोसे करावजु नर्ही आ प्रमाणे
 यतनाथा मंदिर बघारजु, आधी आ कार्य भावहिंसा बगरजु
 कहा शक्य " सा इह परिणयजलदलविशुद्धरूवा उ
 होइ णायव्या । अण्णारभणिविस्तीए अप्पणादि
 ट्टण चेव " ॥ १ ॥ अतएव शास्त्रकारो आ यतनाने जो
 के प्रवृत्तिरूप छे तो पण अन्य दुष्ट प्रवृत्ति बध करनार
 होवाधी निवृत्तिरूप कह छे, फारण के आ यतनाद्वाराए
 जिनमवनरूप अल्प दोषमय कार्यनो आदर अने बहुदोषयुक्त
 अन्य आरमोनो त्याग थाय छे. आ रीते विचारवाधी अने
 पचाशकृमा यतनानु जे स्वरूप क्यु छे ते प्रमाणे वर्तवाधी भाव-
 हिंसारूप दोष मंदिर बाधवामा न आवे ए वास्तविक सत्य छे.

अर्ही सुधी तो भावहिंसा न लागे ए विचार्यु, पण द्रव्य
 हिंसा अथवा स्वरूपहिंसा तो मंदिर बाधवामा जरुर लागे,
 ए मशना उत्तरमा शास्त्रकार जणाने छे के-जो के द्रव्यहिंसा
 थाय तो पण अर्ही जे यतना दर्शावी तथाप्रकार वर्तवाधी ते

हिंसा निवृत्तिना फलने अर्थे छे ज्ञानो परमार्थ ए छे कै-
 जिनमदिर वाधना ते वाधनार भाविश् गृहस्थ अन्य शू-
 आग्भमय कार्यो नो त्याग करे छे पडले आ जिनमदिर वाधना-
 रूप द्रव्यहिंसा प्रवृत्तिथी गृह आरभणय कार्यो छूरी जाय छे।
 माटे “यस्मादेपैव तन्नियुत्तिफला” जे माटे आ यतना ज
 हिंमानियुत्तिफलजनिका उनै छे शास्त्रोमा पण वयु छे
 “जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिस्समग्ग-
 स्स । सा होइ णिज्जरफला अज्झप्पविसोहिजुत्त
 स्स ” ॥ १ ॥ मूयदर्शित विधिण करी पूर्ण अने आत्म
 निर्मलतायुक्त पुष्ट यतना-उपयोग महित प्रवृत्ति आदरता ओ
 विराधना-हिंसा कर तो ते हिंसा पण ते आत्माने कर्मनिर्नरा
 फल आपनार याय, माटे आ द्रव्यहिंसा निवृत्तिफलजनिका
 यही. आ परधी जेओ जिनमंदिर वाधनामा पृथ्यादि
 जीवो नो वध धवाधी ते आरभयुक्त गणाय माटे ते कार्पणा
 धर्म म्म समय ? आओ जे प्रश्न कर छे तेनो योग्य सुलासो
 उपरना लेखथी सुन्दरीन्या स्पष्ट यइ जाय छे आटलो
 स्पष्ट सुलामो कया पछी करी शास्त्रकर्ता-‘ विहितमतोऽ
 दुष्टमेतदिति ’ ए पदधी आ वात वधारे स्पष्ट करे छे
 एक तो पूर्वे कही आख्या तेधी जिनमदिर वाधनामा काइ
 प्रत्ययाय नथी, बीजु शास्त्रमा जिनमंदिर वधावगानी खास
 आज्ञा आपी छे, जिनश्वरोए जिनमदिर वधाववानो निर्मल
 उपदेश आप्यो छे; माटे पण आ जिनमदिर वधावउ सर्वथा

अदुष्ट छे निदान ए के-जे विधान सर्वशास्त्रविहित होय ते जरूर अदुष्ट न होय, ए ज वातनी पुष्टि उपदेशरूपे पाच सो ग्रथकर्ता अने पूर्वधर श्रीमान् उमास्वाती महाराज पोनाना ग्रथमा कह छे. “ यस्तृणमयीमपि कुटी कुर्याद् घात-
 धैक पुष्पमपि । भक्त्या परमगुरुभ्य पुण्योन्मान
 कुतस्तस्य ॥ ’ ॥ जिनभवन जिनविद्य जिनपूजां
 जिनमत च य कुर्यात् । तस्य नरामरशिवसुग्वानि
 करपल्लवस्थानि ” ॥ २ ॥ “ जे कोइ मनुष्य भक्ति अने
 श्रद्धार्थी वीतरागदेवने एक घासना झुपडी तथा एक ज पुष्प
 भेट कर तो पण तेना पुण्यनु प्रमाण थइ शके नहीं एटलु
 पुण्य बचाय छे, तेम ज जे मनुष्य भक्ति अने श्रद्धावडे एक
 जिनमदिर बधावे, एरु जिनप्रतिमा भरावे, जिनपूजा करे
 अथवा जिनमत आराधे तो ते मनुष्य मनुष्य, देवता अने
 मोक्षना सुखोने हस्तगत कर छे ” ए रीते शास्त्रविहित
 होवार्थी जिनमदिर क्रिया निर्दूषण आचार्य भगवान् दर्शावे
 छे, एटले जिनमदिर बधाववामा द्रव्य अथवा भावहिंसा
 पैकी कोइ पण हिंसा लागती नहीं, किन्तु हिंसानिष्ठत्तिरूपी
 फल अर्पण करी एकान्त कर्मनिर्जराकारक बनी उत्तरोत्तर
 पुण्यानुबधी पुण्यनो बध करावनार ज धाय छे. आथी
 जेओ जिनमदिर बाधवामा जिवहिंसा लागे छे एवो जे उप
 देश करे छे तेओ एकान्त व्यामोहित अथवा शास्त्ररहस्यना
 अज्ञात छे एम समजवु जोइए

(७) जिनविम्बषोडशकम्.

गत षोडशक प्रकरणमा विधिगुद शास्त्रविहित यन्त्र-
पूर्वक जिनमदिर गायानो विधि दर्शाव्यो, परतु आ जिनमं
दिर जिनप्रतिमा वगर इष्टदायी न थाय माटे जिनप्रदिमानो
पण तेप्ली न आवश्यरुता होयायी अर्हो शास्त्रका आ
सातमा प्रकरणमा प्रतिपानो अधिकार अने तेनु जिन्दुद
शास्त्रोक्त विधान न्शाय छे.

जिनभवने तद्विम्ब,

कारयितव्य द्रुत तु बुद्धिमत्रा ॥

साधिष्ठान ह्येव

तद्भवन् वृद्धिमत् भवति ॥ ७-३ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाण विधिगुद जिनमदिर जिनप्रदिमानो
माने शीघ्र जिनविंश करवावृ-भरावृ कर्म के तेप्ली
करवायी जिनभवन साधिष्ठित याव, ए नदमं इ
जिनमदिर निश्चययो वृद्धिकाक थाय छे

“ प्रनिमा भरावे कोण ? ”

स्पष्टीकरण—जिनभवन माटे इष्टदायी न थाय माटे
दर्शाव्यु तेम त्या चाराववा याव विधिगुद नु जिनप्रदिमानो
व्यु छे, अर्थात्, विधिगुद निर्दोष जिनप्रदिमानो जिनप्रदिमानो
कारागरो पासै जिनप्रनिमा इष्टदायी न थाय माटे

प्रथम आचार्य समीपे विनेश्वरोना गुणो श्रयण करी शुद्ध बुद्धि प्राप्त करी मनुष्यनु मुख्य कर्म अने जन्मनु प्रधान फल आ सिवाय अन्य नयी एवा भावना धारण करे, तेम ज आ भूमडलमा अनन्तगुणराशी विनेश्वरदेव छे तेथी तेमना विंनु दर्शन पण सुखदातृ थाय छे अन आ विं करावना रनु परम आत्मकल्याण थाय छे, माटे मोक्षपथना स्वामी अने मोक्षदर्शक विनेश्वरोना गुणोनु बहुमान आदरसत्कार, प्रीतिपूजा विगेर कार्यो करवा मोक्षार्थी-मोक्ष माटे प्रयत्न करनार कुशल आत्माए अवश्य प्रयत्न करवो उचित छे निदान ए के-विनेश्वरोनु बहुमान पूजा आदि करवाथी भवि आत्माना हृदयनी निर्मलता थाय, तथा शुद्ध भावनावडे अवश्य शुभ पुण्योनी परपरा वधे छे ने अन्तमा आत्मा सिद्धिपदने पामे छे आ विचारो, आ भावना प्रतिमा करावनार अथवा भरावनारना हृदयमा अभूतपूर्वपणो रमी रही होय एदले ते आत्मा अवश्य पोतानी निर्मलता साथी शके वळी प्रतिमा बनावनार कारीगरनो सुअवसरे समुचित सत्कार करी पोतानी शक्ति अनुसार सपत्ति आपवी, आम न वनी शके तो प्रथमथी तेनु मूल्य ठरावी पाछळथी ठराव्या करता अधिक पैसो आपां कारीगरने रुश करवा जेथी प्रतिमा आनद, उत्साह अने आत्मनिर्मलताकारक जरूर वने

“ प्रतिष्ठा क्यारे करावे ? ”

ए रीते निपजावेल अगर् अन्य स्थानथी थावेल जिन

विंशती योग्य मुहूर्त्तमा शास्त्रदर्शित विधिधी आढवरपूर्वक
उपरोक्त जिनमदिरमा बुद्धिमान् नर जरुर प्रतिष्ठा करवी,
स्थापन करवु अर्ही ग्रथर्त्ता मूलमा ' बुद्धिमता ' ए
पदधी बुद्धिमाने एटले जे शास्त्रदर्शित प्रतिष्ठाविधिकुशल
अने आचार तथा धर्ममा पूर्ण श्रद्धालु तथा कुशल होय तेवा
ज मनुष्ये आ प्रतिष्ठा करनी अगर तेवा पुन्प पासे प्रतिष्ठा
करावनी, ए आशय जणाव्यो छे तेमज मूलमा—' द्रुत तु '
ए पद छे एटले मन्दिर निष्पन्न थाय के तुरत ज प्रतिष्ठा
करवी, किंतु विलम्ब न करनी हेतु ए क-शिल्पशास्त्रमा
मदिर तैयार थया पछी अमुक मुदत्तमा प्रतिष्ठा करवानु अने
तदुपरात मुदत्त थवाधी दोषमाप्ति कही छे, एटलु ज नहीं
परतु मदिर खाली रहवार्या तेमा कोई दुष्ट दम्नो नास थइ
जाय छे अने तेधी मदिर करानार अथवा सघने कइक प्रका-
रना नुकशानो उभा थाय छे, माटे मदिर पूर्ण थवा साथे
अथवा मूल गभारो तैयार थवा साथे तुरत ज मूर्त्तिनी
स्थापना-प्रतिष्ठा करी देवी ए शास्त्राज्ञा छे

ए प्रमाणे सशुद्ध जिनविम पधराववार्या ए जिनमदिर
पण सनायकत्व-साधिष्ट थयु कह्नाय, अतएव आ ज मदिर
सघनु, प्रतिष्ठा करनारनु, तेना कुटुवियोनु कल्याण करनार
थाय छे अरु १. खास वृद्धिकारक बने छे

निनप्रतिमा बनाववानी विधि शास्त्रकार दर्शावे छे

जिनविंवकारणविधि ,

काले पूजापुरस्सर कर्तुं ॥

विभवोचितमूल्याऽर्पण-

मनघस्य शुभेन भावेन ॥ ७-२ ॥

मूलार्थ—जिनविंव कराववानी विधि आ प्रमाणे छे विंव करनारनी सुअवसरे पूजा करवी, एटले तेनो योग्य सत्कार करी, निर्दोष शुद्ध भावथी पोतानी सपत्ति अनुसार महेनतना बदला तरीके मूल्य अर्पण करवु

“ कारीगर केवो जोहए ? ”

स्पष्टीकरण—जिनविंव केरी रीते कारीगर पासे कराववु तेनु विधान अमे उपर दर्शावी गया ते ज विधान अथकर्ता अर्हो स्पष्ट करी जणावे छे अथकार कहे छे के—जिनविंव कराववानु विधान आ प्रमाणे जाणवु जे कारीगरे जिनविंव तैयार कर्यु होय तेनो भोजन, वस्त्र, पुष्प, पत्र आदिथी प्रथम सत्कार करवो अने पछी निर्दोष पवित्र आशयथी पोतानी सपत्ति प्रमाणे तेन धन अर्पण करवु उच्चमोत्तम अमूल्य जिनविंवना लाभ पासे वाइ अधिक धननी किंमत नथी. अर्हो ‘अनघस्य’ ए पद आप्यु छे. आनो परमार्थ ए के-

जिनबिंध बनामनार मनुष्य जरूर मदिरा आदिना व्यमन रहित होवे जोइए; कारण के व्यसनी मनुष्य पासे प्रतिमा कराववी शास्त्रकर्ता सर्वथा अनुचित जणावे छे

केवा कारीगर पासे जिनबिंध कराववु ते स्पष्ट करे छे

नार्पणमितरस्य तथा,

युक्त्या वक्तव्यमेव मूल्यमिति ॥

काले च दानमुचित,

शुभभावेनैव विधिपूर्वम् ॥ ७-३ ॥

मूलार्थ—मद्यं आदि व्यमनवाळाने आ कार्य सौंपवु नहीं अने व्यसन रहित जनने पण युक्तिथी समजावी कहेवु के—‘ अमुक मून्य आपीशु ’ आ प्रमाणे कद्या पछी समय परस्वे पवित्र भावथी तथा विधिपूर्वक तेओने उचित दान आपवु

“ स्पष्टीकरण ”

मदिरा, जुगार अने परस्त्री व्यसनी मनुष्य पासे आ प्रतिमा कराववी नहीं अने तेने पैसो पण आपवानहीं हेतु ए के—व्यसनी माणस पासे एवु परम पवित्र अने एकान्त हितदायी कार्य कराववावी लोकोगा पिदा थाय. करनारने सद्भाव होय नहीं अन बराबर कार्य करे नहीं तेमज उचित

समये कार्य पूर्ण करे नहीं वळी आपेला पैसानो अधिक दुरुपयोग थवार्थी पापनो भाग आवे, तथा व्यसन रहित अने व्यसनी आ वचनो तुल्य सत्कार करवार्थी अव्यसनी पण अनादरवान् थाय माटे अही व्यसनीने अनधिकारी शास्त्रकर्ताए गण्यो. अव्यसनी पासे कार्य कराववा पहेला लौकिक त्यायथी खास भाव नकी करवो के ' अमुक भाव आपीशु ' जेथी भाविष्यमा विसवाद वधी क्लेशनो प्रसंग उपस्थित न थाय आम कर्मा पछी प्रतिमा तैयार थया पछी ते कारीगरने पवित्र वृत्तिथी अने सत्कार, सन्मान, विनय साथे उचित-योग्य वस्त्रालकार आदिनु दान करवु.

सव्यसनी माटे शास्त्रकर्ताए निषेध केम दर्शाव्यो ? तेनु कारण अही ग्रथकर्ता पोते ज करे छे

चित्तविनाशो नैव,

प्राय सजायते द्वयोरपि हि ॥

अस्मिन् व्यतिकर,

एष प्रतिषिद्धो धर्मतत्त्वज्ञै ॥ ७-४ ॥

मूलार्थ—आ प्रकारे वर्तवार्थी मंदिर बघावनार अने बांधनार बधेना चित्तमा खेद के क्लेश बहुधा निश्चयथी उत्पन्न थतो नथी, कारण के कन्याणकारी आवा धर्मकार्योमा धर्मतत्त्वज्ञोए चित्तविनाशनो सर्वथा निषेध कर्यो छे

अर्थात् क्लेश उद्भववार्थी धर्मनो नाश थाय छे

“ प्रतिष्ठाकारकनु वर्तन ”

स्पष्टीकरण—चित्तनी शान्ति अथवा प्रमत्तता माटे मंदिर बघावीए छता जो आदिर्मांज मनने ग्लानि थाय तो पछी मंदिर बघाववानु फल शु ? माटे मंदिर बांधनार अने बघावनारे जेम शान्ति सचवाय, क्लेश न उद्भवे तेम वर्तयु बघारे उचित गणाय आ माटे ज भगवान् हरिमद्रसूरिजी जणारे छे के ‘ चित्तविनाशो नैव ’ जे प्रमाणे मंदिर बघाववानी विधि तथा शुद्धि विगेरेनु स्वरूप आगळ कही गया ते प्रमाणे, तथा कारीगर माथे बघावनारे पहेंलाथी ज स्पष्ट भाव नक्षी करवा विगेरे जे व्यवहार कही गया ते प्रमाणे वर्तयार्थी कारीगर अने बघावनारने परस्पर अभिष्यमां लेबडदेबडमां बांधो पडतो नथी एटले घेलवा—चालवानु तथा क्लेशनु कारण कदापि उद्भवतु नथी उद्भवे नहीं कारण के शास्त्रकर्त्ता आ मंदिर बघाववारूप कार्यमां अने उपलक्ष्यथी धर्मना कार्यमां आपसमा ज्ञेश, खेद, परिताप, विवाद के ह्यघडो न थाय तेम वर्तयु एवो रास उपदेश अपें छे परमार्थ ए के—धर्मतत्त्वज्ञो आवा कार्यमां प्रथ मथी ज ‘ चित्तविनाश ’ ज्ञेशादिनो निषेध करे छ निदान ए के—जो धर्मकार्यमां क्लेश आदि उद्भवी चित्तनी अशान्ति थाय तो धर्मनो नाश थाय—धर्मप्राप्ति कदापि थाय नहीं

उपर “ आवा मदिर आदि कार्योमां वलेशादि न थाय तेम वर्तन करवु. ” आ प्रसग दर्शावी गया ए ज प्रसग उपर फरी अहीं जणावे छे

एष द्वयोरपि महान्,
विशिष्टकार्यप्रसाधकत्वेन ॥

सबंध इह क्षुण्ण,
न मिथः सन्त प्रशसन्ति ॥ ७-५ ॥

मूलार्थ—पूर्वे कहेल चित्तजन्य वलेशाभावरूप सयोग पांधनार अने बघावनार बन्नेने विशिष्ट कार्यनो सिद्धिकारक होवाथी महान् उत्तम सयोग कहेवाय, कारण के-मदिर पांधनार तथा बघावनार बन्नेने आपसमां यदि वलेशादि उद्भवे तो सजनो कदापि पण प्रशसा न करे.

“ स्पष्टीकरण ”

मदिर अने जिनबिबरूप कार्य प्रकरणमां कर्ता तथा करावनार बन्नेना चित्तना भग न थाय ए ज सयोग मलवो प्रशसनीय गणथो छे हेतु ए के-आवा सुदर सयोग खरेखर विशिष्ट अने उत्तम मदिर तथा जिनबिबरूप कार्यना फलने अपां शके छे, तेमज यदि आवा कार्योमां मांहोमांहे कारी गर तथा प्रेरकना चित्तो नाराज थाय, वलेशमय बने तो सजनो आ कार्यनी प्रशसा न करता केवल निंदा करे

अथवा घृणानी ननरे देखे छे, माटे अहाँ प्रथकर्ता जणावे छे के चित्तभग न थाय एवा सजोग मळवो दुर्गम छे तथा ते ज कार्यनो सिद्धिकारक थाय छे

आटलो विस्तृत निर्देश कर्षा पछी प्रथकर्ता ' जिनबिब ' बनाववामां प्रथम भावनी खास आवश्यकता अने ए ज प्रधान छे, एवो सुन्लो उल्लेख दर्शावे छे

यावन्त परितोषा ,

कारयितुस्तत्समुद्भवा केचित् ॥

तद्विभ्रकारणानीह,

तस्य तावन्ति तत्त्वेन ॥ ७-६ ॥

मूलार्थ—जे जे प्रकारना अने जेटला सतोष, प्रमत्तता विशेष सद्वगुणो करावनारने जिनबिबधी उत्पन्न थाय तेमांथी केटलाक सतोष परिणामो ते ज करानारने परमार्थधी जिनबिब कराववामां कारणभूत बने.

“ प्रतिष्ठाकारके भाव कनो राखवो ? ”

स्पष्टीकरण—जैन शास्त्रोए सर्व अनुष्ठानोमा मुख्यतया भाव हृदयोच्चास एकान्त पवित्रतम फलदायी मान्यो छे, कारण के “ जे जे क्षणमां आत्मा जेवा जेना परिणामोने धारण करे ते ते समयमां आत्मा शुभ अगर् अशुभ कर्मनो बंध करे छे. ” आम उपवेशमालामा कइ छे तेमज “ गच्छान्ते

क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः” “ कारण के पवित्र-
 तर क्रियाओं पर भाव विना फल आपती नहीं ” ए कथन
 कल्याणमंदिर स्तोत्रमा उपदेश्यु छे अतएव अहीं मंदिर
 अने जिनप्रतिमा अधिकारमा विधि तथा शुद्धिनी मुख्यता
 अने कारीगर साथे उचित प्रणसनीय, धर्मवृद्धि धाय तेषु
 वर्तन राखवानु कही गया, किंतु आ सर्व साधनो छतां
 जो भाव-हृदयनी परमपवित्रता आत्मोल्लास न होय तो ते
 साधनो कार्यजनक बने नहीं निदान ए के-सर्व साधनो
 साथे भाव पर मुख्य मान्यो छे आथी अहीं पर शास्त्र
 कर्ता दर्शावे छे के-जिनबिंब तथा जिनमंदिर बनावनारनो
 जेटला प्रमाणमां हृदयोद्वास प्रेम अने पवित्रतामय होय,
 आत्मा उद्वासमय होय अने ते पर बिंब तथा मंदिर
 पामेथी प्राप्त थयु होय अर्थात् तेनाथी उद्भव्यु-बन्धु होय,
 ते ज सतोष, प्रेम, पवित्रता आदि अनेक भावो पैकी अमुक
 भावो मंदिर तथा बिंब बनावनारने कराववामां परमार्थथी
 साधनभूत बने छे एटले मंदिरादिना प्रेमथी आविर्भूत
 पवित्र हृदयभावो भविक आत्माने मंदिर आदि कराववामां
 प्रेरणा करे छे. अतः प्रथमतया भाविकनु हृदय उपरोक्त
 भावोथी बराबर परिणत थयु जोइए. भावोनी सुवासनाथी
 सुवासित थवा पछी ज तेना सस्कारबलथी भविक आत्मा
 विधि शुद्धिसु रक्षण करवापूर्वक कारीगरो साथे योग्य
 वर्तन राखवा काळजी राखे ने मंदिर तथा बिंबजय सुष्ठु

फल पामी एकान्त कर्मनो वष करी शके एटले शास्त्रोक्त विधि बराबर पालन करे छे निदान ए ज के-मदिरादि कराववामां जेटली भावनी पवित्रता, विधिशुद्धता होय तेदलुज फल प्राप्त थाय

चित्तनो विनाश न थाय तेम वर्तवानु कष्टु तेनी ज पुष्टि माटे ग्रथकार फरीने अधिक दर्शावे छे

अप्रीतिरपि च तस्मिन्,

भगवति परमार्थनीतितो ज्ञेया ॥

सर्वापायनिमित्त

ज्ञेया पापा न कर्त्तव्या ॥ ७-७ ॥

मूलार्थ—कोइ पण कारणथी मदिर तथा विंष करा-वनार यदि कारीगर साथे अप्रीति करे तो परमार्थ न्यायथी ते अप्रीति जिनेश्वरदेन पर करी कहेवाय, कारण के कारण पर अप्रीति ते कार्य पर अप्रीति कहेवाय. अतएव सर्व अपा-योनु मूल अने पापीष्टा एवी अप्रीति न करवी ए ज उचित छे.

“ स्पष्टीकरण ”

कारण पर द्वेष-अप्रेम करवो ते कार्य पर अप्रेम क्यों कहेवाय एवो-न्याय छे भानो भावार्थ एवो छे के जेम घट

कारीगर मरल परिणामी, धर्मरुचि अने न्यायमार्गानुगामी अवश्य होवो जोइए एम जिनबिंब करावनारे खास ध्यान राखवु.

शिन्पी-हृदयगत अनेक प्रकारना सुदर मनोरथो युक्त एवा शिन्पकार पासे आ जिनबिंब करावयु ए वात उपर दर्शावी गया. हवे अहीं शिन्पी-हृदयगत अनेक मनोरथो कया अने केवा होय तेनु वर्णन करता ग्रथकार कहे छे.

अत्रावस्थात्रयगामिनो,

बुधैर्दोहृदाः समाख्याता ॥

वालाद्याश्चैता यत्त-

त्कीडनकादि देयमिति ॥७-९॥

मूलार्थ—अहीं जिनबिंब बनाववामां बुधजनोए जिनबिंबमां अवस्थात्रय आरोपवा माटे शिन्पीगत बाल, युवा अने मध्यम ए नामक अवस्थात्रयगामी चित्त सबधी मनोरथो कारणभूत मान्या छे, एटले शिन्पकारोने त्रय अवस्थोचित्त जे जे रमकडा विगरे उपकरणो जोइए ते तेनी प्रसन्नता माटे अवश्य अर्पण करवा.

“मूर्त्तिमा अमुक भावो केम लाववा ?”

स्पष्टीकरण—जिनप्रतिमा बनावनार बाल, युवा अने मध्यम वयस्क ए त्रय पैकी फोइ पण होय अथवा

ए त्रण अवस्थोचित सस्कारवान् होय, एटले आ मनुष्य पोतानी अवस्थोचित पदार्थ प्राप्तिथी आनद माने छे अगर् अवस्थोचित पदार्थ ग्रहण करवा उत्सुक बने छे, तेमत्र तेना चित्तमा-हृदयमा धारवार अवस्थोचित ख्यालो रम्या करे छे. आने ज शास्त्रकर्ता शिन्पी-हृदयगत मनोरय कहे छे अतएव प्रतिमा इप्सु जने आ कारीगरने सुश राखवा प्रतिमा बनावती वखते बालने रमकडा, युवकने खानपान अने मध्यमने वस्त्र, मान्य आदि जरूर 'देय' अर्पण करवा. आ पदार्थो अर्पवानु कारण एक तो शिन्पीना चित्तनी प्रसन्नता प्रकटाववा अने बीजु प्रतिमामा अवस्था-त्रयना भाव आविर्भूत करवा-उपसाववा. परमार्थ ए के-प्रतिमा करती वखते कारीगरनो जेरो ख्याल होय अने पासे जेवा योग्य साधनो पढ्या होय तेरो भाव प्रतिमाना आकारमा यथाकथांचित् उद्भवती शके-उतरी शके छे, परतु आ पदार्थो कारीगरने अर्पो तेना विकारो पुष्ट करवा एवो शास्त्रकर्तानो आशय नथी, किन्तु शिन्पकारनी त्रण अवस्था, अवस्थोचित मनोरथो निहाळी ते परथी उद्भवेल मूर्त्तिमा आकारविशेषद्वारा अवस्थात्रयनी भावना प्रति-मामां आरापवी अने आ भावना दृष्टाना हृदयमा आवि-र्भूत बने एतदर्थे शिन्पकोने ते ते पदार्थो अर्पवा, ए ज त्रयकर्तानो मुरप आशय छे आ परथी सिद्ध-स्वरूप वीतरागदेवनी मूर्त्ति बनाववामा शिन्पी-हृदयगत

मनोरथोनी पुष्टि शु कामनी ? एवी वास्तविक शका उपस्थित थाय खरी, कारण के प्रतिमानी अंदर बाल, यूवा, मध्यम ए अँवस्थात्रयजन्य भावो कांइ उपजाववा नथी, तेमज ते भावो बीतराग स्वरूप मूर्त्तिमां आविर्भूत करवा ए तो बीतरागभावनो ध्वस करवा जेवु गणाय. आ शका जो के मत्य छे अने ग्रथकर्तानो ए आशय पण नथी के शिल्पी-हृदयगत अवस्थोचित भावो प्रतिमामा पोषवा, किंतु शिल्पकारने प्रसन्न करी ते द्वारा प्रतिमामां हार्पितवदन, लावण्यता, यानावस्था, मनोहरता, आकर्षणता, पूर्ण-यौवनत्व, सौकुमार्य आदि भावो प्रकटे-उपसे अने ते परथी दृष्टाओ छद्मस्थ, केवलित्य अने सिद्धत्व ए अवस्था त्रयनी भावना जरुर प्राप्त करी शके आ हेतुधी कारीगरोने अवस्थोचित पदार्थो अर्पण करी सतोपवानु शास्त्रकर्ताए कष्टु अधिक गुण-लाभ माटे आम करवामां कांइ दोष कहेवाय नहीं

“अत करणनी पवित्रतावडे कारीगर पासे प्रतिमा करारवी” ए वात कही गया तेनी पुष्टि माटे ग्रथकार फरीने अहीं विशेष उपदेश आपे छे

यद्यस्य सत्कमनुचितामिह,

चित्ते तस्य तज्जामिह पुण्यम् ॥

भवतु शुभाशयकरणा-

दित्येतद् भावशुद्ध स्यात् ॥ ७-१० ॥

मूलार्थ—जिनबिंब करावनार जे धनथी कारीगर पासे विंब करावे ते धनमा पोते न जाणे तेवी रीते अनुचित धन आवी गद्य होय ते धन सयथी पुण्य तना मालिकने प्राप्त थाव, आ प्रमाणे विचार करे, आ प्रमाणे विचारो करवायी भावशुद्धि कडेवाय

“ केवा धनथी मूर्त्ति भरावरी ? ”

स्पष्टीकरण—न्यायोपार्जित धन अने पवित्र आशयथी जिनबिंब करावयु एम कद्य हतु त्या करावनारे जे धन एकत्र कर्युं होय अगर करे अने सर्व प्रकारे अन्यायप्राप्त धन न ज स्वीकारे तो पण अनुपयोग, प्रमाद, विस्मृति के विह्वलता आदि कारणीथी अथवा मुनिम, नोकर आदिना विश्वासे रहेवाथी अनुचित-अन्यायी कांश्क द्रव्य आधी जवानो समव रहे खरो, हवे जे धनथी जिनबिंब करावे तेमा ते धननो अमुक अश होय, एटले करावनार “ अहो ! धन्य माग्य ह्यु आजे आ चणदृष्टनष्ट धनथी जिनबिंब करावी ते धनने सफल करु छु मारु आ धन आजे सफल थयु मारो जन्म कृतार्थ थयो ” आ प्रकारे जरूर विचारो करे आथी जे धन अनुचित-अन्यायी आव्यु तेनो वास्तविक

रीत्याते पोते मालीक नयी अने न्यायवाह्य छे, तेनी मालिकीपणु अने फल-प्रार्थना पोते करवी ए तो सर्वथा अयोग्य ज कहैवाय तेमज शास्त्रनिपिद्ध वर्तन गणाय; माटे विन करावनारे ए भावना भाववी के-“ आ धनमां जे अन्यायी-अनुचित धननो अश होय तत् धनजन्य शुभ फल जेनु धन होय तेने ज ही अने मारा धननु शुभ फल मने मळो, परतु परकीय धननु फल हु इच्छतो नधी.” आवा विचारो करवापूर्वक कारीगरद्वारा मूर्ति कराववी आ प्रमाणे स्वहृदयमां भावना आविर्भूत करवी तेनु नाम शास्त्र-कर्ता अही भावशुद्धि उपदेशे छे आ परधी पोताने त्यां कोइनी थापण होय अने तेनो मालिक देहान्त थयो होय, कोइए शुभकार्यमां व्यय करवा पोताने त्यां राखेल होय, स्वकुटुंबमांथी आवेलु होय, व्यापारमां घराक पासेथी घर्मना नामे अधिक लीघु होय, एक वखत शुभखाते सरचवा अमुकनी पाठळ कष्टु होय, निधानमांथी मन्थु होय-आवु आवु अनेक धन होय अने ते धननु पोते स्वामीत्वपणु स्वीकारी तेनाथी विनविन आदि पवित्र कार्यो करी तेना फलनी पोते इच्छा करे, मँ कर्तु एवु माने, पोताने कृतकृत्य माने ए सर्व अनुचित अने न्यायवाह्य शास्त्रकार दशविं छे एटले जे धनमां अन्यायनो-अनुचितपणानो-परकीयत्वनो अशमात्र न होय किन्तु केवल न्यायी, स्वस्वामीत्ववाळु होय तेवा धनधी ज

जिनविंब आदि घर्मकृत्यो करवा ए ज शास्त्रानुसारी अने विद्युद्धतर छे.

जिनविंबनी प्रतिष्ठाकरण विधि अमे कहीशु एम सातमा षोडशक प्रकरणातर्गत द्वितीय श्लोकधी ग्रथकर्ता कही गया हता ते माटे अही ते सबघमां विशेष इकीकत दर्शावे छे

मन्त्रन्यासश्च तथा,

प्रणवनम.पूर्वक च तन्नाम ॥

मन्त्र. परमो ज्ञेयो,

मननत्राणे ह्यतो नियमात् ॥ ७-११ ॥

मूलार्थ—कर्तव्यपणे अभिष्ट एवा जिनविंबमां 'ॐ' अने 'नम' ए पदपूर्वक चोवीश जिनातर्गत कोइ पण नाम-रूप मन्त्र स्थापन करवो, कारण के 'मन' घातु मनन-त्राण-रक्षण अर्थमां होवाधी उपरोक्त नामरूप अवश्य ज्ञानादिनु रक्षण करे छे, माटे अही नाम-स्थापनरूप मन्त्र ए ज परम मन्त्र जाणवो

“ स्थापनाविधि-मन्त्रन्यास ”

स्पष्टीकरण—कारीगर पासे शास्त्रोक्त नियम प्रमाणे सुदर अने निपजाव्या पद्धी आचारनिष्ठ

आचार्यमहर्षिद्वारा शास्त्रदर्शित विधिधी अजनशलाका
 ज्या सुधी न करवामा आवे त्यां सुधी आ मनोहर पण
 जिनविंव पूजा, दर्शन अने आराधनीपण्ये स्वीकार्य नथी
 एम शास्त्रो कहे छे निदान ए के-अजनशलाका विनाना
 जिनविंव जो के जिनेश्वर देवनो आकार छे तो पण तेमां
 देवत्वनो आरोप, मत्रनी स्थापना अने चोवीश जिनेश्वरोना
 नाम पैकी अमुक नामनी स्थापनाशून्य होनाथी पूजा,
 दर्शन तथा आराधना करनार उचम भाविकना हृदयमां
 देवपणानी श्रद्धा, हृदयोच्छास, जिनगुरा अवमास, शास्त्र
 विशुद्धता, चमत्कारीत्व अने पूजा योग्य भावो आ
 जिनविंव उपजावी शकतु नथी, एटले तत् विंवजन्य लाभो
 अप्राप्य होवाथी अर्थशून्य ज गणाय, अतएव आ प्रमाणे
 जिनविंव निपजावी तेमां मत्रस्थापन अने अजनशलाकानी
 पवित्र विधि कर्तव्यतया अभीष्ट मानी छे, ए ज वातनी पुष्टि
 आचार्यथी आ श्लोकमां करे छे कर्तव्यपणे अभीष्ट अने शुद्ध
 निष्पन्न जिनविंवमां शीघ्र मननो न्यास-आरोप करवो
 अहीं मत्रो अनेक प्रकारना छे, एटले क्या मत्रनो आरोप
 इष्ट गणाय ? आनु समाधान ग्रथकर्ता स्वयं करे छे.
 ' मत्र ' शब्द ' मन ' धातु परथी वन्यो छे ' मनि ' ज्ञाने
 ' मन ' धातुनो ज्ञान अर्थ, तथा ' मन ' धातु घ्राण-रचण
 ए अर्थमां छे एटले ' मननात् घ्राणात् च मत्र ' -
 ज्ञेनाथी ज्ञाननो लाभ तथा रचण थाय तेमत्र परमार्थ एके-

अहीं जिनबिंबमां जे मंत्रनो आरोप करीए ते मंत्रथी “ आ जिनबिंब अमुक तीर्थकरनु अने तीर्थकरना चमत्कारिक गुणोनो जरूर मान करावनार, तेमज पापबुद्धिधी, ससारभयोधी अवरय बचावनार ” आदि गुणोनो अवरय एकान्त लाम थयो जोइए, अन्यथा ते मंत्र मुख्य फलनिघायी न गणाय आ हेतुधी शास्त्रकर्ता जणावे छे के-अहीं मंत्रन्याम ते ‘ ॐ ’ तथा ‘ नमः ’ पूर्वक अमुक नामस्थापनरूप प्रथम करवो, जेमके “ ॐ नमः ऋषभाय ” आ प्रमाणे नाम-स्थापन करवु. आ प्रमाणे स्थापन कर्या पछी पूजरु भवि आत्माने अमुक तीर्थकरनी आ मूर्ति छे, आ मूर्ति विधि मह अजनशलाकाकृत छे, शास्त्रीय विधिभय छे-आवा ख्यालो उपजाती तीर्थकरपणाना अनेक उदात्त गुणोनो भास करावी दर्शन-पूजन आदि कार्योमां उद्घासकारक अने पवित्र भाववर्द्धक अवरयमेव थाय छे अतएव उपरोक्त मंत्र सान्न्वयी मगुणी होमाथी स्वजन्य फलप्रापक बने छे, माटे ए ज मंत्र अहीं परममंत्र शास्त्रकर्ताए मान्यो अने तेनी ज स्थापना करवानो आदेश आप्यो, अर्थात् आ सिंघायना अन्य मंत्रो उक्त मंत्रना पुष्टिकारक मंत्रो अने गौण मंत्रो जाणवा.

अहीं पर्यंत शास्त्रकर्ताए ‘ जिनबिंब ’ भराववानी विधि तथा शुद्धि कही, अने ‘ जिनबिंब ’ भराववानो उपदेश आप्यो तेमज तेनी अजनशलाका करवानु जणाव्यु. हवे कोइ शक्ति-

विशिष्ट भविक आत्मा रत्न, सुवर्ण, हीरा, माणिक्य अगर पत्थानु तथा शक्ति चगरनो भावणी पापाण मृत्तिकानु बनावे तेमज कोइ न्हानु अथवा म्होडु जिनबिंब करावे, तो रत्न आदिनु जिनबिंब बनावे तेने अथवा पापाण विगेरेथी बनावे तेने आ वेमाथी विशिष्ट लाभ कोने थाय ? शु रत्ननु के म्होडु जिनबिंब करावे तेने विशेष लाभ थाय ? अगर मने तेथु जिनबिंब करावे पण भाव जेना अधिक सुदर अने पवित्रतर होय तेने विशेष लाभ थाय ? आचार्य भगवान् कहे छे के—भावनी विशिष्टता अने पवित्रता जेने होय तेने अधिक लाभ थाय, परंतु जिनबिंब म्होडु अथवा रत्न आदिथी बनावे तेथी कांइ विशेष लाभ थाय एवो एकान्त नियम नथी, ए ज बात ग्रथकर्ता स्पष्टतया जणावे छे.

बिंब महत्सुरूप,

कनकादिमय च खलु विशेष. ॥

नास्मात्फल विशिष्ट,

भवति तु तदिहाशयविशेषात् ॥७-१२॥

मूलार्थ—म्होटा प्रमाणवाळ अथवा सुदर मनोहारी अगर शक्तिविशेषथी कोइ रत्न, सुवर्ण आदि विशिष्ट प्रकारनु जिनबिंब करावे एटला मात्रथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं; किन्तु ज्यां भावनी विशिष्टता होय त्यां ज लाभनी अधिकता जाणवी अथवा भावनी मृत्त्यता छे.

“क्या विंध्यी वधु लाभ ?”

स्पष्टीकरण—शक्तिमान् होय तो कोइ सुवर्ण, रत्न, हीरा, माणिक्य सुदर कारीमरद्वारा अवयवपूर्ण मनोहारी जिनबिंब करावे त्यारे कोइ नृद्वत्प्रमाणमात्र जिनबिंब करावे हवे जेनी शक्ति न होय ते न्हानु अने पापाण अथवा मृतिकानु बिंब करावे, एटले जो म्होडु तथा हीरा आदिनु बिंब करावे तेने अधिक लाभ अने न्हानु तथा पापाणनु बिंब करावे तेने अन्य लाभ थाय एम मान्य होय तो श्रीमानो-शक्तिवानो ज अधिक लाभना भागी तथा गरिबो विचारा अन्य भागना भागी थइ शक्रे आम मानवाची तो पैसागालानो ज धर्म अने मोक्ष गणाय पवित्र धर्म मार्गमां आ न्वाय योग्य न कहेनाय अतएव शास्त्र-कर्ता कहे छे के—“ नास्मात् फल विशिष्ट ” म्होडु अगर रत्न आदिनु बिंब करावपायी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं, किन्तु “ भवति तु तदिहाशयविशेषात् ” आशय—भावनी अधिकता जेटला प्रमाणमा होय तेटला प्रमाणमा अधिक लाभ थाय. परमार्थ ए के—पोतानी शक्ति प्रमाणे न्हानु पापाण अगर माटीनु जिनबिंब मविक आत्मा भावनी अधिकतायी करावे, अने धनाढ्य भाव विना रत्न विगेरेयी म्होडु जिनबिंब करावे तो पहेलाने जरु शुभ लाभनी पण बीजा नम्बरवालाने अधिक लाभ थाय शुभ पुण्यना लाभालाभनी

मुख्य आधार अतः करणी शुभ वृत्तिश्चो पर ज राख्यो छे ए ज भावनी पुष्टि व्यवहार भाष्यमां आ प्रमाणे करी छे “ लक्षणजुक्ता पडिमा, पासाईआ समत्तलकारा ॥ पलहायइ जह व मण तह, णिज्जरमो वियाणाहि ” ॥ १ ॥ “ लक्षणो करी युक्त अने समस्त अलकार अलकृत एवी जिनप्रतिमा तथा जिनप्रासाद देखीने जेम जेम मन अधिक प्रसन्न थाय तेम तेम निर्जरा अधिक थाय एम जाणवु ” अर्ही मननी जेम जेम अधिक प्रसन्नता तेम तेम अधिक कर्मनिर्जरा थाय एम कथन करवानो सूत्रकारनो आशय छे, षट्त्वे भाव ज प्रधान छ एम जाणवु.

अत्र आशय विशेषथी लाभ विशेष थाय ए भाव जराख्यो, परन्तु आ भाव क्या प्रकारे वर्तन करवाथी पवित्र थाय ए वात अथकार दर्शावे छे

आगमतन्त्र सतत,

तद्बद्धभक्त्यादिलिगससिद्धः ॥

चेष्टाया तत्स्मृतिमान् ,

शस्त खल्वाशयविशेष ॥ ७-१३ ॥

मूलार्थ—आगमनिर्दिष्ट मात्र गमन करवु, आगमवानोनी पूजा-बहुमान आदि व्यापारो करवामां सतत प्रवृत्ति करवी, आगमने याद करवु, आ प्रमाणे वर्तवाथी आशयनी निश्चित पवित्रता थाय छे

“ स्पष्टीकरण ”

जे कांइ शुभ कार्यो आरमवा तेमां आगम-सिद्धान्त आझाने मुख्य करी वर्तन करवु परतु आगमनिपिद्ध मार्गे जवु गहीं, तथा आगमना अभ्यासी महर्षि मुनियोनी सेवा-भक्ति, पूजा, विनय, बहुमान आदि व्यापारो करवा, तेमज आगमना अभ्यास आदि क्रियामा प्रवृत्ति करवी, आगम-वचनोनु वारवार स्मरण करवु आ कार्यो करवाथी हृदयनी खरी पवित्रता थाय अने तेथी पवित्र आशयनु उत्थान थाय छे परमार्थ ए के-पवित्र हृदयने प्राप्त करवा उपरोक्त विधिपे वर्तन करवु. आ सिवाय अन्य मार्गे हृदयनी पवित्रता थाय नहीं अतएव ग्रथकर्ताए श्लोकना उत्तर भागमां ‘ खलु ’ ए पद आप्यु छे अर्थात् निश्चिततया आम वर्तवाथी आशय पवित्र थाय, तेमज आ प्रमाणे वर्तनारमां ज पवित्र आशय होय अने तेथी अन्यथा वर्तनार उची क्रिया-अनुष्ठानो करे तदपि हीन आशयवालो छे एम जाणवु

आ प्रमाणे आशय पवित्रता जणात्री एवा आशय विशेषपूर्वक ज जिनविंब करानवु शास्त्रोक्त विधि युक्त छे, ए वातनु समर्थन करवा ग्रथकार दर्शावे छे

एवंविधेन यद्विम्ब-

कारणं तद्वदन्ति समयविद्. ॥

लोकोत्तरमन्यदतो,

लौकिकमभ्युदयसार च ॥ ७-१४ ॥

मूलार्थ—दर्शित आशय पवित्रता सहित जे जिनबिंब करावीए तेने शास्त्रज्ञो लोकोत्तर कार्य कहे छे, अने आधी विपरीत रीते करावीए तेने लौकिक कार्य जणावे छे, परंतु आ लौकिक कार्य केवल मानप्रतिष्ठा आदि फलने ज अर्पण करे

“ स्पष्टीकरण ”

आशयनी पवित्रता माटे जे विधान कब्यु ते ज प्रमाणे जे जिनबिंबरूप कार्य थाय अने तेथी अन्यथा रीते जे कार्य याय, आ बन्ने कार्योंना नाम अने फलमां अवश्य भेद होय छे, ए ज वातने स्पष्ट करवा आ श्लोक ग्रथकारे कब्यो छे. एटले के लौकिक तथा लोकोत्तर ए प्रमाणे कार्यना बे विभागो थइ शके जे कार्यों शुद्ध छतां मात्र लौकिक फलने ज अर्पे ते लौकिक, अने जे कार्य लोकोत्तर आत्म-कल्याण, कर्मनिर्जरा फलने अर्पे ते लोकोत्तर. अहीं शास्त्र कार कहे छे के—जेओ प्रथम कही गया ए रीते आशय-पवित्रता साथे जिनबिंब करावे तो आ कार्यने शास्त्रज्ञो—तत्त्व-ज्ञानीयो लोकोत्तर कार्य एटले एकान्तकल्याण मोक्षफल-दायी कार्य कहे छे. ज्यारे ए विधि अने आशयपवित्रता विना जो करावे तो लौकिक कार्य मान, कीर्ति आदि फल

अर्पणार् कार्य दर्शावे छे अगर स्वर्गादि सपत्ति अर्पणार् कार्य कहे छे

“ लौकिक कार्य ” अभ्युदय फल आपनार धाय एम कहु पण लोकोत्तर कार्य क्या फलने आपे ए जणाव्यु नहीं माटे तेनो खुलासो हवे करे छे

लोकोत्तर तु निर्वाणसाधक,

परमफलमिहाश्रित्य ॥

अभ्युदयोऽपि हि परमो,

भवति त्वत्रानुपगेण ॥ ७-१५ ॥

मूलार्थ—अहीं उत्कृष्ट फल तराके लोकोत्तर फल-मोक्षफलनी प्राप्ति थाय ते, अने अभ्युदय फल एटले स्वर्ग-सपत्तनो लाभ थाय ते, परतु लोकोत्तर फलप्राप्तिना मध्यमां अवश्य स्वर्गादिक ऋद्विरूप गौण फल वो आनुपागिकपणे थाय ज

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकनो भावार्थ उपरना श्लोकना विवरणमां अमे कहीं आख्या छीए, मात्र विशेष एटलु ज के मुख्य अने गौण एम पे प्रकारे फलो थाय तेमां लोकोत्तर कार्यनु मुख्य फल मोक्षप्राप्ति यवी ते, तथा लौकिक कार्यनु मुख्य फल स्वर्गसपत्तिनो लाभ थाय ते लोकोत्तर कार्यमां साध्यतया

मुख्य जो के मोक्षफल छे तो पण आनुपगथी स्वर्गादिनी सपत्ति तो अग्रथ्य प्राप्त थाय ज; परतु ते कांइ साध्य नथी ज्यारे लौकिक कार्यमा साध्य तरीके स्वर्गादि सपत्ति ज मानी छे एटले तेथी मोक्षप्राप्ति थाय नहीं

प्रधान तथा आनुपगिक फलनु स्पष्टीकरण करवा ग्रथकर्ता दृष्टांत दर्शावे छे

कृषिकरण इव पलाल,
नियमादत्रानुपंगिकोऽभ्युदयः ॥
फलमिह धान्यात्राप्तिः,
परम निर्वाणमिव विन्वात् ॥ ७-१६ ॥

मूलार्थ — जेम खेडुतोने कृषिकर्मनु मुख्य फल धान्य प्राप्ति अने गौण फल ते घासप्राप्ति थाय छे तेम अहीं जिनबिंथी मुख्य फल मोक्षफल-मोक्षप्राप्ति अने स्वर्गसपत्तिनो लाभ घास तन्य आनुपगिक फल जाणवु

“ स्पष्टीकरण ^{परा फलने अ}
कृषिकर्म प्रणय स्त्री

मुख्य आनुपगिक फल माटे दृष्टांत-दार्ष्टान्तिकनु साम्यकरण आचार्यथी आ प्रमाणे अहीं घटावे छे कृषिकर्ममा जेम धान्यप्राप्ति ए मुख्य फल अने पलालप्राप्ति ए आनुपगिक फल मान्यु छे, तेम जिनबिंथ आदि

पवित्र अनुष्ठानोंमां मुख्य फल अपवर्गलाभ तथा आनुपगिक फल देवर्द्धि-प्राप्ति मानेल छे एटले के मुख्य साध्यभूत मोक्षनु लक्ष्य जे क्रियामां आविष्ट होय ते क्रियाने तत्त्वज्ञी लोकोत्तरक्रिया, अने जे क्रियामां आ फलनी उपेक्षा करी गौण फल देवर्द्धि आदिनु लक्ष्य होय ते क्रियाने लौकिक क्रिया कहे छे अहीं पलाल अने अभ्युदयफल तेमज धान्य अने अपवर्ग बन्ने मुख्य आनुपगिक फलनी यथार्थ साम्यता होवार्थी दृष्टांत-दार्ष्टान्तिकनी घटना बराबर सुघटित थाय छे. सार ए के-लौकिक क्रियाधी केवल अप्रधानफल प्राप्त थाय, ज्यारे लोकोत्तर अनुष्ठानधी प्रधान अप्रधान बन्ने फलोनी प्राप्ति थाय अप्रधानफल पण एवु लाभे के जेनाधी परिणामे अवश्यमेव प्रधान मोक्षफल थाय ज



(८) प्रतिष्ठाविधिषोडशकम्

गत षोडशक प्रकरणमा विस्तारथो ' जिनविषय ' करण विधि दर्शावी. ए रीते यद्योक्त विधिषुद्ध परम सुदर मत्रन्यामपूर्वक तैयार थयेल विषय मदिरमां सुप्रतिष्ठित कर्युं होय त्यारे ज साध्यसाधक बने, अन्यथा ते विषय आशातना अने हानीकर्ता ज थाय माटे तेनी तुरतमां ज प्रतिष्ठा करवी ए आवश्यक अने शास्त्रनिर्दिष्ट मार्ग कहेबाय अतएव सबधप्राप्त अष्टम षोडशक प्रकरणमां आचार्य भगवान् प्रतिष्ठाविधिनु कथन करे छे

निष्पन्नस्यैवं खलु,

जिनविषयोदिता प्रतिष्ठाशु ॥

दशदिवसाभ्यन्तरत.,

सा च त्रिविधा समासेन ॥ ८-१ ॥

मूलार्थ—उपर दर्शावेल विधि प्रमाणे तैयार थयेल ' जिनविषय ' नी आवश्यकमेव तुरतजमां एटले दश दिवसनी अदर प्रतिष्ठा करवी एम शास्त्रो कहे छे. आ प्रतिष्ठा शास्त्रमां सधेपथी त्रय प्रकारनी जणावी छे

“ स्पष्टीकरण ”

सातमा प्रकरणमां ' जिनविंश ' करणनी विस्तारधी जे विधि दर्शावी तदनुसार ' जिनविंश ' तैयार थया पछी तुरतज प्रथम कहेल विधिशुद्ध मदिरमां सुप्रतिष्ठित करवु एटले दश दिवसनी अदर ज प्रतिष्ठा जो थाय तो ते उचम अने शास्त्रोक्त प्रतिष्ठा गणाय, अर्थात् आ प्रतिष्ठा-कर्ता तथा कारयिता अने श्रीसघ स्वजनो सर्वने एकान्त कल्याण तथा सर्वतो प्रकारे उन्नतिभूत अवश्य बने दश दिवसनी अदर कहेवानो तात्पर्य ए के-ते उचम अबाध्य प्रतिष्ठा कहेवाय, चाकी मध्यम अने जघन्य प्रतिष्ठा जाणवी आधी ज श्लोकमां ' आशु ' ए पद आप्नु. श्लोकमां ' खलु ' ए पद वाक्यालकार माटे आपेल छे अथवा ' खलु ' शब्दनो ' ' एव ' अर्थ करवो. एटले दश दिवसमां ज प्रतिष्ठा करवी, परतु त्यारबाद थाय ते उचित न गणाय आ प्रतिष्ठा पण शास्त्रमां सचेपथी त्रण प्रकारनी दर्शावी छे अहीं प्रथकर्ता “ दश दिवसनी अदर प्रतिष्ठा करवी ” आटलु विधान करीने प्रतिष्ठाना प्रकारो तथा प्रतिष्ठानु स्वरूप आदिनु आगळ विस्तारधी वर्णन करे छे, परतु प्रथम प्रतिष्ठाविधि आचार्ये न कही तेनु कारण पचाशकना आठमा प्रकरणमा प्रथकर्ताए विस्तारधी प्रतिष्ठाविधि दर्शावी छे. अतएव अहीं तेनु कथन करवु ते ग्रय वधारवा जेवु गणाय.

अहीं प्रतिष्ठाविधिना स्वरूपनु दर्शन कराववु आवश्यक होवाधी पचाशकमाहेलु वर्णन अमे अत्र अवतारीए छीए

“ प्रतिष्ठाविधि ”

स्पष्टीकरण—उपर जणाव्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध ' जिनविधि ' तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पन्न मंदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमा प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां विराजमान करवु, परंतु ज्यां विधि स्थापन करवु होय एवा मंदिरनी आसपास अन्यमां अन्य (१००) सो हाथमां अस्थि, नांस, अशुचि आदि पदार्थो पहेलाना अगर पछीना पट्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् क्षेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्या विधि स्थापन करवु. तेमज ज्यां विधि पधराववु होय त्यां जमीननी अदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोनी तपास कर्या पछी ज बघाववु, अन्यथा ते मंदिर उपघातक अने अन्य समयमां विनाशी बने आथी मंदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थो पडे नहीं, गदकी कोइ करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए ए प्रमाणे क्षेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमंदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि पदार्थोवडे अत्यंत सुवासित करवु, सुगन्धमय करवु, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छे के निश्चययी सुगन्धमय करवु, जेथी दुर्गन्धना सस्कारो उडी जाय, उत्तम देवताथो प्रमन्न थाय, हृदय अने आनंद पामे, दिलनु आकर्षण थाय. लोकोमां

પ્રશ્નમા થાય ત્યારવાદ દશ દિગ્પાલો, ચાર લોરૂપાલોની સ્થાપના કરી તેની પૂજા-મન્માન આદિ કરવા, તેમજ ઘાકી અન્ય દેવતાઓની પણ પૂજા-સન્માન આદિ કરવા એટલે ઘલિ-ઘાકૂલ આદિ અર્પણ કરવા એ કેટલાકોની એવી દલીલ છે કે-દેવતાઓ અસયમી હોવાથી તેઓની પૂજા જા માટે કરવી ? કેમકે તેઓની પૂજા કરવાથી અસયમપણાનું પોષણ થાય છે જો કે આ દલીલ દેસ્વામી ઘર્ષી સુદર છે, તો પણ ભ્રમજનક હોવાથી આચાર્યશ્રી જા ભ્રમનું નિરસન આ પ્રમાણે કરે છે અહીં જે 'વિં' ની પ્રતિષ્ઠા કરી તે 'વિં' ના માલીક તીર્થંકરદેવ છે, અને તીર્થંકરદેવ દેવ, ઝસુર, વિદ્યાધર, મનુષ્ય, જાનવર આદિ સર્વ જીવોને પૂજ્ય-અભ્યર્ચનીય છે આથી જેમ રાજા ગાદીનશીન થાય ત્યારે સર્વનો ઉચિત મન્કાર કરી સર્વને સુશ રાખવામા આવે છે, સર્વ પ્રજાને હર્ષનું કારણ થાય છે તેમ તીર્થંકરદેવની મૂર્તિ પણ જ્યારે ગાદીનશીન થાય ત્યારે સર્વનો ઉચિત મન્કાર કરવો આવશ્યક છે, જેથી નિર્વિઘ્ન કાર્ય મમાત્ત થાય અતઃ અવિરતિ એવા દેવી-દેવતાઓની તે સમયે પૂજા કરવી એ કાઠ અઘટિત નથી કિન્તુ સુઘટિત જ છે, તથા દશ દિગ્પાલો, ચાર લોરૂપાલો સમ્યગ્દષ્ટિ અને મહર્દિક દેવતાઓ છે, અતઃપ્ર તેઓ આપણા સમાનધર્મા-માધર્મા ઘન્ધુ હોવાથી, ઘઠી મિલ્યા દષ્ટિ દેવતાઓ પણ દ્રવ્યથી સાધમિક ઘન્ધુ હોવાથી પ્રતિષ્ઠા

“ प्रतिष्ठाविधि ”

स्पष्टीकरण—उपर जणांच्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध ' जिनविष ' तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पन्न मंदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमा प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां विराजमान करवु; परंतु ज्यां विंघ स्थापन करवु होय एया मंदिरनी आसपास अल्पमां अल्प (१००) सो हाथमां अस्थि, मांस, अशुचि आदि पदार्थो पहेलाना अगर पछीना पड्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् क्षेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्या विंघ स्थापन करवु. तेमज ज्यां विंघ पधराववु होय त्यां जमीननी अदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोनी तपास कर्या पछी ज बघाववु, अन्यथा ते मंदिर उपघातक अने अल्प समयमां चिनाशी बने. आधी मंदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थो पडे नहीं, गदकी कोह करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए ए प्रमाणे क्षेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमंदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि पदार्थोवडे अत्यंत सुवासित करवु, सुगन्धमय करवु, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छे कें निश्चयथी सुगन्धमय करवु, जेथी दुर्गन्धना सस्कारो उडी जाय, उत्तम देवताओ प्रमत्त थाय, हृदय अने आत्मा आनंद पामे, दिल्लु आकर्षण थाय लोकोमां

પ્રશ્નમા થાય ત્યારવાદ દશ દિગ્પાલો, ચાર લોકપાલોની સ્થાપના કરી તેની પૂજા-સન્માન આદિ કરવા, તેમજ બાકી અન્ય દેવતાઓની પણ પૂજા-મન્માન આદિ કરવા એટલે ઘણી-ઘણી આદિ અર્પણ રૂઠ્ઠા અત્ર કેટલાકોની એવી દલીલ છે કે-દેવતાઓ અસયમી હોવાથી તેઓની પૂજા શા માટે કરવી ? કેમકે તેઓની પૂજા કરવાથી અસયમપણાનું પોષણ થાય છે જો કે આ દલીલ દરવાજમા ઘણી સુદર છે, તો પણ ભ્રમજનક હોવાથી આચાર્યશ્રી આ ભ્રમનું નિગ્મન આ પ્રમાણે કરે છે અહીં જે 'વિંદ' ની પ્રતિષ્ઠા થઈ તે 'વિંદ' ના માલિક તીર્થંકરદેવ છે, અને તીર્થંકરદેવ દેવ, અમુર, ત્રિધાધર, મનુષ્ય, જ્ઞાનર આદિ સર્વ જીવોને પૂજ્ય-અભ્યર્ચનીય છે આથી જેમ રાજા શાહીનશીન થાય ત્યારે સર્વનો ઉચિત સત્કાર કરી સર્વને સુશ રાખવામા આવે છે, સર્વ પ્રજાને હર્ષનું કારણ થાય છે તેમ તીર્થંકરદેવની મૂર્તિ પણ જ્યારે શાહીનશીન થાય ત્યારે સર્વનો ઉચિત મન્દાર કરવો આવશ્યક છે, જેથી નિર્વિગ્ન કાર્ય મમાસ થાય અત અનિરતિ એવા દેવી-દેવતાઓની તે મમયે પૂજા કરવી એ કાઠ અઘટિત નથી કિન્તુ સુઘટિત જ છે, તથા દશ દિગ્પાલો, ચાર લોકપાલો સમ્યગ્દષ્ટિ અને મહદ્દિક દેવતાઓ છે, અતઃપ્ર તેઓ આપણા મમાનઘર્મી-માધર્મી ઘન્ધુ હોવાથી, ઘઠી મિથ્યા-દષ્ટિ દેવતાઓ પણ દ્રવ્યથી સાધમિક ઘન્ધુ હોવાથી પ્રતિષ્ઠા

समये तेओनी पूजा करवी न्यायसगत ज छे उचित समये साधर्मिनो मकार न करजो, एना ममान अन्य अज्ञानता अथवा धर्मतत्पनु अनादरपणु क्यु कहवाय ? ए रीते देवताओनो मत्कार कर्या पछी चद्र, नक्षत्र, ग्रहादिकना शुभयोगमा प्रतिमा स्थापन उचित स्थल पर मगलमय गायनादिपूर्वक चदनादि पदार्थो मह मूर्तिने पधराववी, अने प्रतिष्ठाकल्पमा वर्णविल सुगन्धी द्रव्यमिश्रित जलधी मूर्तिने पखाली शुद्ध करवी जेथी मूर्ति प्रतिष्ठा योग्य थाय, तेमज निनमूर्तिनी समिपे चार दिशाओमा चादी, सुवर्ण, रत्न, पुष्प आदि पदार्थोबडे भरेला अथवा युक्त चार मगलकुभो स्थापन करवा आ कुभो पण हाथधी कातेल अने चार शरमाला सुतरधी मुग्ध बाधीने स्थापना, एटले कन्यासुतरधी मुख बाधीने स्थापन करवा, तयारपछी धी अन गुडधी भरेला मगलदीपको स्थापवा, तथा खाजा विगेरे मनोहर खाद्य पदार्थो धरवा, अखड शेरडीना साठा, केळ, जमारापोपण, चदन अने स्वस्तिरु विगेरे करना, ऋद्धि वृद्धि नामनी औषधियोए फरीने सहित अनेरु मगलकरुणो मृकजा पछी प्रथम दिवसे सुगधी गघयुक्त एवा चदनधी मूर्तिने निलेपन करवु अने सौभाग्यवती तथा उत्तम प्रशस्त वेश अलंकारपती चार अथवा अधिक स्त्रीयोए मूर्तिने पॅ विलेपन-पूजा आदि करवी फलो, वस्त्रो, सुवर्ण, बनी शुकें तो

उत्कृष्ट पूजा करवी तथा शक्ति प्रमाणे अनेकविध बलियो, अनेकविध सुगंधो, अनेकविध वृसुभो, अनेकविध सुरामो-चूर्णो, अनेक प्रकारनी रचनाओ, नाट्यो-गायनोवडे महोत्सव करवो, एटले अष्टाडमहोत्सव, शान्तिस्नात्र, त्रिभिध रचनाओ शक्ति अनुमात्र अवश्य करवी त्यासपछी मूर्ति अग्र चैत्यवन्दन करी प्रार्थमान स्तुतिरूप स्तुति करवी, तेमज विघ्नशान्ति जयें शासन देवतानो एक 'लोगस्म'नो कायोत्सर्ग करवो, इष्ट गुरुदेवनु स्मरण करवु आटलु कया पछी प्रतिष्ठाप्य जिनत्रिभ अने प्रतिष्ठा करनारनी पूजा करी शुभ लग्न शुहूर्त्तमा पंचपरमेष्ठी नमस्कारमंत्रनु स्मरणपूर्वक अथवा मंगलान्तरपूर्वक ते जिनत्रिभनी प्रतिष्ठा करवी आ रीते प्रतिष्ठा कर्या पछी प्रतिष्ठित चिन्नी पुष्प आदिथी पूजा करी चैत्यवदन करवु, अने उपसर्ग नाश माटे करी शासनदेवतानो कायोत्सर्ग करवो वम आटली त्रिभि कर्या पछी आ प्रतिष्ठाविधि पूर्ण थाय छे, माटे अहीं ममाप्ति करवी अर्थात् देवताओने निर्मजन करवा, तेमज हृदयनी स्थिरता थाय तेम अने प्रतिष्ठा स्थिर बने तेमो आशिर्वादरूप प्रतिमा अग्रे निम्न लिखित मंगलमय गाथानो पाठ करवो —

जह सिद्धाण पतिट्टा तिलोगचूडामणिम्मि

सिद्धिपदे । आचटसूरिय तह होउ इमा

सुप्पतिट्ट ति ॥ १ ॥

भगवतनु शामन र्ते छे एटले शामनाधीश्वर महावीर देवनी मूर्ति पधरायीए, तेमज पार्श्वनाथ प्रभुना शामन वखते तेमनी पधरायीए ए रीते आ भरतक्षेत्रमा चतुर्विंशति जिनेश्वरो पैकी जे तीर्थंकरनु शामन होय अने ते तीर्थंकरनी मूर्ति पधरावीये ते मर्व व्यक्तिप्रतिष्ठा जाणवी आ परधी जे ऋाले अन्य जिनेश्वरनु शामन चालु होय अने अन्य तीर्थंकरनी मूर्ति स्थापन करवी आ प्रतिष्ठा मध्यम अर्थात् क्षेत्रप्रतिष्ठान्त र्गत जाणवी वर्तमानमा जेम महावीरदेवनु शासन विद्यमान छता पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ त्रिगेरे कोड पण प्रभुनी मूर्ति स्थापन धाय छे, अतएव आ प्रतिष्ठा क्षेत्रप्रतिष्ठा कहेनाय, किन्तु आद्य प्रतिष्ठा न गणाय एम सिद्ध थइ चूष्यु.

हवे ' क्षेत्रारय ' नामे द्वितीय प्रतिष्ठानु स्वरूप जणाव छे

ऋषभाद्याना तु तथा,

सर्वेषामेव मध्यमा ज्ञेया ॥

सप्तत्याधिकशतस्य तु,

चरमेह महाप्रतिष्ठेति ॥ ८-३ ॥

मूलार्थ—ऋषभदेव आदि तथा चतुर्विंशति जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा ते मध्यम प्रतिष्ठा जाणवी, अने उत्कृष्टी एक सो ने सिचरे (१७०) जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा तेनु नाम अतिम महाप्रतिष्ठा जाणवी

“ क्षेत्रप्रतिष्ठा ”

स्पष्टीकरण-क्षेत्रप्रतिष्ठा-आदिनाथ विगेरे चोरीश जिनेश्वरोनी मूर्त्तिओ पधरावी ते आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ता मध्यम प्रतिष्ठा कह छे अहीं प्रथकार “ऋषभाद्याना तु” ए पदधी रूपमदेव विगेर कोइ पण जिनेश्वरनी अने “ तथा सर्वंपामेव ” चोरीशेनी प्रतिष्ठा करवी तेनु नाम मध्यम प्रतिष्ठा कह छे टीकाकार “ऋषभाद्याना सर्वंपा” ए वने पदोने विशेष्य विशेषण भाय दर्शाई रूपमदेव आदि चोरीशे तीर्थंश्वरोनी प्रतिष्ठाने क्षेत्रप्रतिष्ठा जणावे छे टीकाकारना आशयधी केवल जे समये अन्य प्रभुनु शासन र्ततु होय त समये अन्य कोइ जिनेश्वरनी मूर्त्ति पधरावीए, आ प्रतिष्ठाने कइ प्रतिष्ठामा गणवी ए शूका उपस्थित बाय छे, काण के जे समये जेनु शासन होय ते समये तेनी मूर्त्तिनी स्थापना करवी तेनु नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा कही गया छे अतएव आ शूकाना निरसन माटे “ऋषभाद्याना” अने “सर्वंपामेव” ए पदोने स्वतंत्र राखी अर्थ करीए तो धरावर सुघटित बाय आज आशयने हृदयमा धारी मूलकर्ताए “तु अने तथा” पदो आन्या होय एवु अनुमान आपणे केम न करीए? आम छता एक शूका तो अग्रय विचारबोने उपस्थित थशे आ शूका ए ज के-ज्यारे आदिनाथ, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे एक ज मूर्त्तिनी स्थापना करीए अने तेने क्षेत्रप्रतिष्ठा मानीये, तथा जे समये जे भगवाननु शासन होय ते भगवाननी मूर्त्ति पधरावीए तेनु नाम व्यक्ति-

प्रतिष्ठा मानीए त्यारे वच्चे प्रतिष्ठामा भेद न होनाची अलग शा माटे रूही ? आनो उत्तर एटलो ज के व्यक्ति-प्रतिष्ठामा केवल वर्तमान शामननायक सिवायनी प्रतिष्ठा न थाय ज्यारे क्षेत्रप्रतिष्ठामा शासननायक सिवाय कोड पण तीर्थकर अने चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्ति पधरावी शकाय परमार्थ ए के-अमुरु व्यक्तिनी अपेक्षाए व्यक्ति प्रतिष्ठा अने भरत अथवा ऐरावत क्षेत्रनी अपेक्षाए क्षेत्र प्रतिष्ठा जाणनी आ वे प्रतिष्ठानु स्वरूप कद्या पछी ग्रथकत्ता अर्थश्लोकी "महाप्रतिष्ठा " लु स्वरूप कहे छे.

‘ महाप्रतिष्ठा ’

महाविदेह, भरत अने ऐरावत आ सर्व क्षेत्रोना मली एक मो सिचेर १७० तीर्थकरोनी मूर्तिओ पधराववी, आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ताओ चरम-महाप्रतिष्ठा एवु नाम अपे छे, अर्थात् आ त्रणे प्रतिष्ठाओनी जे जे सज्ञाओ छे तेवो ज तेनो गर्भिताशय छे निदान ए के-महाप्रतिष्ठामा सर्व क्षेत्रोना तीर्थकरोनी मूर्तिओ पधरावाय माटे महाप्रतिष्ठा

ए रीते त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी आ त्रणे प्रकारनी प्रतिष्ठा सातमा षोडशकमा दशविल उत्तम पवित्र आशय तथा वर्तनवान् भाविक ग्रहस्थे उत्तम कारीगर पासे विधि शुद्ध चनावेल जिनद्विचोनी ज थाय पाठकीने आ वात फरी जणाववानी अमे जरुर देखता नथी, आटलो निर्देश कर्या पछी अहीं कोइ शका उपस्थित करे के—

“ प्रतिष्ठा कोनी ? ”

आ प्रतिष्ठा कोनी ? अष्टकर्मनो नाश करी मोक्षे गयेल एवा परमेश्वरनी आ प्रतिष्ठा कराय छे अर्थात् बनावेल जिनत्रिंशमा ते परमात्माने अमे स्थापीए छीए, एम जो कहो तो आ उत्तर केवल माटीनी पोली भित जेवो छे, कारण के जे परमात्मा मोक्षमा पिराजे छे, जेओए आठ कर्मनो नाश करी समार दूर कर्पो छे तेओ गमे तेमा त्रिंशष्ट मत्रोना अनेक सस्कार करवा छता अर्हा उत्तरी शकता नथी. यदि मत्रोना सस्कारथी तेओ आवता होय तो तेओ मुक्त-सिद्ध थया छे ए कथन भ्रममूलक गणाय सिद्ध तो ए ज कहवाय के जेओ करीने अर्हीं आवे नहीं आ हेतुथी “ सिद्धनी प्रतिष्ठा ” आ उत्तर भ्रमनाशक न गणाय अतएव यदि एम कहो के-समारवर्ती कौइ देवजातिमा रहे-लनी प्रतिष्ठा करीए छीए, तो आ उत्तर पण केवल युक्ति-खडित छे हेतु ए के-ससागवर्ती कौइ देवजाति विशेष सर्वदा एक ज म्यान पर स्थित बइ शकती नथी ए तो समारी होमाथी अन्यत्र अन्यत्र गमनागमन अवश्य करे, एटले मत्रादि सम्कारविशेषद्वारा आ समारवर्ती देवजाति विशेषनी स्थापना ए तो नितान्त अघटित छे, धारो के-कदाचित् कौइ ममये आ देवजाति विशेष अर्हीं आवे छे अर्थात् मूर्त्तिमा पोतानो सद्भाव दयावि एतायन् मात्रधी काइ प्रतिष्ठानी सिद्धि न गणाय, प्रतिष्ठसिद्धि तो त्यारे ज

कहेवाय के जे देवतत्त्व सर्वदा मूर्त्तिमा विद्यमान थाय-
आ शकाना निरमन माटे आचार्य भगवत जणावे छे के-
विशिष्ट आत्मभायनी ज प्रतिष्ठा थाय छे किन्तु मुक्त अथवा
समारस्थ देवजाति विशेषनी मूर्त्तिमा स्थापना अमे जणावता
नथी, परतु मूर्त्तिमां विशिष्ट आत्मभावनो ज आरोप करवो तेने
अमे प्रतिष्ठा कहीए छीए एदले उपरोक्त शका अर्थवगरनी
ज सिद्ध थाय छे, ए ज भायनु दर्शन करावया आचार्यश्री
कथन करे छे

भवति च खलु प्रतिष्ठा,

निजभावस्यैव देवतोद्देशात् ॥

स्वात्मन्येव पर यत्,

स्थापनमिह वचननीत्योच्चै ॥ ८-४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठित मुख्य देवना उद्देशधी देवविषयक
आत्मिक भायनी ज स्व-आत्मामां स्थापना करवी एदले
के-आत्मामा परमात्मभावनो पूर्ण ख्याल करवो तेनु ज
नाम अही आगमग्रचनथी उच्च-अतिशय मुख्य प्रतिष्ठा कही
छे, अने जिनविंशमां तो देवविषयक आत्मीयभायनो आरोप
करवो तेनु नाम बाह्य औपचारिक प्रतिष्ठा कही छे

“ आत्मप्रतिष्ठा ”

स्पष्टीकरण—शास्त्रमा बाह्य अने आभ्यन्तर वे

प्रतिष्ठा कही છે પરમાર્થ એ કે-उपरोक्त ध्यान विना आ प्रतिष्ठा अप्राप्य कही છે

“ आत्मामा परमात्मपणु केम धाय ? ”

अर्हा पाठशेने शका अवश्य धरो के मुख्य परमात्मा अनंतगुणविशिष्ट परम ज्योतिरूप છે, અને प्रतिष्ठाकर्ता एक समारी पुरुष છે, તે यदि परमात्मगुणनु ध्यान कर तो एकाद गुणनु ध्यान करी शके ते पण मात्र विचारपणे, परंतु अनुभवरूप तो नहीं ज परमात्मगुणनो अनुभव तो त्वारज थाय क जो परमात्मपणु प्राप्त थाय. हय परमात्माना एकाद गुणनु ध्यान करवायी पूर्ण परमात्मस्वरूप साथे प्रतिष्ठाकर्तानी तन्मयता अने वर्तना आत्मामा परमात्मपणानी प्रतिष्ठा मानवी ए मुक्तिवी अग्राह्य विषय છે, एटले स्वात्माना परमात्माना प्रतिष्ठा करवी ए नितान्त अघटित ज गिद्ध थाय છે आ प्रभु समाधान उपाध्यायजीए स्वटीकामा आ प्रमाणे कयुं છે शास्त्रकर्ता स्व-आत्मामा परमात्माना प्रतिष्ठा करवानो उपदेश “यच्च न नीत्योचैः ” ए पदवी करे છે, एटले के-यचनानुष्ठानयडे प्रतिष्ठा करवातुं दर्शावे છે शास्त्रकारनी आज्ञा लक्ष्यमां राखी जे क्रिया थाय तेने शास्त्रकर्ताए यचनानुष्ठान कयु છે अर्ही

१ जो पुण जिणगुणचेईगुणविहाणेण वदण गुणइ । वयणाणु
 द्वाणमिण चरित्तिणो होइ तियमेण ॥१॥ चैश्यवदणभाम० भा०
 ॥११॥ जे कोइ वैद्यवदनसूत्रा विधायके जिउ तयोनी वदता परे
 तेनु ताम वचनाउष्ठा वहुं आ अनुष्ठा तस्यमीने अवश्य होय

वचनानुष्ठान ए पदनी पूर्वोक्त व्याख्या प्रमाणे जेओ
 शास्त्राज्ञा प्रमाणे वर्तन करे, प्रत्येक क्रियामा शास्त्रनु ज जेओ
 अलवन करे, परमात्मपणु प्राप्त करवा वारवार अभ्यास
 करे, परमात्माना प्रत्येक गुणोनु स्मरण करी तेनु ध्यान
 कर, एना निर्मल आत्मामा ज आ परमात्मभाजनी स्थापना
 थइ शके उधुमा ए ज आत्मा परमात्मस्वरूपनी माये तन्मयता
 करी शके छे, एटले के-जेम विदग्ध कामी यूजक कोइ
 लावण्यमौभाग्य रूपकलासपन्न ललनामा आसक्त क्या
 पछी तेनो ज अहर्निश विचार करे छे, तेने म्ग्रहस्तगत
 करवा सयोगो ग्बोळे छे, तेमा विविध गुणो स्वदृष्टि निहाळे
 छे अने तेथी तं विलासी पुरुषना हृदयमा, चक्षुमा, छायामा,
 शब्दमा ते ज ललनानी मूर्ति आळेखाय छे, निद्रा के तद्रा,
 स्वप्न के जागृतावस्थामा तेने ज देखे छे अहीं आ कामी
 आ स्थितिना लीधे काइ पुरुष मटी स्त्रीरूप बनतो नथी,
 तेमज स्त्रीना गुणोनो यथावत् अनुभव के वेदन ते करतो नथी;
 तथापि तेना रागथी तन्मयतानो तो जरुर ते अनुभव करे
 छे अने आ अनुभवना परिणामे कामी स्वहृदयमा ते लल
 नानी मूर्तिनु अपूर्व स्वरूप खडु करी रातदिन तेनी प्राप्तिनी
 लालमार्थी शूर्या करे छे आ वातनो अनुभव पाठरीने मम-
 जापवा माटे अमारे वधारे प्रयास करवानी आवश्यकता नथी
 ए ज रीते वचनानुष्ठान प्रमाणे वर्तनार परमात्मभाजनु
 अपूर्व ध्यान, तेनी तन्मयता अने परमात्माना एकाद

गुणना स्मरण मात्रथी स्व-आत्मामा परमात्मानो आरोप
 अथवा तो परमात्मानु चित्र केम न खड्डु करी शके ? अवश्य
 करी शके आथी ज उपाध्यायजी उपरोक्त शकाना समाधानमा
 जणावे छे के-प्रतिष्ठित देवना एकाद मुरय गुणनु ध्यान कर-
 वार्थी निचक्षण आत्मा स्वात्मामा देवना सर्व गुणोनो आरोप
 करी "हु पण आ सर्व गुणवान् परमात्म स्वरूप छु, परमात्मा
 अने मदीय आत्मामा किंचित् पण विपमता नथी, जे गुणो
 परमात्मामा छे ते ज गुणो मारा आत्मामा तिरोभाररूपे रखा
 छे, यदि त ज गुणो आभिर्भावेने पामे तो हु अने परमात्मामा
 भेद रह नही " आ स्थितिनो अनुभव करी शके छे परि-
 णामे परमात्मानी स्थापना यथावत् स्वात्मामा उचनानुष्ठान-
 कारी अवश्य करी शके छे अत्र महर्षिओ ध्याता अन्त-
 रात्मा, ध्येय परमात्मा अने अन्तरात्मानी परमात्मा साथे
 ऐक्यता ने ध्यान-आ त्रिपुटीनो सयोग थया पछी अतरात्मा
 पोतानामा परमात्मभावनी प्राप्ति अथवा प्र-
 भाग्यवान् थाय छे, एम खुल्लु जणावे छे
 टिङ्गमा जेम दृष्टानु तद्वत्
 निर्मल अन्तरात्मरूप
 पण आभिर्भूत थाय छे
 एक सुदर दृष्टान्त पण
 अमरित्वमुपजायते " "

जेम अमरीभावने प्राप्त थ

प्रकरणमें परमात्मभावको अनुभव क्यों आत्मा केवी स्थितिमें करी शके तेनी उल्लेख आ प्रमाणे करे छै—जीतेन्द्रिय, धीर, प्रशान्त, निश्चलवृत्ति, दृढासनस्थित, नामिकाणा अग्रभागे स्वदृष्टिने टेकावनार एवो योगी तथा ध्यानना धारावेगधी पौद्गलिक भावमाधी मनको रोध करनार, प्रसन्न, अप्रमादी पुरुष चिदानन्द सगधी अमृतरमनी अपूर्व स्वाद कर छे आ सर्व कथनको कथितार्थ एटलो ज के प्रतिष्ठा करनार समारस्य पुरुष उता परमात्म सगधी एक अथवा अनेक गुणोनु स्मरण, चित्तवन अने ध्यानद्वारा तन्मय धवाधी नितान्ततया स्वात्मा परमात्माना प्रतिबिम्बने अवतारी शके ए नि.सशय छे, अरे ! युक्ति अने प्रमाणधी अखडित छे आ भावार्थ “वचननीत्योच्चै ” ए पद साथे ग्रथकार आपल “उच्चै.” पद परधी प्राप्त धाय छे, एम उपाध्यायजी कहे छे

१ ध्याता ध्येय तथा ध्यान त्रय तस्यैकता गतम् । मुनेरन-
न्यचित्तस्य तस्य दु र्य न विशते ॥ १ ॥ ध्यातान्तरात्मा ध्येयस्तु
परमात्मा प्रकीर्तित । ध्यान त्रैकाप्रसविति समापत्तिस्तदेकता
॥ २ ॥ मणौ निम्नप्रतिच्छाया समापत्ति परात्मन । क्षीण-
वृत्तौ भवेद् ध्यानान्तगतमनि निर्मले ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियस्य
धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मन । मुखासनस्य नामाग्रन्यस्तने यस्य
योगिन ॥ ६ ॥ रूढनाशमनोवृत्तेर्धारणा धारधारयान् । प्रम-
त्तस्याप्रमत्तस्य चिदानन्दमुघालिह ॥७॥ ज्ञानसार, अष्टक ३० ॥

आ प्रमाणे आभ्यन्तरप्रतिष्ठा सत्रधीनो विचार आपणे अहीं कर्यो, कारण के प्रतिष्ठाकर्तानि आभ्यन्तरप्रतिष्ठानु तच्च पाम्या वगर बाह्यप्रतिष्ठा करवाने अनधिकारी गण्यो छे, एटले प्रथम प्रतिष्ठाकर्ता स्वात्मामा परमात्मप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्यप्रतिष्ठा करी शके, अने ते ज बाह्यप्रतिष्ठा अन्यने पूजाफलदात्री बने, अतएव अहीं हचे बाह्यप्रतिष्ठानो विचार करवो अत्यावश्यक गणाय

“ बाह्यप्रतिष्ठानी उपयोगिता ”

बाह्य प्रतिष्ठानो मुख्य अर्थ एटलो ज के-पूर्वोक्त प्रकारे विधिशुद्ध अने उत्तम कारीगरनिर्मित जिनविंशमा परमात्म-भावनो आरोप करयो अर्थात् परमात्मानी तेमा स्थापना करवी अत्रे पाठके पहेला शका करेल हती के-मूर्त्ति पापा-णनी अने परमात्मा क्षीणकर्मा ज्योतिस्वरूप सिद्धस्थानस्थित एटले मन्त्रादिप्रतिष्ठित सस्कारद्वारा तेनो आरोप मूर्त्तिमा कोइ प्रकारे थड शके नहीं, तथा थाय तो सिद्धपणु न घटे अहीं आ शकानु निरसन आ प्रमाणे जाणवु

प्रथम तो शास्त्रमा जेवा अवयवो, आकार, प्रमाण तथा जिनमूर्त्तिनु वर्णन कर्युं छे तेमा ज आकारमय जिनमूर्त्ति निर्माण करी, एटले जेना दर्शनमात्रथी दृष्टाना हृदयमा एनाएक आ जिनमूर्त्ति छे अने जिनेश्वरना शरीरतुल्य आका-रवान् आ प्रतिमा छे एवो सचोट भाम थाय त्यारवाद आ

निनमूर्त्तिमा पूर्वे दशविल गुणवान् प्रतिष्ठा करता स्वात्मामा प्रतिभाममान् परमामानो उपचारधी आरोप करे, अर्थात् पोतानो परमात्म सवधी उच्च आशय तेमा स्थाप, हृदयस्थ परमात्म मूर्त्ति अने बाह्य पाषाणस्थ जिनआकारनी तुल्यता करी विचार कर, भावना करे के-आवा आसन पर विराजित परमात्माए सिद्धम्यान प्राप्त कर्युं, मूर्त्तिमा जे शान्तिरम, निरिक्कारदृष्टि, अपूर्व सौम्यता, अद्भुत वैराग्य, अपूर्व त्याग, आश्चर्यकारी ध्यान, चमत्कारी तेज, दिव्य प्रसन्नता, अलौकिक योग आदि भावोनी छाया दृष्टिगत थाय छे, तेनाधी अनतगुणविशिष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मामा ते ते भावोनी योगीओ माक्षात्कार करे छे, आ मूर्त्ति तो मात्र ते ते गुणोनु ध्यान करवानु पगधीयु, केवल एक बाह्य साधन छे प्रतिष्ठा-र्त्ता ज्यारे मन्त्रादि सस्कारोधी आ भावनी ते मूर्त्तिमा उपचार करे छे, एटले अन्य धर्मी मनुष्यने आ मूर्त्ति ध्याननु साधन, गुणभावना करवानु स्थान, जिनत्वपणानो ग्याल करावनार अने विविध पूजानु फल आपनार बने छे, कारण के प्रामाणिक गुणवान् अने विशिष्ट धर्मीजन ज्यारे पोतानो अपूर्व सद्भाव तेमा स्थापन करे त्यारे अन्य सामान्य जनो पूजा विगैरे कायोमा अवश्य प्रवृत्ति करे छे

छेपटे परिणामे ते ते लोको पूजानु अद्भुत फल प्राप्त करे छे आ रीते प्रतिष्ठाकर्त्ता स्वात्मगत परमात्मभावनी बाह्य

कही, पण अन्य प्रतिष्ठानो निषेध कर्षो तेनु शु कारण ?
आ शकानु निरसन ग्रथकर्ता आ प्रमाणे जणावे छे.

वीजमिद परम—

यत्परमाया एव समरसापत्ते ॥

स्थाप्येन तदपि मुग्या,

हन्तेपैवेति विज्ञेया ॥ ८-५ ॥

मूलार्थ—मुग्य टवना उद्देशधी स्वात्मामा निज
भावनी प्रतिष्ठा करवी ते ज प्रतिष्ठा परम—उत्कृष्ट ममरस-
मुग्य देवतुल्य भावप्राप्तिनु परम कारण एटले वीजभूत मानेल
छे, अतएव बहिर्वर्ती मूर्त्तिद्वाराए पण ते ज आत्मिक भावनु
पोषण थाय छे अने तेमा उपचारधी निजभावनो ज आरोप
करीए छीए माटे परमार्थधी ए ज प्रतिष्ठा मुग्य जाणवी

“ स्पष्टीकरण ”

स्वात्मा अने परमात्मा आत्मत्वभावरूपण अने गुण-
रूपेण समान ज छे, केवल परमात्मा ए शुद्ध-निदोष काचन
तुल्य शुद्ध स्वरूप छे ज्यारे आत्मा मलीन-माटीमिश्रित
काचन तुल्य अशुद्ध स्वरूप छे हवे स्वात्मा परमात्मपणु
प्राप्त करवाने परमात्मभावनो विचार, तेनु ध्यान, पूजन,
स्मरण करे तो ज परमात्मा थाय आ ध्यान, विचार तथा
पूजन आदि परमात्माकारनु अवतरण विना न ज बने,

एटले मुरयत* स्वहृदयमा परमात्मानो आभाम करवो अने
 पछी ते आभासने मूर्त्तिमा उतारयो-आरोप करवो आ
 आरोपने महर्षिओए वे विभागमा विभक्त कर्यो छे प्रथम तो
 स्वात्मामा परमात्मानु बराबर ध्यान करवु ते मुख्य अने
 बीजो बाह्यमूर्त्तिरूपे खडो करवो ते गौण आने ज शास्त्रक-
 र्ताए प्रतिष्ठा एरी सजा अर्पी छे परमात्मानु ध्यान करी
 आत्मामा पूर्ण परम शान्तिरम प्राप्त करवो ते ज परमात्मपू-
 जननु अलौकिक फल मान्यु छे, एटले अतरमा परमात्मचि-
 त्तनद्वारा निजभायनी विशुद्धि थाय, निजात्मा परमात्म तुल्य
 छे एवो अनाधित बोध थाय अन त्यारपछी ज आत्मां परम
 शान्तिरम विस्तरे आ परम शान्तिरमप्राप्तिमा मुरय कारण-
 प्रधानीज अतरमा स्थापित परमात्म सचधी विचारो ज थाय
 छे, ते सिवाय अन्यथा प्रकारे शान्तिरसनो लाभ थतो नथी
 तेमज निजभायनी विशुद्धि बाद स्वात्मामा परमात्मानो
 रयाल थया पछी स्वात्मा अने परमात्मभावनो अमेद् बोध
 थाय, अत शास्त्रकर्ताए अही स्वात्मामा देवविषयक निज-
 भायनो आरोप करवो तेनु ज नाम प्रधान प्रतिष्ठा जणायी,
 आ मिवाय अन्य प्रतिष्ठाने अप्रधान कही, तेमज ग्राह्य
 जिनमूर्त्तिमा पण निजभावनो आरोप करी ते ज जिनमूर्त्ति-
 द्वाराए परमात्म स्वरूपनो विचार करयायी अतरमा निजमा-
 यनी वृद्धि थाय अने शान्तिरमनी अलौकिक प्राप्ति थाय छे
 आ हेतुधी पण दयविषयक निजभायनी स्थापना करवी तेनु

ગત મારી પણ નથી આવી જ શામ્ભરુત્તા રહે છે કે-નિન
 માવની સ્થાપના કરવી તે જ પામ્માર્થિક પ્રતિષ્ઠા જાણવી
 અન મોક્ષમ્ય આત્માની પ્રતિષ્ઠાનો નિષેધ કર્યો છે તેમજ
 સમારસ્થ અપીનરાગ, અમર્વજ દયોમા અહત્વ-મમન્વના
 ઠારણથી ' આ મારુ સ્થાન ' એ માવના અવશ્ય હોય છે
 અને તેઓનો ગામ પણ મૂર્તિમાં મર્ચદા વદ શકે છે, પણ
 તે સમાગી દવ હોવાથી તેનો સ્થાપના માત્રથી રાદ
 પરમાત્મપૂજનનુ ફલ અથવા ઘ્યાન પ્રાપ્ત ધાય નહીં,
 એવ જા સ્થાપના પરમાત્માની સ્થાપના એવો પણ નિર્દેશ
 થદ શકે નહીં પ્લી અહીં પરમાત્માની સ્થાપના અભિપ્રેત છે
 માટે આ સમાગી દેવની સ્થાપના પણ અમુર્ય સ્થાપના મારી
 છ હવ પરમાત્મદેવ વિષયક નિનમાવ સ્થાપનારુત્તામા
 અવશ્ય છે તથા તે સ્થાપનારુત્તા અહીં જ વિદ્યમાન છે અને
 મૂર્તિ પણ અહીં જ દૃશ્યમાન છે, એટલે પરમાત્મ સવધી
 પવિત્રમાર પ્રતિષ્ઠાકતા સ્વહૃદયમાં આરોપી તે જ માર
 વહિર્વર્તા પાપાણમૂર્તિમા પણ ઉપચારથી મત્રાદિ સસ્કારો-
 દ્વારા નિશ્ચયેન કરી શકે, અતએ એ જ પ્રતિષ્ઠા અહીં મુલ્ય
 પ્રતિષ્ઠા આચાર્યદવે કહી

એ જ વાતની અધિક પુષ્ટિ માટ આચાર્યથી ફરીને
 જણાવે છે

इज्यादेर्न च तस्या,

उपकार कश्चिद्त्र मुरच इति ॥

तदतत्त्वकल्पनैषा,

वालक्रीडासमा भवति ॥ ८-७ ॥

मूलार्थ—मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमा आरोप करी पछी तेनी पूजा, स्नात्र आदि द्वारा तेने प्रसन्न करवा माटे प्रयत्न करवो, तो आ प्रयत्नथी ते देवने काइ मुख्य उपकार थयो एम अहीं मानवु नहीं, कारण के—आ कल्पना ज अपारमार्थिक होवाथी आ प्रतिष्ठा वालक्रीडा तुल्य जाणनी

“ स्पष्टीकरण ”

मूर्त्तिमा मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो तेनु नाम यथास्थित प्रतिष्ठा आ मान्यता केटला अशे विरोधी छे ते सबधमा अमे उपर युक्तिथी विचार करी गया वळी ए ज मान्यता विषयमा ग्रथकर्ता विशेष विरोध दशवि छे प्रथम तो मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो ए ज वार्ता प्रमाण अने युक्तिथी खडित छे, छत्ता मानो के मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमा आरोप करवानो नितान्त आग्रह ज होय तो ते मोक्षस्थ आत्मा आरोपित मूर्त्तिने कोइ स्नात्र, पूजा, अलकार आदि चढावी एम माने के मे परमात्माने प्रसन्न कर्या, मारी आ पूजा परमात्माने पहुँचीतो शास्त्ररूता कहे छे के आ पूजाथी काइ पण मुख्यत परमात्माने सुख के उपकार थतो नहीं परमार्थ ए के—तेथी परमात्मा लेश पण खुशी थता नहीं, किन्तु आनी पूजा, स्नात्र, अलकार आदि चढावी

છે તેમ શાસ્ત્રવાન પામ્યા પડી અને તે પ્રમાણે અનુશીલન કરવાથી મન્ય આત્મા અનાદિના દુર્મેઘ ક્રમોનો ક્ષણવારમાં અવશ્ય નાશ કરી નાસે છે એવજ શાસ્ત્રમા કહ્યું છે કે—
 “ અન્નાણિ જ ક્રમ્મ સ્વેદ્, વહુયાહિં વાસકોડીહિં । ત નાણી તિહિં ગુત્તો, સ્વેદ ઉસ્મામમિત્તેણ ” ॥ ૧ ॥ “ અન્નાની જે કમાને ઘણા ક્રોડો વર્ષ સ્વપાવે તે જ કમાને ગુપ્તેન્દ્રિય અને ગુપ્તયોગી જ્ઞાની એક શ્વાસોશ્વાસ કાલમા સ્વપાવે છે. ” શ્રી કૃષ્ણ ગીતામા અર્જુન પ્રતિ કહ છે કે—“ જ્ઞાનાગ્નિદગ્ધ-વર્માણિ મસ્મમાત્કુરુતેઽર્જુન ” તથા કર્મો અહીં ઇધનરૂપે માન્યા છે એટલે વચનરૂપ અગ્નિમા કર્મોરૂપી ઇધનનો પ્રક્ષેપ કરવાથી તેનો તે નાશ કરે છે, માટે અહીં “ ભાવવિધૌ ” મુર્ય દેવતા ત્રિપયક ભાવવિધાનમા આ વાહ્ય પ્રતિષ્ઠિત મૂર્તિ સ્વામ પુષ્ટિકર્તા હોવાથી અર્થાત્ ભાવશુદ્ધિકારક હોવાથી ‘સફલૈપાપિ’ આ મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા પણ નિતાન્ત સફલ જ છે પરમાર્થ એ કે—મુગ્ધ દેવ સ્વધી સ્વાત્મામા પ્રશસ્ત ભાવની પ્રાપ્તિ થયા પછી તેમાં સ્વાત્મા લીન બને છે, અને પછી શાસ્ત્રા-નુમારે મર્મ ચેષ્ટા સ્વીકારી જીવાત્મા શુદ્ધ કાચન તુલ્ય પર માત્મભાવ પ્રાપ્ત કરે છે એટલે, આ સ્થલે ભાવરૂપ પારો, જીવાત્મા રૂપ તામ્ર ધાતુ, વચનરૂપ અગ્નિ આ સર્વનો મેલાપ થયા પછી ભાવરૂપ પારો વચનરૂપ અગ્નિમા જીવાત્માને તપાવી કર્મોનો દાહ કરે છે, કર્મા મસ્મીભૂત થાય છે અને આત્મા નિર્મલ બને છે, પરંતુ પ્રથમના સર્વ સયોગ પ્રાપ્ત થાય તદપિ

वचन-आगमरूप अग्नि-मयोग भावरूप पारो जीवात्माने शोधी शत्रे नहीं माट अहीं वचनरूप अग्निनी निता त आवश्यक्ता अपेक्षित छे, तेमज भावनी पुष्टि राक्ष मूर्च्छिद्वाराए ज मायलनन ध्यानकर्त्ताओने धाय छे परतु ते पिना धाय नहीं अत वाद्यप्रतिष्ठा शास्त्रकर्त्ताए मफल रही

अरे ! वाद्य मूर्च्छिगत निज भावरूप प्रतिष्ठा कही छे एतु कर्त्ताए शायी जाणतु ? ए शिष्य हृदयगत प्रश्ननो उत्तर आचार्यश्री अहीं करे छे

एषा च लोकसिद्धा,

शिष्टजनापेक्षयाऽसिलैवेति ॥

प्रायो नानात्वं पुनरिह,

मन्त्रगतं बुधा प्राहुः ॥ ८-१० ॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा पुरपपरपरागत अन लोक तथा लोकोत्तर मर्वत्र शिष्टजनोनी अपेक्षाए स्वीकृत छे, मात्र आ प्रतिष्ठामा बहुधा विशेष तत्र तो मत्रोपचार सवधी आचार्यों जणावे छ

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रमा आ प्रतिष्ठा आचार्यपरपराधी चाली आने छे अने त्रिशिष्ट मन्व्य आत्माओनी अपेक्षाए लोकर लोकोत्तर पदार्थोमा ए ज निचभात्र स्थापनरूप प्रतिष्ठा

स्वीकार्यरूपे महर्षियोऽपि दर्शनी छे, अर्थात् आगल जेनु विस्तृत स्वरूप जणावी गया ए ज प्रतिष्ठा आचार्योऽपि स्वीकारी छे, कही छे अने हितार्थी भव्योने आदेयरूप छे तेमज लौकिक लोकोत्तर भागोमा आ प्रतिष्ठा मुरय मानी छे, मात्र आचार्यो भिन्नता एटली ज कह छे के-निजभावनो जे मूर्तिमा आरोप धाय ते समये आ प्रतिष्ठा करी एवो भाग जन-समूहना हृदयमा विकसनवा मप्रोचार करवो तेमा विविध भेदो छे, एटले भिन्न भिन्न मन्त्रद्वारा निविध क्रियाओ करी ते भावनो आरोप धाय छे आ कारणथी प्रतिष्ठा शास्त्रसिद्ध छे एम कर्ताना हृदयमा अग्रश्य श्रद्धा प्रकटे अने तेमा प्रवृत्ति करे ते प्रतिष्ठाद्वारा स्वकार्यसिद्धि जरूर करे छे घस आ समाधानथी उपरोक्त शका निरस्त धाय छे

मन्त्रादि क्रियामा भिन्नता छे एम उपर कही गया हवे अहीं मन्त्रादि क्रियामा क्या प्रकारनी भिन्नता छे ते स्पष्ट करे छे

आवाहनादि सर्वं,

वायुकुमारादिगोचर चात्र ॥

सम्मार्जनादिसिद्धयै,

कर्त्तव्य मन्त्रपूर्वं तु ॥ ८-११ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठा कार्य पूर्वे अन्य देवोने आमन्त्रण,

तेओनी पूजा आदि मर्न कार्य, अने वायुकुमार, मेघकुमार आदि देवमवधी समार्जन जलवृष्टि आदि दरेक कार्यो मत्रो चार-मत्रस्मरणपूर्वक ज अउश्य करा

“ स्पष्टीकरण ”

जिनप्रतिमा शुभ मुहूर्त्तमा स्थापना पहला त्रिम-विनाशार्थे, धर्मकार्य ममाप्त्यर्थे अने औचित्यता पालनार्थे अउश्य मत्रादि सस्कारद्वारा दश दिग्पालो, लोरुपालो, नउग्रहो जादि देवताओनु आह्वान करवु, तेओने मत्रोचार साथे बलिनाकूल अर्पवा, तेओनी पूजा करवी अने ते ते देवसमधी जे जे कार्यो होय ते त कार्य परत्वे सकल्पधी तेओनी विनियोग करयो तेमज कल्याणक समये जेम वायु कुमार अने मेघकुमार नामक देवताओ जामी भूमिशोधन तथा सुगंधी जलवृष्टि करे छे तेम अहीं भागिकोए मंदिरनी आमपाम भूमिशोधनरूप कार्य तेमज सुगंधमिश्रित जलवृष्टि अउश्य मत्रोचार सह करवी वळी अन्य देवताओनी स्थापना पण मत्रादि क्रियाद्वाराए करवी अहीं सर्वत्र मत्रोनु स्मरण तथा विविध क्रियाओ पूर्वाचार्यनी परपराधी उतरी आवेल रीतिए करवु, षटले आ सर्व विधान प्रतिष्ठाकरूप प्रथमा तेमज प्रतिष्ठाविधिमा विस्तृतरूपे दर्शविल छ ते प्रमाणे अने ते विधिना ज्ञाता समीपे तेनु समुचित ज्ञान कर्या पछी

ज करतु, जेवी अविधि के अवगतो समव न रहे अने शास्त्राज्ञानो लोप न धाय ए खाम लक्ष्यमा राखवु

जाटलो निर्देश रुपी पछी हवे जिनप्रतिमा केनी रीति स्थापवी ए बात दर्शावे छे

न्याससमये तु सम्यक्-

सिद्धानुस्मरणपूर्वकमसगम् ॥

सिद्धौ तत्स्थापनमिव,

कर्त्तव्य स्थापन मनसा ॥ ८-१२ ॥

मूलार्थ--जिनप्रतिष्ठा काटे मत्रस्थापन समयमां मन सकल्पधी सम्यक्तया सिद्धभगवानना स्मरणपूर्वक अने असगपणे तेमा ज लीन वनी मुक्तिमा जेम सिद्धोनी स्थिति छे तेम सत्-चित्-आनन्द रूपनी स्थापना मूर्त्तिमा नमस्कार मत्र माथे करवी

“ पष्टीकरण ”

मूर्त्तिमा ज्यार मत्रस्थापन करवो होय, ते समये एटले मूर्त्तिमा आ वीतराग देव छे एनी कल्पना स्थापवी होय त्यारे, ज्या सुधी विधिविधान सह अनेक जनसमूह ममथ मूर्त्तिमा मत्रस्थापन मह आ मूर्त्तिमा स्वेष्ट देव छे एवी कल्पना न धाय त्या सुधी अन्य मामान्य जन तेनी पूजा आदि कार्योमा प्रवृत्त थाय नहीं, माटे प्रतिष्ठाकर्ताए ज्यारे

मत्रारोप करवो होय ते ममये प्रथम रही गया ते प्रमाणे शुरुआतमा शास्त्रमा जे स्वरूप रह्यु छे ते रीते सम्यक्पणे मोक्षस्थ सिद्ध परमात्मानु स्मरण करतु, तेओना प्रत्येक गुणोनु अने ज्योतिरूपनु ममुचित ध्यान करतु, सिद्धना ध्यान साये स्वात्मा अभेदभावे परिणमे तेम वर्तन करतु एटले आगल जणावी गया ते रीते प्रतिष्ठाकर्ताना हृदयप्रदेशमा मिद्धमूर्तिनु प्रतिविम्ब प्रतिविम्बित थाय तेम करतु अने पठी मोक्षमा अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतअज्याबाधसुख ज्योतिरूपे निराने छे ते ज स्थितीए अही मूर्तिमा प्रतिष्ठाकर्ता “ णमो अग्निहाण, णमो सिद्धाण० ” ए मत्रोचारपूर्वक स्वहृदयस्थ परमात्मदेव विषयक स्वात्मभावनो आरोप अनेक मशुद्ध विधि मह मन कल्पनाथी करे आ आरोप करती वखते प्रतिष्ठाकर्ता मन-रचन अने काया ए त्रणे योगधी केवल मिद्ध परमात्मामा ज सोपयोगरूपे बनी अन्य काइ पण रयाल न राखी एकात्मभावे मूर्तिमा हु केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि शक्तिविशिष्ट चिद्स्वरूपनी स्थापना करु तु एतु ध्यान करे आनु नाम योगिओ अने प्रतिष्ठातत्त्वज्ञो नाथ मूर्ति-प्रतिष्ठा निर्देशे छे

आ प्रतिष्ठा ग्रामाटे कही ? अर्थात् जा प्रतिष्ठानु शु फल थाय ? ए बातनो उल्लेख शास्त्रकर्ता जणावे छे

वीजन्यास सोऽय,

मुक्तौ भावविनिवेशत परम. ॥

सकलावञ्चकयोग—

प्राप्तिफलोऽभ्युदयसचिवश्च ॥८—१३॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा विधानधी मुक्तगत परमात्मामा स्नहृदयनी स्थापना ववार्धी परम-उत्कृष्ट आ बीज-मम्य-त्तनो न्यास थाय छे के जेनार्धी भविष्यमा ममग्र अचक्र-कयोगीनी प्राप्ति अने उत्तरोत्तर आत्मिक ऋद्धिओनो सयोग थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रतिष्ठाऋर्ता अने कारयिता बाह्य जिनमूर्तिमा मुख्य दव विषयक निजभावनी स्थापना करी शु लाम प्राप्त करे छे ? ते अर्ही ग्रथकर्ता दर्शाये छे एटले आ लोको ‘ बीजन्यास ’ बीजनो न्यास अर्थात् बीजनी वावणी करे छे, तो जेम कृपिकार चोमासानी आदिमा भूमिमा बीजनु वावेतर करे छे तेथी परिणामे ए वावेतर अनेकधा फलदायी बने छे तेम अर्हीं पण बाह्यप्रतिष्ठा कर-वायी कर्त्ता अने कारयिता उभय स्नहृदयरूपी भूमिमा तेमज अन्य भव्यात्माना हृदयरूप भूमिमा पुण्यानुबधीपुण्यरूप अथवा सम्यक्त्वरूप बीजनी स्थापना करे छे, परमार्थ ए के-प्रतिष्ठा करती वखते ऋर्ता तथा कारयिताना हृदयो परमा-त्माना ध्यानमा निमग्र बने छे खाम परमात्मानु ध्यान करबु ए शुभ पुण्यबधनु परम कारण छे. एथी उत्तरोत्तर पुण्य

प्रवाह चाल्या कर छे, अगर परमात्मानु ध्यान ए मन्मत्तवनु अग छे, तथा अन्य जनो आ प्रतिष्ठा निहाळी तेनी प्रशमा करे छे, अनेक लोको तेनु ध्यान, अनुमोदन अने पूजन करे छे, अतएव आ लोको पण शुभपुण्यनो वध पामी पुण्य-कार्यनो प्रवाह बहेवटावे छे, स्वहृदयने निर्मल करी मम-कितनो लाभ करे छे, एटले अनेक आत्माओने आ प्रतिष्ठा शोभन फलदारी थमायी खाम ' वीजन्याम ' रूप रने छे जाटलायी ज आ प्रतिष्ठानु सार्य पूर्ण थतु नथी, परतु वीज नेम उत्तरफालमा अनेक फलो अपे छे तेम अहीं आ ' वीज-न्यास ' पण आत्मिक अम्युदय-उन्नतिक्रममा महायक थया साथ मद्योगावचक, फलावचक अने त्रियावचक ए व्रण योगरूप फलप्राप्ति करावे छे निदान ए के-पुण्यानुवधीपुण्यनो वध थया पछी थया ममकित प्राप्त थया पछी विगुद्ध आन्मा उत्तरोत्तर चढती ऋद्धिओनो अनुमन करे छे, उत्तम उत्तम स्थानमा अने निश्चित गतियोमा के ज्या सपत्ति, आनन्द, निर्मयता अने गुणप्राप्ति तथा धर्मप्राप्ति थाय त्या जन्म धारण करे छे ने परिणामे आत्मिक उन्नतिक्रममा आगल वधे छे, कारण के-ममकित लाभ थया पछी शास्त्रमर्ता कहे छे के—“ समद्विष्टि जीवो विमाणवज्ज न वपण आउ” मम्यगृष्टि आत्मा वैमानिक देव मिवाय अन्य आयुष्यनो वध न करे आयी आ ' वीजन्याम ' अम्यु-दय-उन्नतिक्रममायक रूढु तेमन ममग्र योगोनी अवचकता-

रूप फलदायी मान्युं छे अर्ही शाश्वतोमा मद्योगोवाचक, फला-
 वचन, प्रियावचक एम व्रण योगो रक्षा छे आ व्रणे योगोनु
 स्वरूप योगदृष्टिममुचयमा आ प्रमाणे दर्शाव्यु छे
 “सद्भि कत्याणसपन्नै-दर्शनादपि पावनै । न ग-
 दर्शनतो योग, आद्यावञ्चक उच्यते ॥ १ ॥ नेषामेव
 प्रणामादि-क्रियानियम इत्यल । प्रियाऽवञ्चकयोग-
 स्या-न्महापापक्षयोदय ॥ २ ॥ फलावञ्चकयोगस्तु-
 मद्भ्य एव नियोगत । मानुषन्प्रफलावाप्ति-धर्म-
 सिद्धौ सता मता ॥ ३ ॥” आ व्रणे योगोनु विस्तृत
 स्वरूप योगदृष्टिममुचय व्रणमा व्रणकर्ताए रहु मारी रीते
 दर्शाव्यु छे, माटे पाठकोए त्यायी जोड लेनु

बीज वाच्या पछी कर्पको यदि तेनु रक्षण-सवर्द्धन न
 करे, आमपास उगेरु घाम दूर करी ते बीजनी सभारु न को
 तो वावेलु बीज जल, वायु आदि अनुकूल साधनो छता पण
 त्रिणशी जाय छे तेम अत्रे पण मध्यक्त्र तथा पुण्यानुवधी-
 पुण्यरूप बीज वाच्या पछी तेना रक्षण अने सवर्द्धनना अभाते
 त्रिणशी जाय माटे आचार्यश्री आ वावेल बीजनु सवर्द्धन
 केम करणु तेनो उपाय दर्शावे छे

लवमात्रमयनियमाद्-

उचितोचितभाववृद्धिकरणेन ॥

क्षान्त्यादियुतैर्मंत्र्यादि-

संगतैर्वृहणीय इति ॥ ८-१४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठाममयगत आ आत्मिकभाव एक सामान्य मात्र होय छे, तो पण ते भावने उचित-समुचित भाववृद्धिना उपायोधी तथा क्षमा आदि गुण सपादन करीने तेमज मैत्री, करुणा जादि भावनाओधी उत्तमोत्तर जरुर वधारवो

“स्पष्टीकरण”

अनादिधी अप्राप्त अने दुर्लभतर परमात्म विषयक भावना अगर ध्यान, प्रतिष्ठाना प्रभावधी कर्ता-कारयिता तथा अन्य जनोने प्राप्त धाय छे आ भाव परमात्मा साथे एकरूपपणु आत्माना मद्भिचारो निगेरे प्रतिष्ठा ममवे तो अत्यंत अल्प होय छे, एदले अन्य अन्य पौद्गलिक सवधी पिचारो-भावोनी अपेक्षाए नहु थोडो होय छे, परंतु स्वात्माने परमात्मपणु प्राप्त करवा पूर्वोक्त भावनु यथोचित रूपे प्रथम तो रक्षण करतु आवश्यक छे, अने पछी ते भावने वधारवा मारु श्रामपामना ते भावनु खडन करनारा माधनो-कारणो दूर करी दिवमानुदिवम ते भाव प्रफुल्लित धाय तेवा उचित-प्रशस्त संयोगो-कारणो एकर करी ते भावने वधारवा दत्तचित्त थवु अर्थात्-नित्य परमात्म स्वरूपनु ध्यान, पूजा, स्मरण अने परमात्म सवधी आज्ञानु पालन

अवश्य करवु. क्षणिक त्रिपयसुम्बना साधनो दूर करी आत्मा
 सगधी मुग्ध धर्मनो खास विचार करवो, साथे साथे समारनी
 अमारता, त्रिपयोनी कदुता, धननी चचलता अने बुडुनी
 म्यार्थलोलुपता पण भाववी आथी प्रतिष्ठा ममयमा प्राप्त
 एक मामान्य भाव पण पाउलयी विस्तररूपे थड अति म्होटा
 प्रमाणमा थड जाय छे अही शास्त्रकर्ता आ भावने उधार-
 वाना माधनो स्वय उत्तरार्थयी दर्शयि छे “ क्षान्त्यादि-
 युतं ’ प्रतिदिन क्षमा, मृदुता, आर्जव, सतोष आदि
 जात्माना परमधमोनी भावना करी तेनु स्वरूप विचारी
 उपरोक्त भावने उधारवो, एटले आ रीते जलसिंचन करवाथी
 ते भावनी वृद्धि याय छे परमार्थ एके-जेम जलसिंचन विना
 अथवा टाह पडवायी बीज वधे नहीं पण विणशी जाय
 तेम अहीं पण उत्तम परमात्म सगधी अल्प प्रशस्तभाव अगर
 ध्यानरूप बीज जलसिंचन विना अथवा तो अनादिथी आत्माना
 सूणामा घर करीने उठेला क्रोध, मान, माया, लोभ आदि
 शत्रुओ-अग्निज्वालाओ प्रदीप्त बवाथी ते भावरूप बीजादुर
 मस्मीभूत थड जाय, माटे विवेकीए ते भावनी वृद्धि करवा
 अर्थे, आ अग्निज्वालाओने बूझाववा आधिभक्ति न पामे ते
 निमित्ते श्रीमान् विनयविजयजा महाराज कहे छे तेम-“ क्रोध
 क्षान्त्या मार्दवेनाभिमानम्, हन्या माया मार्दवेनोज्व-
 लैन। लोभ वारा राशिरौद्र निरुभ्या., सतोषेण प्राशुना
 मेतुनेव ” ॥ “ क्षमायी क्रोध, नम्रताथी अभिमान, उज्वल

एवी मरलताधी माया जने जेम सेतुपधधी जल रुधाय तेम सतोपरूपी माटीधी लोमरूप सौद्र जलममूहनो रोध करयो ” अहीं क्रोधादि ज्वालाओने वृद्धावनार, उदयने रेकनार क्षमा आदि भावनो अहर्निग विचार करयो अत्यावश्यक योगियोण करयो ठे, कारण के एम करवाधी ज परमात्म सत्रधी भावनी नितान्त वृद्धि अने आत्मिक गुणनो विराम धाय छे आपणा घरनी मिल्लत अन्य कोइ दवाधी द तो नेना मामे मरन उपायो लेवाधी-झझमवाधी ज त मिल्लत आपणा हाथमा आवे, परंतु नेना ममय महनशीलता राखवाधी अगर कायरता करवाधी मिल्लत पाठी आवे नहीं किन्तु थोडी-धणी होय ते पण जापणी निरलता देखी अन्य गनुओ पडागी जाय क्षमा आदि विचारनु स्वरूप तत्पार-भाष्यमा उमान्वातिराचरुजी आ प्रमाणे दर्शावे छे

“ क्रोधादि ज्ञानिनो उपाय ”

“ क्रोधनिमित्तस्यात्मनि मारा भावचिन्तनात् ”
कोइ पण मनुष्य आपणा पर ज्वार क्रोधाविष्ट थाय न्यारे विचारयु के-आ मनुष्य मारा सामे क्रोध शा माटे कर छे ? में तेनु काइ पण नुरुशान करी तना भावे रुदापि विरोध करयो छे ? अथवा प्रतिफल वर्तन मे आचर्युं छे ? आ रीते विचार करी यदि जो म अपराध कर्यो छे, विरुद्ध वर्तन कर्युं छे, नुरुशान कर्युं छे तो तेनो जे क्रोध छे ते व्याजधी ने योग्य छे, अने मारं ते अपश्य महन करखु जोइए कारण के-आ गुन्हानी शिक्षा

छे गुन्हानी शिक्षा सामे रोप करवो ए तो बालचेष्टा गणाय. यदि विचार करता एवु जणाय के-स्वप्ने पण अपराध, नुकसान के अन्यथा वर्त्तन कर्युं नथी छता आ माणस क्रोध करे छ तो ते अज्ञानी छे, अज्ञानी प्रलाप करे छे, अज्ञानी सामे प्रलाप करवायी हु पण अज्ञानी ज ठरु, आधी पण मारे क्रोध करवो अघटित ज कहैनाय ए ज परमार्थनो अनुवाद पूर्वाचार्यो एक सुभाषितधी उपदेश छे. “ आकृष्टेन मनिमता, तत्त्वार्थगवेषणे मनि कार्या । यदि सत्यं क्व कोप, स्यादन्त किं नु कोपेन ” ॥१॥ आटलो विचार करवाधी पण जो क्रोध निष्फल थाय नहीं तो “ क्रोधदोषचिन्तनाश्च ” क्रोधनु फल विचारु क्रोध करवायी प्रथम तो पोतानु शरीर तपी जाय, कठ मुजाय, बेचेनी जाय, भान भूली जनाय, अनाज पर अरुचि जाय, बुद्धि भ्रष्ट थाय, स्ववर्तव्य अने विवेक विमरी जवाय, प्रेमनो नाश थाय, इज्जत चाली जाय, लोभोमा क्रोधीपणानी ग्याति जाय अने छेपटे पुण्यफलनो पण नाश थाय आ हतुधी पण क्रोध करवो अघटित ज छे आम विचार करवा उता क्रोध न रोकाय तो “ बालस्वभावचिन्तनाश्च ” बालस्वभावनो विचार करवो अज्ञानीनी ज ए देव होय छे के-परोक्षमा तथा प्रत्यक्षमा निष्कारण क्रोध करवो, तेमज ताडन, मरण अने धर्मभ्रष्ट लोकोने करवा, परंतु विवेकीए विचारु जोइए के ते अज्ञानी

विचारा परोक्षमा ज कोप करे छे पण प्रत्यक्षमा आवता नथी ए ज महान् लाभ थयो यदि प्रत्यक्षमा कोप करे तो ते कोप करी सतोष माने छे परंतु मने मारता नथी ए ज तेओनो उपकार थयो रुदाचित् मारे तो तेओ काढ मारा प्राणनो नाश करता नथी किन्तु मारीने उस थाय छे कथचित् प्राणनो पण तेओ वियोग कर तो पण मने धर्मभ्रष्ट करता नथी, मारो धर्म कायम रहवा दे ते ए ज तेओनो थोटो उपकार मारा पर थयो आम विचारी उदयगत कोप निष्फल करयो, ए ज भाव महर्षिओ जणावे छे “ अक्षोशहणण-मारणधम्मभमाणालसुलहाण । लाभ मन्नह धीरो जहुत्तराण अलाभमि ” ॥ १ ॥ अन्तमा कोप निष्फल करवा माटे आ विचार करवो “ स्वकृतकर्मफलाभ्यागमाच्च ’ ज्यारे मोघथी धसी आधी कोड आपणा प्राणनो पण नाश करे त्यार विचारतु के आ सर्व मारा कृतकर्मतु ज फल छे पूर जन्ममा आ लोकोमाथ तेवा प्रकारनो लेणदेणनो सपथ कर्या हसे, मे तेओने हेरान क्या हसे, मार्या हसे, प्राणवियुक्त कर्या हसे एटले तेओ अत्यारे मारा पासेथी तेनो उदलो बाळे छे कोइनु पण देवु कर्या पठी ए ज्यारे मागे त्यारे निनासकोचे प्रमन्नहृदये पाछु अर्पतु जोडए तेमा कोप करवो ए तो व्यवहारथी पण निरुद्ध ज गणाय, अर्हा पण देवु चूकावाय छे तो पछी मामो कोप शा माटे करयो ? आम विचारी छेउटे कोपने दवावी देवो, उदय न थाय तेम करतु

क्रोध अने मानने आपममा अति निकट सवध छे अर्थात् ज्यां मान होय त्या क्रोध जरूर पोतानो प्रभाव दशावि छे, एटले कोप अने मान सहचारी छे, माट ज ते वस्त्रेने मर्वने द्वेषना घर कखा छे द्वेषमांधी ते उद्भवे छे. आ मानने दूर करवा नमृता, मृदुतानो अम्याम विवेकीए अवश्य करवो. परमार्य ए के-सर्वदा विनीतभावे-नम्रभावाची उर्तधु अने गर्व न करवो ए मृदुतानु चिह्न क्यु छे आम वर्तमांधी माननो आविभाव न धाय जनताने जाति, कुल, रूप, वैश्वर्य, बुद्धि, श्रुत, लाभ, पराक्रम जा आठ कारणोधी गर्वमात्र, अकडपणु, उद्धताड, उच्छ्वलपणु, कडकाह आवे छे अन्य जनोनी अपे क्षाए पोतानी श्रेष्ठ जाति होय, श्रेष्ठ कुल होय, उत्तम सुंदर रूप होय, विशेष वैश्वर्य-प्रभुताइ-अधिकार होय, विशिष्ट बुद्धि होय, विशेष श्रुतयोध होय, विशेष प्राप्ति धाय, अतिमल होय, आ मर्व मदना कारणो जाणवा आ कारण सयोगधी परनी निंदा करे, स्वात्मानी प्रशमा करे अने आम करवाधी अतिहलका कर्मनो बध ररी आत्मा विनेक विमरी जाय, स्वकर्तव्यधी अष्ट धाय, म्होटा-न्हानापणानु भान न राखे तैम ज जे जे पदार्थ सवधी मद कराय ते ते पदार्थो जन्मातरमा अधमरूपे प्राप्त धाय आम विचारी माननो त्याग करवो, उदयप्राप्त होय तो दयावी देवो अने भविष्यमा उदय थमा देवो नहीं.

हृदयनी मायाग्रथीने दूर करी मरलता-निष्कपटपणु धारण

करखु तेनु नाम मृदुता लेश पण माया उत्तम पदार्थ माटे करीए तो पण मछिनाथजीनी माफक अकल्याणकर्ता थाय छे, तो पछी प्रिशिए अने विशिष्टतर मासारिक अनुत्तम पदार्थो माटे जे माया सेवीए तेनु तो केजुए अनिष्ट फल प्राप्त थाय ? मायी-जननो कोइ विश्वास करे नहीं, कारण के मायीजन मर्षदा सर्व कार्योमा प्रपचने ज आगल करे छे आथी मायीने बुध जनो मर्ष तुल्य माने छे, तेमज ज्या सुधी हृदयमा लेश पण पण सारी क खोटी माया होय त्यासुधी हितकारी प्रवृत्तिनु सुदर फल पामे नहीं माटे माया त्याग करी सर्व कार्योमा सरलता धारण करवी जोइए

जगत्मा ' लोभमृलानि पापानि ' सर्व पापनु मूल अने अनर्थपरपरानु खास कारण लोभज छे हृदयना मेलोनी जड घालनार पण लोभ क्हो छे, लोभावश आत्मा कदापि शान्ति अनुभवतो नहीं, लोभी प्रतिष्ठा सन्मान अने आवरुने गणतो नहीं, लोभी प्रेमसुखनो अनुभव अने कुटुबनो प्रेमपात्री बनी शकतो नहीं, तेमज आ लोक अने परलोकना सुख अथे लोभी धर्म पण सेवी शकतो नहीं, गळी लोभी उपार्जिन लक्ष्मीनु सुख भोग्यपदार्थ तथा शान्तनिद्रानो पण अनुभव करी शकतो नहीं आथी लोभनो त्याग करी मतोप धारण करवो जोइए हेतु ए के—' सतोषामृतनृक्षाना यत्सुग्य शान्तचेतसा । कुलस्तद्वनलुब्धाना-मितश्चेतश्च घा-चता ' ॥ १ ॥ " सतोपरूप अमृतथी वृक्ष एवा शान्तहृदयी

જનોને જે સુખ હોય તે સુખ ધનમાં લુપ્ત અને જ્યાંન્યા મટકનાર આત્માઓને કયાથી હોય ? ” જ્ઞાન આત્મિક સુખ અને સ્વકલ્યાણની મિદ્ધિ લોભનો પરિત્યાગ કરી સતોષ ધારનાથી જ ધાય છે. લોભ જટલો પૂરામાં પૂરો છે કે ચતુર્દશ પૂર્વચરો પણ ઉપગમથ્રેણિ પર આરુઢ ધયા પછી ત્યારથી લોભના ઉદયથી ગોપુ ગ્યાઢ નિગોદમાં પ્રવેશ કરે છે. આમ વિચારી અન્તમા નમજુએ લોભનો અવશ્ય ત્યાગ કરવો ઉચિત છે, અર્થાન્ લોભનો નાશ કરવા સતોષરૂપ ચ્વદ્ય ધારણ કરવું.

આ રીતે ક્રોધ, માન, માયા, લાભના પ્રતિવિરોધી ક્ષમા, મૃદુતા, આર્તરતા અને સતોષ સ્વથી ઉપરોક્ત માવના હૃદયમાં ધારણ કરી, પ્રથમ કહી ગયેલ પ્રતિષ્ઠાગમયમા પ્રાપ્ત વ્યેલ અત્પ શુભ ભાવની શુદ્ધિ કરવી અર્થાન્ આ પ્રમાણે જલ્નુ મિન્ન કરી આ માવરૂપ વીવને શુદ્ધિગત કરવું વઢી ગ્રાસ્વ કર્તા કરી આ વીજશુદ્ધિનો ઉપાય “ મૈત્ર્યાદિમ્મગતૈ ” જ વર્થી વિશેષ જણાવે છે. મૈત્રી, કરુણા, પ્રમોદ, માધ્યમ્ય જ વારે માવનાઓ પ્રતિજ્ઞે વિચારવી આ ચાર માવનાઓ સમ્યક્તવને પુષ્ટ કરે છે. આનુ વિમ્વૃત મ્વરૂપ અમે આગલ જણાવી ગયા છીજ, તે મ્વરૂપને ધ્યાનમા ઉતારી તેનુ મ્વરૂપ વિચારવું, આ પ્રમાણે આ ચાર માવના અને ક્ષમા આજિ ચાર માવોનુ સ્વરૂપ નિત્ય વિચારવાથી, તેનુ ધ્યાન કરવાથી અવશ્ય અતરાત્મા વિગુદ્ધતર થાય છે, ઉપરોક્ત અલમ્ય માવની શુદ્ધિ પણ ધાય, માટે અહીં પ્રથમકર્તાજ

જણાવ્યુ કે—શમા આદિથી અને મૈયાદિ ભાવનાથી આ માવ-
રૂપ ળીજ “ સંવર્ધનીય ” ષ્ટદિગત ઋષુ

આ રીતે માવરૂપ ળીજષ્ટદિગતો ઉપાય દર્શાવી ફરી
તે જ ળીજષ્ટદિગતો અન્ય ઉપાય ગ્રથઋતી જણાવે છે

નિરપાય સિદ્ધાર્થ

સ્વાત્મસ્થો મન્ત્રરાડસગશ્ચ ॥

આનન્દો બ્રહ્મરસશ્ચિન્ત્ય—

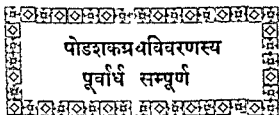
સ્તત્ત્વજ્ઞમુષ્ટિરિયમ્ ॥ ૮-૧૫ ॥

મૂલાર્થ—અપાય ળગરનો, તેનાથી મવ અથની નિદ્ધિ થાય
એનો. સ્વાત્મામા રહનાર, મર્ષ મત્રોમા મુરય મત્રભૂત, ઉપાધિ
રહિત, આનન્દમ્પરૂપ અને બ્રહ્મ, મત્ય, તપ અને જ્ઞાન એનો
રમરૂપ તેમજ સર્વજ્ઞ જ્ઞાનમા તત્ત્વનાનની ગ્વામ મુષ્ટિરૂપ આ
પ્રતિષ્ઠામમયગત ભાવનો વારવાર વિચાર કરવો

“ સ્પષ્ટીકરણ ”

જેવી રીતે પ્રતિષ્ઠામમયમા લભ્ય ઉત્તમ માવનુ સર-
ક્ષણ—સવર્ધન માટે આપણે આગલ વિચાર ફરી ગયા તેમ
અહીં જ્ઞાત્રઋતી ફરી તે જ માવની ષ્ટદિ માટે આ માવની
મહત્તા અને તેનુ ફલ વિચારવાનુ જણાવે છે, અર્થાત્
પદાર્થ પરનો મોહ, તેનુ સ્વરૂપ, તેની મહત્તા અને તેના ફલો

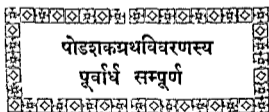
मत्तरप्रकारी अथवा एवरीशप्रकारी पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थानुसृत पूजा करवी अर्हा मूलमा ' अष्टौ दिवसान् ' ए राक्षसघ्नं होनाथी तेनो परमार्थ ए वें-
 अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करनी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुमार दान पण आपनु, अथवा नर्व जीवनु सरक्षण थाय तेम अभयदान आपनु, एटले जीवोनी हिंसा बध कराववी



आ पुस्तकना पहेलाथी ग्राहक वनी
मदद आपनार महाशयोनी
नामावली

ग्रथनी सख्या	ग्राहक नाम	ग्राम
१०१	शा ग्रैनमलजी वंद	मद्रास
१०१	शा कानमलजी मेन्गमजी	"
५१	शा हजारीमलजी रूपचदजी	"
५१	डा डा कपनी	"
२५	शा साकरचद तिलोरुचद	"
२१	शा केसरीमलजी भगनमलजी	"
३१	शा मागमलजी मुनानमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा रूपचदजी ठागमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा गुलराजजी फांजराजजी कानुंगे	"
२५	शा केशरीचदजी कप्रलालजी	"
२१	शा बालचदजी मुरलीधरजी माल्ट	"
२१	शा शेरमलजी माणेरुलालजी श्रीश्रीमाल	"
२१	शा मुखचदजी हमराजजी	"
१७	जे एम् शेट	"

मत्तरप्रकारी अथवा एकत्रीशप्रकारी पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थोंसङ्ग पूजा करवी अर्हं मूलमां ' अष्टौ दिवसान् ' ए वाक्यधर्युं होराथी तेनो परमार्थ ए के-अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करवी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुमार दान पण आपवु, अथवा सर्व जीवतु सरक्षण थाय तेम अभयदान आपवु, एटले जीवोनी हिंसा बध कराववी



आ पुस्तकना पहिलाथी ग्राहक बनी
मदद आपनार महाशयोनी
नामावली.

ग्रथनी सग्या	ग्राहक नाम	ग्राम
१०१	शा ग्रैनमलजी बंद	मद्रास
१०१	शा कानमलजी मेख्यगसजी	"
५१	शा हजारीमलजी रूपचंदजी	"
५१	डा. डा कपनी	"
२५	शा साकरचंद तिलोरुचंद	"
२१	शा केमरीमलजी मगनमलजी	"
३१	शा सागरमलजी सुनानमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा रूपचंदजी ओगमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा गुलराजनी फोजराजजी कानुगे	"
२५	शा केशरीचंदजी फनरलालजी	"
२१	शा बालचंदजी मुरलीधरजी मालू	"
२१	शा शेरमलजी भाणेकलालजी श्रीश्रीमाल	"
२१	शा मुखचंदजी हमराजजी	"
१७	जे एम् शेठ	"

१५	धी काठियावाट सायकल कंपनी	११
१५	धी पोप्युलर सायकल कंपनी	११
११	शा सुरजमलजी श्यामलालजी	११
११	शा हिंदुजी रामाजी	११
११	शा हीराजी वनेचंदजी	११
११	शा चापला तेजरान दलाल	११
१०	शा नागनी पुरपोत्तम	११
१०	शा माणेरुलाल श्रीरुमलाल	११
७	शा धूलचंदजी गेवरचंद श्रीश्रीमाल	११
७	शा सी जे शेट	११
७	शा हरसचंद स्पचंद	११
५	शा सुरजमलजी कोठेमा रायपेठ	११
५	शा त्रिद्विचंदजी कोठेमा निलिवाकम्	११
५	शा नथमलमोलकी पुनमली कंटोनमेंट	११
५	शा ताराचंद खेमरान चिंतादरिपेंठ	११
५	शा माणेरुलाल वेताळा	११
५	शा रूनीरामजी जुगराजजी	११
५	शा छगनलाल लखमीचंदजी	११
५	शा तिकमजी मोतीजी	११
५	शा स्पचंद छनीलदास	११
५	शा देवराजभाड रुच्छी	११
५	शा साकरचंद गुल्वाजी	११

५	शा अंबालाल भूरमलजी	११
५	शा रतनचंदजी चूनीलालजी	११
५	शा जेठमलजी गानमलजी	११
५	शा मुलतानमलजी मियरिमलजी	११
५	शा वनाजी शंकरलालजी	११
५	शा भभूतमलजी रिखभदामनी	११
५	शा फुमाजी कस्तूरचंदजी	११
५	शा भूतानी पुनमचंदजी	११
५	शा मूलचंदजी शकरलालजी	११
५	शा सदानमल सीमचंदजी	११
५	शा भूरमलजी भभूतमलजी	११
५	शा सोगालाल कमनानी	११
५	शा लुजाजी भगवानजी	११
१०	शा भगाजी मोनमलजी	११
४	शा नेमिचंदजी झानक	११
४	शा मंगलचंदजी अमरचंदजी	११
४	शा सरजमलजी भलेचंदजी	११
३	शा चूनीलाल जेसगभाट	११
३	शा सीमचंद जेमगलाल	११
३	शा जोधाजी मनीराम	११
३	शा फोजमलजी मूलचंदजी	११
३	शा गुलाबचंद वादगमल	११

३	शा हींदुजी देवीचंदजी	॥
३	शा हनारीमल जीरराज	॥
३	शा धूरनमलजी अमरचंदजी	॥
२	शा परतापमलजी सागरमलजी	॥
२	शा सुनाणमलजी सोभागमलजी	॥
२	शा सतीदानजी आशरुणजी	॥
२	शा लालचंद चादमलजी फोठारी	॥
२	शा लक्ष्मीलालजी माणेरुलाल	॥
२	शा हाथानी नथमलजी	॥
२	शा कानाजी जुहारमलजी	॥
२	शा मूलचंद देवीचंदजी	॥
२	शा लखमीलालजी मिसरिलालजी वेद	॥
२	शा रामसुस लागुचंदजी लुणीया	॥
२	शा भानाजी वाराचंद	॥
२	शा मलोकचंद कम्पूरचंद	॥
१	शा सलरानजी	॥
१	शा गणेशमलजी	॥
१	शा चूनीलालजी छाजेड	॥
१	शा केसरिमलजी शेशमलजी	॥
१	शा गंभीरमलजी फूलचंदजी	॥
१	शा नयमलजी अनराजजी	॥
१	शा भोमरानजी पनरोटीनाला	॥

१	शा मोहनलाल माणेरुलाल शारङ्ग	१००
१	शा गृध्वीराननी घोरीपेट	५
१	शा जैठमठनी कोटडीया	५
१	शा सुगलाल वंगलाल	५
१	शा मगगननी केमरीपेट कोटडीया	५
१	शा मोतीपेटजी शेठीया	५
१	शा रस्तमलजी कानमलनी	५
१	शा अनगजनी वारा	५
१	शा ममगधमल मि श्रीमल भकल्लेडा	५
१	शा रायतमल अमूलकचंद	५
५	शा जयारमल रायतमलजी	५
५	शा भोठीलाल वीरचंदजी दुर्गा	५
२	शा जयानमलजी जीराराजनी	५
२	शा किमनचंद चादमलनी	५
२	शा रफुचंदजी लक्ष्मीलालनी	५
२	शा सुगनमलनी नेमिचंदनी	५
१	शा जैठमलनी आशकरणी	५
५१	शा लुनाजी माकलचंद	५
११	शा शिनाजी अमीचंद	५
११	शा नयलमल लालचंद	५
७	शा वीरचंद कपूरचंद	५
५	शा वनाजी माकलचंद	५

५	शा गुलाबचंद रायचंद	॥
५	शा गणपतचंद नानचंद	॥
५	शा बनानी जेमानी	घागलकोट
५	शा हीराचंद केरिंगनी	अगरसेड
५	शा फतेमलनी तेनमलनी कोठारी	बेलगामरूप
३	शा मूलानी मंठाजी	बीनापूर
२	शा गुलनानी लालचंद	॥
२	शा चीमनानी मन्लानी	॥
२	शा मोमचंद दलीचंद	॥
२	शा नरसीदास काननी	॥
२	शा अमीचंद दलीचंद	॥
२	शा मानमल जीणनी नाहार	॥
१	शा रायचंद छगनलाल	॥
१	शा प्रेमचंद सुशालजी	॥
१	शा उकाजी चुनीलाल	॥
१	शा रायचंद सुशालजी	॥
१	शा त्रिभोवनदाम केसवजी	॥
१	शा वस्तिमल हस्तिमल	॥
१	शा मणीलाल भीयाचंद	॥
१	शा भूताजी देराजी	॥
१	शा बनेचंद रतनाजी	॥
१	शा जवेरचंद दलीचंद	॥

१	शा गोविंदजी कम्हरचंद नाहार	"
१	शा गुलामचंद नानचंद	"
१	शा पुनमचंद हीगचंद पटणी	आरग
२५	शा हीराजी श्रेयमलनी	तेनाली
२०	शा रतनाजी चंदनमलजी	"
२०	शा जहराजजी जशरान	"
१५	शा ताराजी मिश्रीमलजी	"
१५	शा छोगमलजी लठीराम	"
१०	शा लालचंद सुशालचंद	"
१०	शा पेमाजी माकलचंदजी	"
१०	शा शिवराजजी धरमचंदजी	"
१०	शा पैराजमल मूलचंद	"
१०	शा जेरूपनी छोगमल	"
८	शा रानाजी स्नानाथनी	"
७	शा सुनानी केसरिमलनी	"
५	शा पेमाजी जीपगन	"
५	शा गुलामाजी चुनीलाल	"
५	शा भगवानजी गुलामचंद	"
५	शा सागरजी केसरिमलजी	"
५	शा चेनाजी सुबचंद	"
५	शा भोमाजी भमूतमलनी	"
३	शा मलचंद बनाजी	"

३	शा गणेशमल रतनचंद	"
२	शा लछीराम जोधरान	"
३	शा रामानी गोमानी	"
२	शा धरतमल नरानी	"
४	शा गारानी हस्तिमल	"
१७	शा तागचंदजी छोटमलजी	मिजराडा
१७	शा प्रतापमलनी अमृतसरचंदजी	"
१७	शा छोगमल चिनानी	"
१७	शा साकलचंद चुनीलाल	"
३	शा बालचंद उमाजी	"
१०	शा भवाजी हस्तिमलजी	मंगलगिरि
१०१	शा चंदानी खुवाजी	गंडर
७	शा छोगमलजी जेठमल	"
५	शा जेताजी हीरानी	"
५	शा नरसिंहजी गोमरान	"
७	शा चिनानी भभृतमलजी	"
५	शा रामाजी कस्तूरचंदजी	"
३	शा वनाजी देवीचंदजी	"
५	शा बठरान हनारीमलनी	"
५	शा नथानी जेठमलनी	"
५	शा चमनाजी शेषमलजी	"
५	शा डायजी जेरूपजी	"

५	शा अन्नानी बेनाजी	”
३	शा लालानी जकचंदजी	”
३	शा जैवानी पगनी	”
०	शा बनानी नथमजी	”
१	शा बेनानी राममजी	”
१	शा बालचंद हीराचंदजी	”
५	शा जैरपनी छोगमलजी	”
२	शा बेनानी मूलचंदजी	”
५	शा छोगमल वृद्धिचंदजी	”
५	शा मजालाल ठाराचंदजी	गुडीवाडा
५	शा. चन्दनमद गोदापलजी	”
४	शा प्रागचंद कपूरजी	”
३	शा प्रेमचंदनी भागजी	”
३	शा रूपचंद कर्मिजी	”
३	शा गुलाबचंदनी चम्पनजी	”
०	शा चुनीलाल रेमाचंदजी	”
२	शा भूरमल केसरजी	”
३	शा वीरचंद मन्मथचंद	”
०	शा दलीचंद कपूरचंद	”
१	शा गटुमल छोगमल	”
१	शा अकेचंद सुमाजी	”
१	शा देवीचंद बशारी	”

१ शा गयचद रतनचद	”
१ शा मिश्रीमलनी जमाजी	”
१ शा ओटमल गुलनाची	”
१ शा फूलचद भानीराम	”
१ शा गुलनाजी छोगमल	”
१ शा गुलनाजी देवीचंद	”
१ शा नथमल मोतीनी	”





